प्रस्तावना।

दिगंबर जैन समाजमे आजतक तीर्थंकर व महापुरुषोंके अनेक चरित्र, पुराण, कथाकोष, तात्विक ग्रन्थ आदि प्रकट होगये है, परंतु हमारे अंतिम तीर्थंकर श्री महावीरस्वामीके मुख्य गणधर—श्री गौतमस्वामीका चरित्र जो अतीव जानने, मनन करने व स्वाध्याय करनेयोग्य है, आजतक प्रकट नहीं हुआ था व हम इसी खोजमें थे कि कहींसे गौतमचरित्रकी प्राप्ति होजाय तो उसका अवश्य २ प्रकाशन करें, इतनेमें हमें मालूम हुआ कि आदिपुराणादि अनेक धर्मग्रन्थोंके संपादन करनेवाले सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री० धर्मरत्न पं० लालारामजी शास्त्रीको देहलीके एक मंदिरसे गौतमचरित्र (संस्कृत भाषा) की प्राप्ति हुई है और वे इसका हिन्दी अनुवाद लिख रहे हैं। यह जानकर हमें अतीव हर्ष हुआ और तुर्त ही पंडितजीसे इसका अनुवाद पूर्ण करवाया जो करीव दो वर्षोंसे हमारे पास आया हुआ था परन्तु आपका ही अनुवादित एक और वडा ग्रन्थरत्न—श्री प्रश्नोत्तर श्रावकाचार हम छपा रहे थे इससे इसके प्रकाशनमें विलंब हो गया था परन्तु अब तो यह ग्रंथ छपकर प्रकाशनमें आ रहा है।

इस ग्रन्थके रचयिता श्रीमान् मंडलाचार्य श्री धर्मचंद्रजी (भट्टारक) है जिन्होने इस ग्रन्थको विक्रम संवत् १७२६में रघुनाथ महाराजके राज्यशासनमें महाराष्ट्र नामक छोटे नगरके ऋषभदेवके मंदिरमें बैठकर रचा था। इस ग्रन्थके अंतमें आपने अपना परिचय कराया है इससे मालूम होता है कि आप मूलसंघमे बलात्कारगण

व भारती गच्छके एक देदीप्यमान सूर्य थे व आपके पट्टमें श्री नेमिचंद्र, श्री यशःकीर्ति, श्री भानुकीर्ति व श्रीभूषण भट्टारक हो गये थे व उनके पट्टपर आप (श्रीधर्मचन्द्रजी) अठारहवें सैकेमें विराजमान थे व आपने परमोपकारक श्री गौतमस्वामीकी भक्तिवश इस गौतमचरित्रकी सरल संस्कृत भाषामें रचना की थी उसीका यह सरल हिन्दी अनुवाद है। ग्रन्थका महत्व व विद्वान् आचार्यकी कृति कायम रहे इसलिये मूल संस्कृत श्लोक भी हिन्दी टीकाके साथ २ रख दिये गये हैं जो संस्कृतज्ञोंको बहुत उपयोगी होंगे क्योंकि इसमें अनेक ऐसी २ उपयोगी बातें जैसे कि–स्त्रियां पूजन अभिषेक कर सकती हैं, आदि विषयोंका खासा निरूपण है। हमें आशा है इस ग्रन्थरत्नके पठनपाठनसे जैन समाजमें व्रतोंके धारण करनेकी अधिकाधिक रुचि होगी क्योंकि श्रीगौतमस्वामीका जीव अंतिम भवमें एक शुद्र कन्याके रूपयें था तब उसने अनेक कुकर्म किये व श्रीअंगभूषण मुनिपर घोर उपसर्ग किये थे, परन्तु धर्मोपदेशसे अंतमें उन्होंने लब्धिविधान व्रत विधिपूर्वक किया जिससे स्त्रीलिंग छेदकर यह जीव पांचवे ब्रह्म स्वर्गमें उत्पन्न हुआ व वहांसे चयकर ब्राह्मण-नगरमें ब्राह्मण (वेदधर्मी)का पुत्र गौतम हुआ जिसने पीछे भगवान महावीरके मुख्य गणधरका पद प्राप्त करके अंतमें केवलज्ञान प्राप्त किया था। इस चरित्रके पठनपाठनसे विशेष लाभ यह भी होगा कि इसमें गौतमचरित्रके साथ २ महाराज श्रेणिक, भगवान महावीर आदिका संक्षिप्त वर्णन है तथा अंतिम अधिकारमें तो भगवान महावीर व गौतम गणधरकी दिव्य ध्वनि (वाणी)का उपदेश इस ढंगसे लिखा गया है कि इससे सरल भाषामें सारे जैनसिद्धांतों–खासकर कर्म-

प्रकृतिओंका दिग्दर्शन होजाता है। इससे हमें पूर्ण आशा है कि इस नवीन ग्रन्थका जैन समाजमें विशेष आदर होगा व शीघ्र ही हमे इसकी दूसरी आवृत्ति प्रकट करनेका मौका प्राप्त होगा। इसके अनुवाद व प्रकाशनमें कोई त्रुटि रह गई हो तो उसकी सूचना कोई भाई हमें करेंगे तो उसपर अवश्य लक्ष दिया जायगा।

श्री वीरनिर्वाण
सं० २४५३
फाल्गुन सुदी ११
ता० १३-३-२७

जैनसमाज सेवक-
मूलचंद किसनदास कापड़िया,
प्रकाशक।

❋ विषयसूची। ❋

प्रथम अधिकार।

द्वितीय अधिकार।

तृतीय अधिकार।

चतुर्थ अधिकार।

पंचम अधिकार ।

शुद्धयशुद्धिपत्रम् ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	२०	संपी	
६	२३	मञ्जीवौषधानि च	सञ्जीवनौषधानि च
९	१६	ददीप्य	दैदीप्य
१२	१९	स्वंता	स्वाता
२१	१४	मधु	मधु
३१	१६	क्लपष	कल्मष
३१	२०	भूयिष्ठ	भूयिष्ठ
३९	१४	तत्पर	नेमें तत्पर
४१	५	सी	सीमा
४१	२०	सा	स
४५	१६	क्रोत्तसा	कोत्तंसा
४७	२	साथ	=
५७	४	वाड	वाढ
५८	१७	सदत्त	सद्दत्त
५९	२०	तिसगा	तिस्रणा
६०	११	गीत	वीत
६५	१	खिया	खियं
६६	९	द्वार	द्वारा
६८	१५	मलिये	इसलिये
६९	८	मै	॥
७१	७	मात	माना
७२	१९	ना	न
७३	७	अवधिज्ञान	मिथ्या अवधिज्ञान
७५	८	किसी	किसी गांवमें
७६	१२	द्वो	ही

७८	७	ससारमें	ससारके
८०	१७	अघ	अद्य
८८	९	करनेके	करनेके लिये
९०	२०	क्रियार्द्धि	क्रियर्द्धि
१०४	१७	कप	कर्प
१०८	२१	नमग्नी	नभसी
१११	५	ओंका	ओंसे
११२	२१	शयिक	शायिक
११६	१	पर्दार्थ	पदार्थ
१२४	२१	दु स्वनिकरभाजका	दु.खनिकरभाजका:
१२८	१५	सस्येय	अस्तेय
१३७	१७	दंवेपु	देवेपु
१४०	१९	तेपा	नस्य
१५३	१०	पुद्गल	पुद्गल
”	११	”	”
”	१८	द्वीद्रिये	द्वीन्द्रिये
१५४	६	चल्लनेमें	चलनेमें
१५६	२३	वार्धो	यार्थी
१५९	१६	न राच	नाराच
”	१७	असंप्राप्तामृपाटिक	असंप्राप्तासृपाटिक
१६२	१९	घर्मणा	धर्मणा
१७९	१८	नेमिपार्श्वातरेंऽतिम	नेमिपार्श्वातरेंऽतिमः
१८६	६	कालमें	कालोंमें
१९१	१५	वथिता	कथिता
१९३	२२	घर्मात	धर्मात
१९७	१७	उच्छ्रवास	उच्छ्‌वास
२०१	१५	सामग्री	सामग्री
२०३	१७	गणाधिपो	गणाधिपो

मंडलाचार्य श्रीधर्मचन्द्रविरचित-

श्रीगौतमचरित्र।

(भाषाटीका सहित)

प्रथम अधिकार।

अर्हन्तं नौम्यहं नित्यं, मुक्तिलक्ष्मीप्रदायकम्।
विबुधनरनागेंद्रसेव्यमानं सुपत्कजम् ॥ १ ॥

अर्थ—जो भगवान् अरहंतदेव मोक्षरूपी लक्ष्मीके देनेवाले हैं और जिनके चरणकमलोंकी सेवा इंद्र, नरेंद्र, नागेंद्र, सब करते हैं ऐसे भगवान् अरहंतदेवको मैं सदा नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ जो सिद्ध भगवान् कर्मरूपी शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं, आठों कर्मोंके नाश होनेसे प्रगट हुए सम्यक्त्व आदि आठों गुणोंसे सुशोभित हैं, जो लोकशिखरपर विराजमान हैं और जो सदा उसी मुक्त अवस्थामें बने रहते हैं

श्रीगौतमचरित्रम्।

अर्हंतं नौम्यहं नित्यं मुक्तिलक्ष्मीप्रदायकम्। विबुधनरनागेंद्रसेव्यमानसुपत्कजम् ॥१॥ सिद्धा नः सिद्धये संतु कर्मारातिप्रणाशकाः।

ऐसे वे भगवान् सिद्धपरमेष्ठी हम लोगोंके समस्त कार्योंकी सिद्धि करें ॥ २ ॥ जो जिनेंद्रदेव महावीरस्वामी महाधीर, वीर और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं तथा महावीर, वर्द्धमान, वीर, सन्मति आदि जिनके नाम हैं, ऐसे जिनराज श्री-महावीरस्वामीको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ३ ॥ जो भगवान् महावीरस्वामी इच्छानुसार फल प्रदान करनेवाले हैं, मोहरूपी महायोद्धाको जीतनेवाले हैं और मुक्तिरूपी सुन्दरीके स्वामी हैं ऐसे वे भगवान् हमें सद्बुद्धि देवें ॥ ४ ॥ जो भव्य रूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाली है और संसारके समस्त पदार्थोंको दिखानेवाली है ऐसी भगवान् जिनेन्द्रदेवसे प्रगट होनेवाली सरस्वतीदेवी सूर्यकी प्रभाके समान संसारके समस्त जीवोंका अज्ञानांधकार दूर करो ॥५॥ श्री सर्वज्ञदेवके मुखसे उत्पन्न होनेवाली जो सरस्वतीदेवी सरस कामधेनुके समान सेवकोंका सदा हित करनेवाली है, वह श्री सरस्वती[illegible] हम लोगोंके इच्छानुसार कार्योंकी सिद्धि करो ॥ ६ ॥ जो सज्ज-नोत्तम मुनिराज सद्धर्मरूपी अमृतके समूहसे तृप्त रहते हैं और जो परोपकार करनेमें सदा तत्पर रहते हैं ऐसे मुनिराज मुझपर

सम्यक्त्वादिगुणोपेता नित्या लोकाग्रवासिनः ॥२॥ महा[illegible] महाधीर वर्द्धमान जिनेश्वरम् । वीर निर्वाणदातार वंदे श्रीसन्[illegible] जिनम् ॥३॥ क्रियान्मे सन्मति वीर ! ईहितार्थप्रदायकः । मोहसु[illegible]ज्जेता मुक्तिभीमंतिनीव[illegible] ॥४॥ भव्यांभोजविकासंती विश्वपद[illegible]का । तमो हरतु लोक[illegible] रविमेव सरस्वती ॥५॥ देयान्महा[illegible] सिद्धि श्रीम[illegible]मुखोद्भ[illegible] । सरसा कामधेनुर्वा सेवकहितका[illegible] ६ ॥

सदा प्रसन्न रहें ॥ ७ ॥ जो मुनिराज कामदेवरूपी मदोन्मत्त हाथीको जीतनेवाले हैं, जो क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि अन्तरङ्ग शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं और जो संसाररूपी महासागरके डरसे सदा भयभीत रहते हैं ऐसे मुनिराजके चरणकमलोंको मैं सदा नमस्कार करता हूं ॥ ८ ॥ जो सज्जन दुष्ट पुरुषोंके वचन रूपी सर्पोंसे कभी विकारको प्राप्त नहीं होते हैं और जो सदा दूसरोंके हितकी ही इच्छा करते रहते हैं ऐसे सज्जनोंको भी मैं नमस्कार करता हूं ॥९॥ जो दूसरोंके कार्योंमें सदा विघ्न करनेवाले हैं, जिनका हृदय सदा कुटिल रहता है और जो सर्पके समान सदा निंदनीय हैं ऐसे दुष्ट पुरुषोंको मैं उनके डरसे नमस्कार करता हूं ॥१०॥ पहिलेके महा ऋषियोंके मुंहसे सुनकर और शेष सज्जनोंसे पूछकर मै श्रीगौतमस्वामीका अत्यंत सुख उत्पन्न करनेवाला चरित्र कहता हूं ॥ ११ ॥ न्याय, सिद्धांत, काव्य, छंद, अलंकार, उपमा, व्याकरण, पुराण आदि शास्त्रोंको मैं सर्वथा नहीं जानता, तथा

सद्धर्मामृतसंदोहप्रीणितसज्जना मम । प्रसन्ना यतयः संतु परोपकृतितत्पराः ॥७॥ कामकरींद्रनेतृंश्च मोहक्रोधादिनाशकान् । यतिनाथान् सदा वंदे भवाब्धिभयभीतिकान् ॥ ८ ॥ विकृतिं यांति नो ये हि दुर्जनवचनाहिभिः । सज्जनांस्तानहं नौमि परेषां हितकांक्षिणः । दुर्जनान् भयतो वंदे परप्रत्यूहकारिणः । कुटिलहृदयान् सर्पीछोकविर्निदितान्निव ॥ १० ॥ पूर्वर्षिवदनाच्छ्रुत्वा शेषानापृच्छ्य सज्जनान् । गौतमस्वामिनो वक्ष्ये चरितं सुसुखाकरम् ॥ ११ ॥ न्यायसिद्धांतसत्काव्यछंदोऽलंकाररूपकम् । व्याकरणपुराणादिशास्त्रौघं च न वेद्म्यहम्

यह शास्त्र जो मैं वना रहा हूं वह भी संधि, वर्ण, शब्द, अर्थ, धातु, हेतु आदि सवसे रहित है इसलिये विद्वान् पुरुषोंको यह मेरा अपराध सदा क्षमा करते रहना चाहिये ॥१२-१३॥ जिसप्रकार जल कमलोंको उत्पन्न करता है परंतु उनकी सुगंधिको सव ओर वायु ही फैलाता है उसीप्रकार कविलोग काव्य-रचना करते रहते हैं परन्तु सज्जन लोग उसे सदा शुद्ध करते रहते हैं। (यह सदाकी रीति है) ॥ १४ ॥ जिसप्रकार आमकी मंजरी कोकिलोंको वोलनेके लिये वाध्य करती है उसीप्रकार श्रीगौतमस्वामीकी भक्ति ही उनके जीवनचरित्रकी रचना करनेके लिये मेरे मनमें उत्साह दिलाती है। भावार्थ-उनकी भक्तिसे ही मैं यह चरित्र लिखता हूं ॥ १५ ॥ जिसप्रकार किसी ऊंचे पर्वतपर चढ़नेकी इच्छा करनेवाले लंगड़े मनुष्यकी सव लोग हँसी उड़ाते हैं उसी-प्रकार अति अल्पवुद्धिको धारण करता हुआ मैं भी इस चरित्रको लिखनेकी इच्छा करता हूं इसलिये मैं भी अच्छे कवियोंकी दृष्टिमें अवश्य ही हँसीका पात्र समझा जाऊंगा ॥१६॥

॥ १२ ॥ सत्संधिवर्णशब्दार्थधातुहेतुविवर्जितम् । क्रियते यन्मया सर्वं तत्तज्ज्ञैः क्षम्यते सदा ॥ १३ ॥ कुर्वन्ति कवयः काव्यं सन्तः शुध्यन्ति तत्सदा । सुवते वारि पद्मानि गंध तन्वन्ति वायवः ॥१४॥ अस्य भक्तिः करोत्येव मां हि सोद्यममानसम् । मंजरी सहकारस्य मौखर्यं कोकिलं यथा ॥ १५ ॥ अल्पमतिःकवीनां हि लप्स्यामि हास्यमंदिरम् । चिकीर्षुश्चरितं खंजो गिर्यारोहमना इव ॥१६॥ जंवू-द्वीपोऽथ संभाति जंवूवृक्षोपलक्षितः । लवणवार्धिनाविष्टो लक्षयोज-

अथानन्तर—इस मध्यलोकके मध्यभागमें जम्बूवृक्षसे सुशोभित, लवणसमुद्रसे घिरा हुआ और एक लाख योजन चौड़ा जम्बूद्वीप शोभायमान है ॥१७॥ उस जम्बूद्वीपके मध्यमें सुदर्शन नामका मेरु पर्वत है जो कि देवोंका स्थान है तथा उसी जम्बूद्वीपमें सोने चांदीके अनादि कालसे चले आए और सदा रहनेवाले छह कुलाचल पर्वत हैं ॥१८॥ उस मेरु पर्वतके पूर्व पश्चिमकी ओर बत्तीस विदेह हैं जहांसे भव्यजीव सदा मोक्ष प्राप्त करते रहते हैं ॥१९॥ उसी मेरुपर्वतके दक्षिण उत्तरकी ओर छह भोगभूमियां हैं जहांके स्त्री पुरुष मरकर सदा पहले और दूसरे स्वर्गमें ही उत्पन्न होते रहते हैं ॥२०॥ उन भोगभूमियोंके दक्षिण उत्तरकी ओर भरत और ऐरावत नामके दो क्षेत्र हैं जिनके मध्यमें रूपामय विजयार्द्ध पर्वत पड़े हुए हैं और उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके छह छह काल जिनमें सदा घूमा करते हैं ॥ २१ ॥ उनमेंसे भरतक्षेत्रकी चौड़ाई पांचसौ छव्वीस योजन छह कला (५२६ ६/१९ योजन) है तथा विजयार्द्ध पर्वत और गंगा, सिंधु नामकी दो नदियोंके

नविस्तृतः ॥ १७ ॥ मध्ये सुदर्शनो नाम गिरींद्रोऽस्ति सुरालयः । षड्भिकुलाचलैर्युक्तः स्वर्णरूपमयैर्ध्रुवैः ॥ १८ ॥ पूर्वपश्चिमदिग्भागे द्वात्रिंशच्च विदेहकाः । मेरोर्यत्र जना भव्याः मुक्तिं यांति निरंतरम् ॥ १९ ॥ दक्षिणोत्तरयोस्तस्य षड्भोगभूमयो मताः । तत्रत्या मानवा नार्यो यांति कल्पद्वयं सदा ॥२०॥ तद्दक्षिणोत्तरे भागे भारतैरावताभिधे । क्षेत्रे षट्कालसंयुक्ते स्तो रूप्याद्रिसमाकुले ॥२१॥ षड्विंशत्यधिकं पंचशतयोजनविस्तृतम् । भारतं तत्र सत्क्षेत्रं स षट्कलं

द्वारा उस भरतक्षेत्रके छह भाग हो गये हैं जो कि छह देश कहलाते हैं ॥ २२ ॥ इसी भरतक्षेत्रमें एक मगध नामका देश है जो कि पृथिवीके तिलकके समान शोभायमान है, अनेक महा उत्सवोंसे सुशोभित है और अनेक धर्मात्मा सज्जनोंसे भरपूर है ॥ २३ ॥ इसके सिवाय मटम्ब, कर्वट, गांव, खेट, पत्तन, नगर, वाहन, द्रोण आदि सब बातोंसे वह देश सुशोभित है ॥ २४ ॥ उस देशके वृक्ष बडे ऊंचे हैं, सुंदर हैं, सुख देनेवाले हैं, घनी छाया और फल फूलोंसे सुशोभित हैं तथा ठीक कल्पवृक्षोंके समान जान पडते हैं ॥ २५ ॥ उस देशके खेतोंमें मनोहर धान्य सदा उत्पन्न होते रहते हैं और समस्त प्राणियोंको जीवनदान देनेवाली औषधियां भी खूब उत्पन्न होती हैं ॥ २६ ॥ वहांके सरोवर श्रेष्ठ कवियोंके वचनोंके समान शोभायमान हैं, क्योंकि जिसप्रकार श्रेष्ठ कवियोंके वचन गंभीर होते हैं उसीप्रकार वे सरोवर भी गंभीर (गहरे) थे, कवियोंके वचन जैसे निर्मल होते हैं उसीप्रकार वे सरोवर भी निर्मल थे, कवियोंके वचन जैसे सरस (वीर, करुणा आदि नौ रसोंसे भरपूर) होते हैं

सदेशकम् ॥२२॥ धर्मिष्ठसज्जनाकीर्णो नानामहोत्सवैर्युत । मगधस्तत्र देशोऽस्ति पृथिवीतिलकोपमः ॥२३॥ मटवकर्वटग्रामखेटपत्तनभासित.। नगरवाहनद्रोणपुरस्सरसमावृतः ॥ २४ ॥ (युग्मम्)॥ यत्र महीरुहा भांति सफलाः प्रोन्नता वराः। सुखदाः सघनच्छायाः सुरवृक्षा इवापराः ॥२५॥ यत्र क्षेत्रेषु सस्यानि प्रोत्पद्यन्ते निरंतरम् । कांतानि विश्वजन्तूनां सज्जीवौषधानि च ॥ २६ ॥ सरांसि यत्र भासंते निम्नानि

उसीप्रकार वे सरोवर भी सरस वा जलसे भरपूर थे और कवियोंके वचन जैसे पद्मबंध (कमलके आकारमें बने हुए श्लोक) होते हैं उसीप्रकार वे सरोवर भी पद्मबंध अर्थात् कमलोंसे सुशोभित थे ॥ २७ ॥ उस देशके पर्वतोंकी गुफाओंमें किन्नर जातिके देव अपनी अपनी देवांगनाओके साथ क्रीड़ा करते हुए और चंद्रमाके वाहक देवोंको निश्चल करते हुए सदा गाते रहते हैं ॥ २८ ॥ वहांके वनोंकी शोभाको देखकर देव लोगोंके हृदय भी कामदेवके वशीभूत होजाते हैं और वे अपनी अपनी देवांगनाओंके साथ वहींपर क्रीड़ा करने लग जाते हैं ॥ २९ ॥ उस देशमें पद पदपर ग्वालोंकी स्त्रियां गायें चराती थीं और वे ऐसी सुन्दर थीं कि उनके रूपपर मोहित होकर पथिक लोग भी अपना अपना मार्ग चलना भूल जाते थे ॥३०॥ वहांकी जनता धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुपार्थोंको सेवन करती हुई शोभायमान थी, जिनधर्मके पालन करनेमें भारी उत्साह रखती थी और शीलव्रतसे सदा विभूपित रहती थी ॥ ३१ ॥ वहांपर श्री जिनेन्द्रदेवके

विमलानि च । सरसानि सपद्मानि वचनानीव सत्कवेः ॥ २७ ॥ कंदरेपु गिरींद्राणां गायंति यत्र किन्नराः । स्वस्त्रीभिः क्रीडया युक्ताः स्थिरीकृतेंदुवाहनाः ॥ २८ ॥ अमरा यत्र दीव्यन्ति स्ववधूभिः समं पराः । वनशोभां समालोक्य कामनिर्जितचेतसः ॥२९॥ पथिका यत्र पंथानं नाक्रामंति पदे पदे । गोपसीमंतिनीरूपसंसक्तमानसा ध्रुवम् ॥३०॥ शोभते जनता यत्र त्रिवर्गेपु परायणा । जिनधर्ममहोत्साहा सुशीलव्रतभूपिता ॥३१॥ यत्र वसुमती जाता भूमी रत्नादिसद्धनम् ।

गर्भ कल्याणकके समय जो रत्नोंकी वर्षा होती थी उस श्रेष्ठ धनको धारण करती हुई वहांकी पृथ्वी वास्तवमें वसुमती (धनको धारण करनेवाली) होगई थी ॥ ३२ ॥ इसी मगध देशमें अनेक प्रकारके पदार्थोंसे भरपूर, मनुष्य और देवोंसे सुशोभित तथा स्वर्ग लोकके समान सुन्दर राजगृह नामका नगर शोभायमान है ॥ ३३ ॥ उस नगरके चारों ओर बहुत ही ऊँचा कोट शोभायमान था। वह कोट बहुत ही सुन्दर था, पक्षी और विद्याधरोंके मार्गको रोकता था और शत्रुओंके लिये भय उत्पन्न करता था ॥३४॥ उस कोटके चारों ओर मनोहर खाई थी जो कि निर्मल जलसे भरी हुई थी और प्रफुल्लित हुए कमलोंकी सुगन्धिके लोभसे अनेक भ्रमरोंको इकट्ठा करनेवाली थी ॥३५॥ उस राजगृह नगरमें चंद्रमाके समान श्वेत वर्णके अनेक जिनालय शोभायमान थे और वे अपनी शिखरपर उड़नेवाली पताकाओंसे आकाशको छू रहे थे ॥ ३६ ॥ वहांके उत्तम मनुष्य जल, चंदन आदि आठो द्रव्योंसे भगवान श्री जिनेंद्रदेवके चरणकमलोंकी पूजा करते थे और उनके चरण-

---

दधाना श्रीजिनेन्द्राणां गर्भकल्याणसंभवम् ॥३२॥ अनेकवस्तुसंपूर्णं देवनरसमाश्रितम्। राजगृहं पुरं तत्र भातीव नाकपत्तनम् ॥३३॥ यन्नगरबहिर्भागे शालस्तुंगोऽस्ति सुन्दरः। संरुद्धखगनिर्याणो वैरिवर्गभयप्रदः ॥ ३४ ॥ प्राकारखातिका रम्या दधाति विमलं जलम्। पद्मसुगंधिलोभेन प्राप्तभ्रमरसंचयम् ॥ ३५ ॥ यत्र श्रीजिनचैत्यानि भांति चंद्रसितानि हि। शिखरस्थपताकाग्रप्रस्पर्शितांबराणि वै ॥३६॥ यत्र जलादिभिर्द्रव्यैरर्चां कुर्वंति सन्नराः। जिनेन्द्रपादयुग्मस्य दर्शनाद्

कमलोंके दर्शन कर वहुत ही प्रसन्न होते थे ॥ ३७ ॥ वहांके धर्मात्मा पुरुप मांगनेवालोंके लिये उनकी इच्छासे भी अधिक दान देते थे और इसप्रकार चिरकालसे धनका संग्रह करनेवाले कुवेरको भी लज्जित करते थे ॥ ३८ ॥ वहांके तरुण पुरुप अपनी अपनी स्त्रियोंको सुख पहुंचा रहे थे और वे स्त्रियां भी अपने हाव, भाव, विलास आदिके द्वारा देवांगनाओंको भी लज्जित कर रही थीं ॥३९॥ उस नगरके घरोंकी पंक्तियां वड़ी ही ऊंची थीं, वड़ी ही सुंदर थीं और वहुत ही अच्छी जान पडती थीं तथा वे अपनी सफेदीकी सुंदर शोभासे चंद्रमंडलको भी हंस रही थीं ॥४०॥ वहांके वाजारोंकी पंक्तियां वहुत ही सुंदर थीं, उनकी दीवालें मणियोंसे सुशोभित थीं और सोना, वस्त्र, धान्य आदि अनेक पदार्थोंका लेन देन उनमें हो रहा था ॥ ४१ ॥ उस नगरमें श्रेणिक नामके राजा राज्य करते थे। उनका हृदय सम्यग्दर्शनसे अत्यंत दृढ़ था और नमस्कार करते हुए समस्त सामंतोंके मुकुटमें उनके चरणकमल ददीप्यमान हो रहे थे ॥ ४२ ॥

हृष्टचेतसः ॥ ३७ ॥ धर्मिष्ठा यत्र सद्दानं ददतेऽर्थीच्छयाधिकम् । लज्जयंत इव श्रीदं चिरसंचितवित्तकम् ॥ ३८ ॥ तरुणा यत्र कुर्वंति कामिनी सुखसंगताम् । हावभावविलासाद्यैस्ताडितामरसुन्दरीम् ॥३९॥ गृहाली राजते यत्र प्रोत्तुंगा सुन्दराकृतिः । चंद्रविंबं हसंतीव श्वेतसुधांसुशोभया ॥ ४० ॥ यद्धट्टराजयो भांति मणिरजितभित्तयः । सुवर्णवस्त्रधान्यादिक्रियाणकप्रमंडिताः ॥४१॥ नमिताशेषसामंतमुकुटदीपितपत्कजः । भूपोऽभूच्छ्रेणिकस्तत्र सम्यक्त्वदृढचित्तकः ॥४२॥

उनके राज्यमें समस्त प्रजा धर्म-साधन करनेमें सदा तत्पर रहती थी और भय, मानसिक वेदना, शारीरिक वेदना, संताप, दुःख, दरिद्रता आदि सब क्लेशोंसे अलग रहती थी ॥ ४३ ॥ वे महाराज श्रेणिक अपने रूपसे कामदेवको भी लज्जित करते थे, अपने तेजसे सूर्यको भी जीतते थे और याचकोंके लिये उनका कल्याण करनेवाला दान देकर कुबेरको भी नीचा दिखाते थे ॥ ४४ ॥ विधाताने समुद्रसे गम्भीरता लेकर, चन्द्रमासे सुन्दरता लेकर, पर्वतसे निश्चलता लेकर और इन्द्रके गुरु बृहस्पतिसे बुद्धि लेकर उन राजा श्रेणिकमें गम्भीरता, सुन्दरता, निश्चलता और बुद्धिमत्ता आदि गुण निर्माण किये थे ॥ ४५ ॥ वे महाराज श्रेणिक तीनों प्रकारकी शक्तियां धारण करते थे, संधि, विग्रह आदि छहों गुणोंको धारण करते थे, धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थोंको सदा सिद्ध करते रहते थे और समस्त इंद्रियोंको अपने वशमें रखते थे ॥ ४६ ॥ पूर्ण चन्द्रमाके समान उनकी निर्मल कीर्ति चारों दिशाओंमें घूम रही थी। यदि ऐसा न होता तो

यस्मिन् सति प्रजा' सर्वा वभूवुर्वृपतत्पराः । भयाधिव्याधिसन्तापदुःखदारिद्र्यवर्जिताः ॥४३॥ रूपेण तर्जिताऽनंगस्तेजसा जितभास्कर । जिगाय राजराजं स याचके हितदानतः ॥४४॥ गांभीर्यं जलधेः सौम्यं चन्द्रस्य स्थिरतां गिरेः। मति सुरगुरोर्लात्वा धात्रास्मिन्निर्मिता गुणाः ॥४५॥ शक्तित्रयं दधानो यो वभूव षड्गुणान्वितः । त्रिवर्गं साधयन्नित्यं वशीकृताक्षवर्गकः ॥४६॥ सुकीर्तिर्यस्य विभ्राम दिक्षु पूर्णेंदुनिर्मला । अन्यथा सुरसुन्दर्यः कथं गायंति तद्गुणान् ॥ ४७ ॥

देवांगनाएँ प्रत्येक स्थानपर उनके गुणोंका किसप्रकार गान कर सकती थीं ? भावार्थ—देवांगनाएं सब जगह उनके गुण गाती थीं इसीसे मालूम होता था कि उनकी कीर्ति सब ओर फैली हुई है ॥ ४७ ॥ उनके शत्रुओंका समुदाय व्याकुल हो गया था, क्षणभंगुर वा क्षणमें ही नाश होनेवाला होगया था और द्वितीयाके चन्द्रमाकी कलाके समान अत्यन्त क्षीण होगया था ॥ ४८ ॥ उनकी बुद्धि सूर्यकी प्रभाके समान स्वभावसे ही प्रतापयुक्त थी और इसीलिये वह चारों प्रकारकी राजविद्या-ओंको प्रकाशित करती थी ॥ ४९ ॥ जिसप्रकार कामदेवके रति है और इंद्रके इंद्राणी है उसीप्रकार उन महाराज श्रेणि-कके कांति और गुणोंसे सुशोभित चेलना नामकी रानी थी ॥ ५० ॥ उस रानीके नेत्र हिरणीके समान थे, उसका मुख चंद्रमाके समान सुंदर था, उसके केश श्याम थे, कटि क्षीण थी, कुच कठिन और बड़े थे, वह बहुत ही मनोहर थी, उसका माथा विस्तीर्ण था, नाक तोतेके समान थी, भोंहें सुंदर थीं, वचन मीठे थे, उसका गमन मदोन्मत्त हाथीके समान

यद्वैरिसंहतिर्जाता विकला क्षणभंगुरा। अभूरिमंडलाक्रांतिर्द्वितीयेंदु-तनुर्यथा ॥४८॥ चतस्रो राजविद्या हि प्रद्योततेस्म यन्मतिः। निस-र्गजा प्रतापाढ्या काष्ठामेव त्विषांपतेः ॥ ४९ ॥ तस्याभूच्चेलना रामा सुकांतिर्गुणगौरवा। कामस्य रतिदेवीव शचीवापि दिवस्पतेः ॥५०॥ मृगेक्षणा च सोमास्या श्यामकेशा कृशोदरी। पीतपयोधरा रम्या विस्तीर्णभालपट्टिका ॥५१॥ कीरगंधवहा सुभ्रूः सुवाक् मत्तेभगामिनी। सुनाभिः सुकुमारांगी सुनखी गुणपूरिता ॥ ५२ ॥ सदा तुष्टा पवि-

था, उसकी नाभि सुंदर थी, अंग प्रत्यंग सब सुकुमार थे, नख सुंदर थे, गुणोंसे वह भरपूर थी, वह सदा संतुष्ट रहती थी, उसका आत्मा पवित्र थी, बुद्धि अच्छी तीक्ष्ण थी, वह शुद्धवंशमें उत्पन्न हुई थी, हाव, भाव, विलास आदि गुणोंसे सुशोभित थी, स्त्रियोंमें प्रधान थी, पतिव्रता थी, याचकोंके लिये हित करनेवाला श्रेष्ठ दान देनेवाली थी. शील और व्रतोंसे विभूपित थी, उसका हृदय सम्यग्दर्शनसे भरपूर था, और वह जिनधर्मके सेवन करनेमें सदा तत्पर रहती थी ॥ ५१-५४ ॥ अनेक देशोंके स्वामी, चारों प्रकारकी सेनासे सुशोभित और वडे समृद्धिशाली राजा श्रेणिक उस चेलना रानीके साथ अनेक प्रकारके भोग भोगते हुए निवास करते थे ॥ ५५ ॥

अथानंतर-अंतिम तीर्थंकर भगवान् श्रीमहावीरस्वामी अनेक देशोंमें विहार करते हुए विपुलाचल पर्वतके मस्तकपर समवसरणके साथ आ विराजमान हुए ॥ ५६ ॥ वे भगवान् महावीरस्वामी तीन छत्रोंसे सुशोभित थे और भव्य जीवोंको धर्मोपदेशरूपी अमृतका पान कराकर उनके पापरूपी विपको

त्रात्मा सुमतिः शुद्धवंशजा। हावभावविलासाढ्या मतल्लिका पतिव्रता ॥९३॥ याचकहितसद्दात्री सुशीलव्रतभूषिता। सम्यक्त्वनिर्भरस्वता जिनधर्मरता सदा ॥९४॥ (पंचभिः कुलकम्) ॥ भुंजन् भोगान् तया सार्द्धं संतस्थे श्रेणिको नृपः। समृद्धो देशसंयुक्तश्चतुरंगवलान्वितः ॥ ९५ ॥ अथ तीर्थंकरो वीरो विपुलाचलमस्तके। आगतो विहरन् देशान् समवसृतिराजितः ॥९६॥ धर्मोपदेशपीयूषपानतो भव्यदेहि-

दूर करते थे ॥ ५७ ॥ उन भगवान् महावीरस्वामीके साथ गौतम गणधर आदि अनेक मुनियोंका समुदाय था और सुरेन्द्र, नरेन्द्र, खगेन्द्र आदि सब उनके चरणकमलोंकी सेवा करते थे ॥ ५८ ॥ उन भगवान् महावीरस्वामीके पुण्यके माहात्म्यसे सिंह, हाथी, चूहे, बिल्ली आदि जातिविरोधी जीव भी अपना अपना वैर छोड़कर परस्पर प्रेम करने लग-गये थे ॥ ५९ ॥ भगवानके पधारनेके साथ ही सब वृक्ष फल-फूलोंसे सुशोभित होगये थे, सब वृक्षोंसे सुगन्ध छूटने लगी थी और वे सब कल्पवृक्षोंके समान अत्यन्त सुन्दर दिखाई देने लगगये थे ॥६०॥ इसप्रकार भगवान् महावीरस्वामीको देखकर मालीके हृदयमें बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उसने हाथ जोड़कर भगवानको नमस्कार किया ॥ ६१ ॥ तदनंतर उसने सब ऋतुओंके फल फूल लिये और फिर वह प्रसन्न-मुख होकर महाराज श्रेणिकके राजभवनके द्वारपर जा पहुंचा ॥ ६२ ॥ मालीने वहां जाकर द्वारपालसे कहा कि तू महारा-

---

नाम् । पापविषं हरन् स्वामी छत्रत्रयविभूषितः ॥५७॥ श्रीगौतमगणेन्द्रादिमुनिवृन्दसमाश्रितः । सुरासुरनराधीशसेव्यमानक्रमाम्बुजः ॥५८॥ (त्रिभिः कुलकम्) ॥ यत्पुण्यस्य सुमाहात्म्यादभूवन्मुक्तवैरिणः । सिंहनागविडालाखुप्रमुखाः प्रीतिमंडिताः ॥ ५९ ॥ यदागमाद्द्रुमाः सर्वेऽभूवन् सत्फलिताः शुभाः । सपुष्पाः कल्पवृक्षा वा सुरभिगंध-संयुताः ॥६०॥ एवं विधं जिनं वीरं दृष्ट्वा साश्चर्यमानसः । बनमाली ननामासौ संयोजितकरांजलिः ॥ ६१ ॥ सर्वर्तुजं फलं पुष्पं गृहीत्वा बनमालिकः । भूपतिमंदिरद्वारे संस्थितो विकचाननः ॥६२॥ तेनोक्तं

जको खवर कर दे कि माली आपके समीप आना चाहता है ॥ ६३ ॥ द्वारपालने जाकर महाराजसे निवेदन किया कि हे महाराज ! माली आया है और यहां आनेके लिये आपकी आज्ञा मांगरहा है॥६४॥ महाराजने द्वारपालको आज्ञा दी कि तुम शीघ्र ही उसे यहां लेआओ। तदनन्तर वह माली उस द्वारपालकी आज्ञासे महाराजके समीप पहुंचा ॥ ६५ ॥ उस राजसभामें सिंहासनपर विराजमान हुए महाराज श्रेणिकको देखकर उस मालीने हाथ जोड़े और फिर लाये हुए फल पुष्प समर्पण कर नमस्कार किया ॥ ६६ ॥ असमयमें उत्पन्न हुए और अत्यंत आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले उन मनोहर फल पुष्पोंको देखकर महाराज श्रेणिक अपने हृदयमें वहुत ही प्रसन्न हुए ॥ ६७ ॥ तथा उन्होंने उस मालीसे पूछा कि तू कल्याण करनेवाले इन फल पुष्पोंको कहांसे लाया है ? इसके उत्तरमें मालीने महाराजसे मीठे वचनोंमें कहा कि हे महाराज ! विपुलाचल पर्वतके मस्तकपर तीनों लोकोंके इंद्रोंके द्वारा पूज्य ऐसे

द्वारपालेति राजानं त्वं समादिश । वनपालः समायातुमिच्छति भवदंतिकम् ॥ ६३ ॥ वनाधिपः समायातस्तवादेशं स वाञ्छते । सोपि तत्र ततो गत्वा जगादेति क्षितीश्वरम् ॥६४॥ राजावादीद्वचो द्वाःस्थ तेनात्रागम्यतां द्रुतम्। वनमाली तदादेशाज्जगाम नृपसन्निधिम् ॥६५॥ सिंहासने समासीनं पार्थिवं वीक्ष्य संसदि । सोऽपि पुष्पफलं दत्वा प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥६६॥ अकालप्रभवं कांतं भूरिविस्मयकारणम् । पुष्पफलादिकं दृष्ट्वा जहर्ष श्रेणिको हृदि ॥ ६७॥ आनीतानि त्वया कस्मादिमानि शर्मदानि वै । सोऽब्रवीदिति तां सूक्तिं वल्लभां वन-

भगवान् श्रीमहावीरस्वामी पधारे हैं॥६८–६९॥ हे महाराज ! उन्हींके प्रभावसे इच्छानुसार फलको देनेवाले और अत्यंत आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले ये सब प्रकारके फल पुष्प प्रगट हुए हैं ॥ ७० ॥ यह सुनते ही महाराज उठे और जिस दिशाकी ओर विपुलाचल पर्वत था उस दिशाकी ओर सात पैंड़ चलकर बड़ी भक्तिके साथ भगवान महावीरस्वामीको नमस्कार किया। तदनतर फिर वे अपने सिंहासनपर आ विराजमान हुए ॥७१॥ महाराजने प्रसन्न होकर, वस्त्र आभूषण देकर उस मालीका आदर सत्कार किया, सो ठीक ही है क्योंकि प्रिय मुनिराजके पधारनेपर कौनसा जीव संतुष्ट नहीं होता है भावार्थ–सभी जीव संतुष्ट होते हैं ॥७२॥ महाराजने दर्शनार्थ सबको चलनेके लिये भव्य जीवोंको प्रसन्न करनेवाली भेरी बजवाई। उसे सुनकर सबलोग चलनेके लिये तैयार होगये ॥ ७३ ॥ महाराज श्रेणिक अपनी रानी चेलनाके साथ, नगर निवासियोंके साथ और सेनाके साथ हाथी

पालकः ॥६८॥ स तं जगाद भूपेंद्र ! विपुलाचलमस्तके। महावीरः समायातस्त्रिभुवनेंद्रप्रपूजितः ॥६९॥ अतिविस्मयकारीणि विश्वपुष्पफलानि च। तत्प्रभावान्नृपाभूवन् मनोवांछितदानि हि ॥ ७० ॥ सप्तपदानि गत्वा संनम्य तद्दिशं नृपः। भक्तिभारेण संयुक्तः सिंहासने स्थितो वरः ॥७१॥ हृष्टः स पूजयित्वा तं वस्त्राभरणदानतः। को न तुष्यति सज्जंतुः प्रिये समागते मुनौ ॥७२॥ स भेरीं दापयामास भव्यहर्षप्रदायिकाम्। तदा लोका हि तां श्रुत्वा बभूवुर्गमनोत्सुकाः ॥७३॥ सप्रियो नागरैः सार्द्धं ससेनो हर्षिताननः। वीरसन्नं

सवार होकर बड़ी प्रसन्नतासे भगवान महावीरस्वामीके दर्शनके लिये चले ॥ ७४ ॥ सबके साथ श्री महावीरस्वामीके शुभ समवसरणमें पहुंचकर महाराज श्रेणिकने मोक्षके अनन्त सुख देनेवाली भगवानकी स्तुति करना प्रारम्भ की ॥७५॥ हे भगवन् ! संसारमें आप परम पात्र हैं इसलिये आपकी जय हो, आप संसारसागरसे पार करनेवाले हैं इसलिये आपकी जय हो, आप सबका हित करनेवाले हैं इसलिये आपकी जय हो और आप सुखके समुद्र हैं इसलिये आपकी जय हो ॥७६॥ आप संसारी जीवोंके परम मित्र हैं इसलिये हे परमेष्ठिन् ! आपके लिये नमस्कार हो, आप संसाररूपी महासागरसे पार होनेके लिये जहाज हैं इसलिये हे मोक्ष प्राप्त करानेवाले भगवन् ! आपको नमस्कार हो ॥७७॥ आप गुणोंकी खानि हैं और संसारसे अत्यन्त भयभीत हैं इसलिये आपको नमस्कार हो, आप कर्मरूपी शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं और विषयरूपी विषको दूर करनेवाले हैं इसलिये आपको नमस्कार हो ॥७८॥ हे गुणोंके समुद्र ! हे स्वामिन् ! हे मुनियोंमें श्रेष्ठ !

चचालासौ समारुह्य सुहस्तिनम् ॥७४॥ स समासाद्य वीरस्य समवसरणं शुभम् । स्तुतिं कर्तुं समारेभे निर्वाणसुखदायिकाम् ॥७५॥ जय परमपात्र त्वं ! जय संसारपारग ! । जय सुहितकर्तस्त्वं जय त्वं ! सुखसागर ! ॥७६॥ जगत्परममित्राय परमेष्ठिन्नमोऽस्तु ते । भवाब्धितरपोताय शिवदायिन्नमोऽस्तु ते ॥७७॥ संसारभयभीताय नमस्तुभ्यं गुणाकर ! । विषापह नमस्तुभ्यं कर्मशत्रुविनाशिने ॥७८॥ गुणसरित्पते ! स्वामिन् ! मुनिपुंगव भो जिन ! । कस्ते क्षमो गुणान् वक्तुं कविवाचा-

हे जिनराज! आपके गुण कवियोंके वचनोंके भी अगोचर हैं अतएव आपके गुणोंका वर्णन करनेके लिये इस संसारमें कोई भी समर्थ नहीं है ॥ ७९ ॥ इसप्रकार भगवान महावीरस्वामीकी स्तुतिकर और गौतम आदि समस्त मुनिराजोंको नमस्कार कर वे महाराज श्रेणिक मनुष्योंके कोठेमें जाकर बैठ गये ॥८०॥ तदनंतर भगवान् महावीरस्वामीने भव्य जीवोंको प्रबुद्ध करनेके लिये—उन्हें समझानेके लिये परम आनंद उत्पन्न करनेवाला मनोहर धर्मोपदेश देना प्रारंभ किया ॥ ८१ ॥ मुनि और श्रावकोंके भेदसे धर्म दो प्रकारका है। उनमेंसे मुनिधर्मसे मोक्षकी सिद्धि होती है और श्रावकधर्मसे स्वर्गसुखकी सिद्धि होती है ॥ ८२ ॥ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके भेदसे वह मोक्षमार्ग तीन प्रकारका है (तीनोंका समुदाय ही मोक्षमार्ग है) उनमेंसे जीव, अजीव आदि सातों तत्त्वोंका यथार्थ श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन कहलाता है ॥ ८३ ॥ वह सम्यग्दर्शन दो प्रकारका है। एक निसर्गसे (उपदेशादिकके विना) उत्पन्न होनेवाला निसर्गज और दूसरा

मगोचरान् ॥७९॥ इति स्तुतिं विधायासौ महावीरस्य सत्प्रभोः। गौतमादीन्मुनीन्नत्वोपविष्टो नरकोष्ठके ॥ ८० ॥ ततो वीरो वचोऽवादीत्परमाह्लादकारणम्। धर्मोपदेशकं कांतं भव्यसंबोधहेतवे ॥८१॥ यतिश्रावकभेदेन धर्मस्तु द्विविधो मतः। मुक्तिराद्येन संसाध्या द्वितीयेन सुरालयः ॥ ८२ ॥ स सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रभेदतस्त्रिधा। तत्त्वार्थश्रद्धानं यत्तत्सम्यग्दर्शनं मतम् ॥८३॥ तच्चापि द्विविधं ज्ञेयं निसर्गाधिगमात्पुनः। एकैकशस्त्रयो भेदाः कथिताः श्रीजिनेश्वरैः।

अधिगम वा उपदेशादिकसे होनेवाला अधिगमज। इन दोनोंके औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिकके भेदसे तीन तीन भेद श्री जिनेंद्रदेवने कहे हैं ॥८४॥ अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति-मिथ्यात्व इन सातों प्रकृतियोंके उपशम होनेसे औपशमिक सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, इन सातों प्रकृतियोंके क्षय होनेसे क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है और पहिलेकी छह प्रकृतियोंके उदयाभावी क्षय होनेसे तथा उन्हीं सत्तावस्थित प्रकृतियोंके उप-शम होनेसे तथा देशघाती सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्वके उदय होनेसे क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होता है ॥ ८५ ॥ पदार्थोंके सच्चे ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहते हैं। वह सम्यग्ज्ञान मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानके भेदसे पांच प्रकारका कहा जाता है ॥८६॥ जैन शास्त्रोंमें पापरूप क्रियाओंके त्याग करनेको सम्यक्-चारित्र कहते हैं। पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्तिके भेदसे वह चारित्र तेरह प्रकारका गिना जाता है॥८७॥ अठारह दोषोंसे रहित सर्वज्ञ देवमें श्रद्धान करना, अहिंसा रूप धर्ममें श्रद्धान करना और परिग्रह रहित गुरुमें श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है ॥८८॥ संवेग, निर्वेद, निंदा,

---

॥८४॥ सप्तानां प्रकृतीनां वै शमादुपशमं क्षयात्। क्षायिकं मिश्रकं षट्शमादेकोदयात्पुनः ॥८५॥ प्रबोधो यत्पदार्थानां सम्यग्ज्ञानं तदु-च्यते। तच्च पंचविधं ज्ञेयं मतिश्रुतादिभेदतः ॥ ८६ ॥ पापक्रिया-निवृत्तिर्यत्तच्चारित्रं जिनागमे। महाव्रतादिभेदेन त्रयोदशविधं मतम् ॥ ८७ ॥ दोषैर्मुक्ते च सर्वज्ञे धर्मे हिंसादिवर्जिते। निःसंगे सुगुरौ

गर्हा, शम, भक्ति, वात्सल्य और कृपा ये आठ सम्यग्दर्शनके गुण कहलाते हैं ॥ ८९ ॥ भूख, प्यास, बुढ़ापा, द्वेष, निद्रा, भय, क्रोध, राग, आश्चर्य, मद, विषाद, पसीना, जन्म, मरण, खेद, मोह, चिंता, रति ये अठारह दोष कहलाते हैं। (सर्वज्ञ देव इन्हीं अठारह दोषोंसे रहित होते हैं) ॥९०॥ आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन, और शंका, कांक्षा आदि आठ दोष इसप्रकार सम्यग्दर्शनके पच्चीस दोष कहलाते हैं ॥९१॥ द्यूत (जूआ), मांस, मद्य, वेश्या, परस्त्री, चोरी और शिकार ये सात व्यसन कहलाते हैं। बुद्धिमानोंको इन सातों व्यसनोंका त्याग कर देना चाहिये ॥ ९२ ॥ जाति, कुल, धन, रूप, ज्ञान, तप, बल, बड़प्पन, इन आठोंका अभिमान करना आठ मद कहलाते हैं। विद्वानोंको इन आठों मदोंका त्याग कर देना चाहिये ॥ ९३ ॥ मद्य, मांस, मधुका त्याग और पांचों उदंबरोंका त्याग ये आठ मूलगुण कहलाते हैं। प्रत्येक गृहस्थको इन आठों मूलगुणोंका पालन अवश्य करना चाहिये

श्रद्धा या सम्यक्त्वं मतं हि तत् ॥ ८८ ॥ संवेगश्चापि निर्वेदो निंदा गर्हा तथा शमः। सम्यक्त्वेऽष्टौ गुणाः संति भक्तिर्वात्सल्यक कृपा ॥८९॥ क्षुत्तृट्जरारतिर्निद्रा भीरुट् रागोद्भुतं स्मयः। विषादस्वेदजन्मांताः खेदमोहौ स्मृतिर्द्विषः ॥९०॥ अष्टौ मदास्त्रयो मूढास्तथानायतनानि षट्। अष्टौ शंकादयश्चापि दृष्टिदोषाः बुधैर्मताः॥ ९१ ॥ द्यूत मांसं सुरापानं वेश्यान्यदारसेवने। चौर्यं च मृगया सप्त व्यसनानि त्यजेत्सुधीः ॥ ९२ ॥ जातिः महाकुलो लक्ष्मीः रूपं ज्ञानं तपो बलम्। शिल्पिरितिमदाश्चाष्टौ कर्तव्या नहि कोविदैः ॥९३॥ मद्यमांसमधु-

॥ ९४ ॥ मद्यका त्याग करनेवालोंको दूध छाछ मिले हुए, दो दिनके रक्खे हुए दही, छाछ, कांजी और चलितरस अन्न इन सब चीजोंका त्याग कर देना चाहिये ॥९५॥ इसीप्रकार मांसका त्याग करनेवालोंको चमड़ेमें रक्खा हुआ घी, दूध, तैल, पुष्प, शाक, मक्खन, कंदमूल, और वीधा (घुना) अन्न कभी नहीं खाना चाहिये ॥ ९६ ॥ धर्मात्मा लोगोंको वेंगन, सूरण, हींग, अदरक, और विना छना पानी वा दूध कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये। इनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये ॥९७॥ रमास, उड़द, मूंग, सुपारी आदि फलोंको विना तोड़े नहीं खाना चाहिये तथा अज्ञात फलोंका भी सर्वथा त्याग कर देना चाहिये ॥ ९८ ॥ इसीप्रकार बुद्धिमान लोगोंको शहतका भी सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। क्योंकि शहतके निकालनेमें अनेक जीवोंका घात होता है, अनेक मक्खियोंका रुधिर उसमें मिला रहता है और इसीलिये वह लोकमें भी अत्यंत निंदनीय गिना जाता है ॥ ९९ ॥ इनके सिवाय देशव्रती श्रावकोंको दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोपधो-

---

त्यागैः सहोदुंवरपचकैः। अष्टौ मूलगुणाः प्रोक्ताः पाल्यते गृहमेधिभिः ॥९४॥ दुग्धतक्रपरिक्षिप्ता दधितक्रं दिनद्वयम्। कांजिकं विरसं चान्नं न ग्राह्य मद्यवर्जिभिः ॥ ९५ ॥ चर्मघृतपयस्तैलं पुष्पशाकं नवाज्यकम्। कंदमूलं च विद्धान्नं न सेव्यं मांसवर्जितैः ॥ ९६ ॥ वृत्ताकं सूरणं चैव हिंगुकं शृंगवेरकम्। अगालितपयःपानं हीयते धर्मबुद्धिभिः ॥९७॥ कौशिकामाषमुद्गादेः फलमज्ञातनामकम्। अछिन्नफलपूगादिफलं सद्भिर्न गृह्यते ॥९८॥ जीवनिधनसंभूतं मक्षिकारुधिरान्वितम्।

पवास, सचित्तत्याग, रात्रिभुक्तित्याग, ब्रह्मचर्य, आरंभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग इन ग्यारह प्रतिमाओंका पालन करना चाहिये ॥१००-१०२॥ अहिंसा अणुव्रत, सत्य अणुव्रत, अचौर्य अणुव्रत, ब्रह्मचर्य अणुव्रत, परिग्रहपरिमाण अणुव्रत ये पांच अणुव्रत कहलाते हैं। श्रावकोंको इनका भी पालन करना चाहिये ॥ १०३ ॥ दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदंडविरतिव्रत ये तीन गुणव्रत कहलाते हैं। श्रावकाचारको अच्छी तरह जाननेवाले श्रावकोंको इनका भी प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये ॥ १०४ ॥ छहों कायके जीवोंपर कृपा करना, पांचों इंद्रियोंको तथा मनको वशमें करना, तथा रौद्रध्यान और आर्तध्यानका त्याग कर देना सामायिक कहलाता है। यह सामायिक श्रावकोंको नियत समयपर अवश्य करना चाहिये ॥१०५॥ अष्टमी चतुर्दशीके

मधुं लोकविनिंद्यं च कः सुधीः पातुमिच्छति ॥९९॥ आद्यं सुदर्शनं ज्ञेयं व्रतं सामायिकं तथा। सुप्रोपधोपवासोऽथ सचित्तवस्तुवर्जनम्। ॥ १०० ॥ रात्रिभुक्तिपरित्यागो ब्रह्मचर्यसुपालनम्। आरम्भरहितश्चापि परिग्रहप्रमाणकः ॥१०१॥ अननुमोदनं चैवमुपदेशविवर्जितम्। एकादश च पाल्यंते प्रतिमा देशव्रतिभिः ॥ १०२ ॥ जीवदया च सत्यं चास्तेयं च ब्रह्मचर्यता। परिग्रहप्रमाणं चाणुव्रतपंचकं मतम् ॥१०३॥ दिग्देशानर्थदंडेभ्यो विरतिर्या गुणव्रतम्। श्रावकाचारपारीणैः पालनीयं प्रयत्नतः ॥१०४॥ कृपा षड्जीवकायेषु पंचाक्षचित्तरोधनम्। रौद्रार्तध्यानसंत्यागो यस्तत्सामायिकं मतम् ॥ १०५ ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां प्रोषधं व्रतमाचरेत्। जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदेन

दिन प्रोपधोपवास करना चाहिये। वह प्रोपधोपवास उत्तम, मध्यम, जघन्यके भेदसे तीन प्रकारका माना जाता है ॥१०६॥ चंदन केशर आदि पदार्थोंका लगाना भोग कहलाता है तथा वस्त्र, आभूषण आदि पदार्थ उपभोग कहलाते हैं। इन दोनों प्रकारके पदार्थोंकी संख्या नियत कर लेनी चाहिये। इसको भोगोपभोगपरिमाणव्रत कहते हैं। श्रावकोंको इसका भी पालन करना अत्यावश्यक है ॥ १०७ ॥ ज्ञानदान, औषध-दान, अभयदान और आहारदानके भेदसे दान चार प्रकारका कहलाता है। यह चारो प्रकारका दान अपनी शक्तिके अनुसार गृहत्यागी मुनियोंके लिये देना चाहिये। इसको अतिथिसंविभागव्रत कहते हैं ॥१०८॥ वाह्य और आभ्यंतरके भेदसे दो प्रकारका शुद्ध तपश्चरण कहलाता है। यह दोनों प्रकारका तपश्चरण तत्त्वज्ञानियोंको अपने कर्म नष्ट करनेके लिये अवश्य धारण करना चाहिये ॥१०९॥ इसप्रकार महाराज श्रेणिक मुनिधर्म और श्रावकधर्म, दोनों प्रकारके धर्मोंको सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए सो ठीक ही है, भरे अमृतके घड़ेको पाकर कौन संतुष्ट नहीं होता? अर्थात् सभी संतुष्ट होते हैं ॥११०॥

तत्त्रिधा मतम् ॥ १०६ ॥ घनचंदनलेपाद्या वस्त्रविभूषणादयः। क्रमात्सख्या विधातव्या भोगोपभोगयोस्तयोः ॥१०७॥ ज्ञानौषधा-भयाहारभेदाद्दानं चतुर्विधम्। स्वशक्त्यातिथये देयं प्रोक्तोऽतिथिवि-भागकः ॥१०८॥ द्विविधं सुतपः शुद्धं वाह्याभ्यंतरभेदतः। तत्तत्त्व-वेदिभिर्ग्राह्यं कर्मनाशनहेतवे ॥१०९॥इत्यादिकं द्विधा धर्मं श्रुत्वा मनसि भूपतिः। जहर्ष स सुधाकुम्भं प्राप्य को नहि तुष्यति ॥ ११० ॥

तदन्तर महाराज श्रेणिकने गणधरोंके स्वामी सर्वज्ञदेव भगवान् महावीरस्वामीको नमस्कार किया और फिर हाथ जोड़कर वे भगवान् गौतम गणधरके पूर्व वृत्तांत पूछने लगे ॥१११॥ हे प्रभो! हे जिनेंद्रदेव! ये गौतमस्वामी कौन हैं, किस पर्यायसे आकर यहां जन्म लिया है और किस धर्मसे इन्हें लब्धियां प्राप्त हुई हैं? हे प्रभो! ये सब बातें बतलाइये ॥११२॥ हे जिनेन्द्रदेव! क्या आपके निर्मल वचनोंसे किसीके मनमें संदेह रह सकता है? क्या सूर्यकी किरणोंसे भी कहीं अंधकारका समूह ठहर सकता है? ॥११३॥ धर्मके प्रभावसे उच्चकुलकी प्राप्ति होती है, मिष्ट वचनोंकी प्राप्ति होती हैं, सबका प्रेम प्रगट होता है, राज्य प्राप्त होता है, सौभाग्यशाली बनता है, सबसे उत्तम पद पाता है, सर्वांग सुंदर स्त्रियां प्राप्त होती हैं, संसारका नाश होता है, स्वर्गकी प्राप्ति होती है, अच्छी बुद्धि प्राप्त होती है, उत्तम यश मिलता है, उत्तम लक्ष्मी प्राप्त होती है और अन्तमें मोक्षरूपी लक्ष्मी प्राप्त होती है। इसलिये हे श्रेणिक! तू सदा जैनधर्ममें ही अपनी सुबुद्धिको लगा ॥ ११४ ॥

इसप्रकार मंडलाचार्यश्रीधर्मचंद्र विरचित गौतमचरित्रमें श्रेणिकके प्रश्नको वर्णन करनेवाला यह पहला अधिकार समाप्त हुआ।

ततो नत्वा महावीरं सर्वज्ञं गणनायकम्। गौतमपूर्ववृत्तांतं पप्रच्छ स कृतांजलिः॥ १११ ॥ कोऽयं कस्मात्समायातो गौतमः केन धर्मणा। संजाता लब्धिरस्येयं कथयेति जिनप्रभो! ॥ ११२ ॥ जिनेन्द्र तव सद्वाक्यैः केषां मनसि संशयः। संतिष्ठते तमोव्रातः किंवादित्यमरीचिभिः ॥११३॥ धर्मादुच्चकुलं सुवाक् प्रियतरो राज्यं च सौभा-

अथ दूसरा अधिकार।

अथानंतर—भगवान् जिनेंद्रदेव दांतोंरूपी चंद्रमाकी किरणरूपी जलसे समस्त संसारके मलको प्रक्षालन करते हुए शुभ वचन कहने लगे ॥ १ ॥ हे राजा श्रेणिक ! तू मनको निश्चलकर सुन, मैं अब पाप पुण्य दोनोंसे प्रगट होनेवाले गौतमस्वामीके पूर्व भवोंको कहता हूं ॥ २ ॥ अनेक देशोंसे शोभायमान इसी भरतक्षेत्रमें अनेक नगरोंसे सुशोभित एक अवंती नामका देश है ॥ ३ ॥ उस देशमें श्वेतवर्णके ऊंचे जिनालय ऐसे शोभायमान होते थे मानों मुनिराजोंके द्वारा इकट्ठे किये हुए मूर्तिमंत यशके समूह ही हों ॥ ४ ॥ उस देशमें

म्यता, धर्माद्रूपमनुत्तर वरवधूः संसारविच्छेदता। धर्मात्स्वर्गफलं सुधीर्वरयशो लक्ष्मीश्च मुक्तिप्रिया, तस्माच्छ्रेणिक ! धर्मएव सुमतिं जैने कुरु त्वं सदा ॥ ११४ ॥

इतिश्री गौतमचरिते श्रीश्रेणिकप्रश्नवर्णन नाम प्रथमोऽधिकारः।
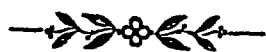
अथ द्वितीयोऽधिकारः।

अथ श्रीमज्जिनो देवोऽवादीद्वचः शुभाकरम्। दंतचंद्रांशुनीरेण क्षालयन् जगतां मलम् ॥ १ ॥ मनो निश्चलमाधाय शृणु श्रेणिक भूपते !। गौतमभवसंबंधं ब्रवीमि पापपुण्यजम् ॥२॥ इहैव भारते क्षेत्रे नानादेशसमन्विते। अवन्तीविषयो भाति भूरिपत्तनराजितः ॥ ३ ॥ यत्र श्रीजिनसद्मानि भासंते धवलानि वै। मूर्तिमंति यशांसीव मुनिजनांचितानि च ॥ ४ ॥ यत्र पथिषु राजंते पादपानां सुपंक्तयः।

पथिक लोगोंको इच्छानुसार फल, फूल देनेवाली वृक्षोंकी पंक्तियां सब मार्गोंमें शोभायमान हो रहीं थीं ॥५॥ उस देशमें सुकालके मेघोंसे सींची हुई किसानोंकी खेती सब तरहकी प्रशंसनीय संपत्तिसे फली फूली हुई दिखाई देती थी ॥ ६ ॥ उस देशमें एक पुष्पपुर नामका नगर था जोकि बहुत ऊंचे कोटसे घिरा हुआ था तथा अपने बाग बगीचोंकी शोभासे वह नंदनवनको भी जीतता था ॥ ७ ॥ वहांके देवमंदिर (जिनालय) और ऊंचे ऊंचे राजभवन पूर्णचंद्रमाकी किरणोंके समान सफेद थे और वे अपनी शोभासे मानों हँस रहे ही हों ऐसे जान पड़ते थे ॥ ८ ॥ वहांके निवासी लोग सब जैनधर्ममें तत्पर थे, धर्म, अर्थ, काम, तीनों पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाले थे, मनोहर थे, दानी थे और बड़े यशस्वी थे ॥९॥ वहांकी स्त्रियां शीलवती, पुत्रवती, सुंदर, सुख देनेवाली, चतुर, सौभाग्यवती और उत्तम थीं तथा इसलिये वे कल्पलताओंके समान सुशोभित होती थीं ॥१०॥ उस नगरमें दूसरे चंद्रमाके

पथिकमानववृन्दानां मनोवांच्छितदायिकाः ॥५॥ यत्र फलवती जाता कार्पुकानां कृषिः सदा। समस्तशस्तसंपत्या सुकालमेघसंचिताः ॥६॥ तत्र पुष्पपुरं भाति तुंगप्राकारसंवृतम्। तद्वाटी पुष्पवारेण जयति नंदनं वनम् ॥७॥ देवसद्मानि यत्रत्यास्तुंगप्रासादपंक्तयः। स्वशोभया हसंतीव पूर्णचंद्रांशुपांडुराः ॥ ८ ॥ तत्रत्या हि जनताऽभूज्जिनधर्मपरायणा। त्रिवर्गसाधिका कम्रा सत्यागा सुयशोधरा ॥९॥ राजंते यत्र कामिन्यः सशीलाः सफला वराः। सरसाः कल्पवल्यो वा सकांताः कामदाः पराः ॥ १० ॥ तत्राऽभूत् महीचंद्रो भूपश्चंद्र इवापरः। जनपार्थिवसंदोहैः

समान महीचंद्र नामका राजा राज्य करता था। वह वहुत सुंदर था और अनेक राजा तथा जनसमुदाय उसकी सेवा करते थे ॥ ११ ॥ वह राजा अपने हृदयमें भगवान अरहंतदेवका स्मरण करता था। वह धनका भोक्ता, दाता, शुभ कार्योंका करनेवाला, नीतिवान् और अनेक गुणोंको धारण करनेवाला था तथा इसीलिये वह महाराज भरतके समान जान पड़ता था ॥ १२ ॥ वह राजा महीचंद्र दुष्ट पुरुषोंका निग्रह करनेवाला तथा सज्जन पुरुषोंका पालन करनेवाला था, राजविद्यामें निपुण था और चारों प्रकारकी सेनासे सुशोभित था ॥ १३ ॥ उस राजाके सुंदरी नामकी रानी थी जो कि वहुत ही गुणवती, रूपवती, सुंदरी, सौभाग्यवती, दान देनेवाली और पतिव्रता थी तथा और भी अनेक गुणोंसे सुशोभित थी ॥ १४ ॥ इसप्रकार वह राजा राज्य करता हुआ, अपनी रानीके साथ सुख सेवन करता हुआ और देव, गुरु आदि परमेष्ठियोंको नमस्कार आदि करता हुआ आनंदसे काल व्यतीत कर रहा था ॥ १५ ॥

संसेव्यो दिव्यमूर्तिकः ॥ ११ ॥ श्रीजिननामसच्चेता भोक्ता दाता शुभाकरः। सोऽभूद्भरततुल्यो हि सन्नयी सद्गुणाग्रणीः ॥ १२ ॥ चतुरंगवलोपेतो दुष्टनिग्रहकारकः। शिष्टप्रपालको योऽभूद्राजविद्यासुपंडितः ॥ १३ ॥ तस्याभूद्वल्लभा नाम्ना सुंदरी गुणसुंदरी। रूपसौभाग्यसद्दानपतिव्रताद्यलंकृता ॥ १४ ॥ इति राज्यं प्रकुर्वाणः कालं निनाय भूपतिः। भुजन् भोगान् तया साकं देवगुर्वादिसन्नतिः ॥१५॥ अथांगभूषणो नाम्ना समागत्य मुनीश्वरः। आम्रतले शिला-

किसी दिन उस नगरके बाहर अंगभूषण नामके मुनिराज पधारे और वे नगरके बाहर आमके पेड़के नीचे एक शिलापर विराजमान होगये ॥१६॥ वे मुनिराज चार महीनेका योग धारण करनेके लिये पर्वतके समान आकर विराजमान होगये थे, चारों प्रकारका संघ उनके साथ था, निर्मल सम्यग्दर्शनसे वे विभूषित थे, पूर्ण अवधिज्ञानको धारण करनेवाले थे, सम्यक्चारित्रके आचरण करनेमें सदा तत्पर थे, कामदेवरूपी प्रबल राजाका मर्दन करनेवाले थे, तपश्चरणसे उनका शरीर क्षीण हो गया था, क्रोध, मान आदि कषायरूपी महा पर्वतको चूर चूर करनेके लिये वे वज्रके समान थे, मोहरूपी मदोन्मत्त हाथीको विदारण करनेके लिये सिंहके समान थे, पांचों इंद्रियरूपी मल्लोंको जीतनेवाले थे, परीषहोंको जीतनेवाले थे, सर्वोत्तम थे, छहों आवश्यकोंसे सुशोभित थे, तथा मूलगुण और उत्तरगुणोंको धारण करनेवाले थे ॥१७-२०॥ उन मुनिराजका आगमन सुनकर राजा महीचंद्र अपनी रानी एवं नगरनिवासियोंके

पीठे तत्पुरोपवने स्थितः ॥ १६ ॥ चातुर्मासिकयोगस्य स्थितीकर्तुं क्षमाधरः। चतुर्विधसुसंघाढ्यः सत्सम्यक्त्वविभूषितः ॥ १७ ॥ संपूर्णावधिसन्नेत्रश्चारित्राचरणोद्यतः। मदनभूपतिसंमर्दस्तपसाक्षीणविग्रहः ॥ १८ ॥ क्रोधमानादिशैलेंद्रध्वंसवज्रसमानकः। मोहमहागजेंद्राणां प्रविदारणकेसरी ॥ १९ ॥ पंचाक्षमल्लसज्जेता परीषहजयी परः। षडावश्यकसंपन्नो मूलोत्तरगुणाधरः ॥२०॥ (पंचभिः कुलकम्)। तस्य चागमनं श्रुत्वा महीचंद्रश्चचाल सः। सप्रियो नागरैः सार्द्धं सैन्यगण-

साथ, और अपनी सब सेनाके साथ मुनिराजके दर्शन करनेके लिये चला ॥ २१ ॥ वहां जाकर राजाने जल, चंदन आदि आठों द्रव्योंसे मुनिराजके चरणकमलोंकी पूजा की, उनकी स्तुति की, उन्हें नमस्कार किया और फिर उनसे धर्मवृद्धि रूप आशीर्वाद पाकर उनके समीप बैठ गया ॥२२॥ उस वनमें जो लोगोंका बहुतसा समुदाय इकट्ठा हुआ था उ देखकर अत्यंत कुरूपा तीन शूद्रकी कन्याएं शीघ्रतासे आकर वहां बैठ गईं ॥ २३ ॥ तदनंतर उन मुनिराजने राजा और उस जनताके लिये, भगवान जिनेंद्रदेवके मुखसे उत्पन्न हुआ और अत्यंत सुख देनेवाला धर्मोपदेश देना प्रारंभ किया ॥२४॥ वे कहने लगे कि " देव, शास्त्र, गुरुकी सेवा करनेसे धर्म उत्पन्न होता है। एकेंद्रिय, दो इंद्रिय आदि समस्त प्राणियोंकी रक्षा करनेसे धर्म उत्पन्न होता है, जीवोंका उपकार करनेसे धर्म उत्पन्न होता है, धर्मके मार्गोंको प्रकाशित करनेसे सर्वोत्तम धर्म प्रगट होता है, मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक सम्यग्दर्शनके पालन करनेसे और व्रतोंके धारण करनेसे धर्म

समन्वितः ॥ २१ ॥ सलिलाद्यष्टधा द्रव्यैः कृत्वा पादार्चनं मुनेः। तद्धर्मवृद्धिमालब्ध्वा स्तुत्वा नत्वोपविष्टवान् ॥२२॥ वने जनव्रजं दृष्ट्वा कुरूपा शूद्रकन्यकाः। ततः तिस्रः समागत्य तरसा यत्र संस्थिताः ॥२३॥ स मुनींद्रोऽपि तं भूपं जगौ धर्मोपदेशकम्। जिनमुखात्समुद्भूतं भूरिसुखप्रदायकम् ॥२४॥ देवशास्त्रगुरूणां हि सेवनाज्जायते वृषः। एकेंद्रियादिजीवानां रक्षणादुपकारतः ॥२५॥ धर्ममार्गप्रकाशेन महत्तरो वृषो भवेत्। सम्यक्त्वादिव्रतानां वै त्रिशुद्ध्या ग्रहणात्तथा

प्रगट होता है। मद्य, मांस, मधुके त्याग करने, सचित्त पदार्थोंका त्याग करने, पांचों इंद्रिय तथा मनको वश करने और अपनी शक्तिके अनुसार दान देनेसे धर्म उत्पन्न होता है ॥ २५-२७ ॥ इसप्रकार और भी बहुतसे उपाय हैं जिनसे जैनधर्मकी वृद्धि होती है तथा उससे प्राणियोंको इस लोकमें और परलोक दोनों लोकोंमें उत्तम सुख प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ उत्तम धर्मके प्रभावसे मनुष्योंको शुद्ध रत्नत्रयकी प्राप्ति होती है और रत्नत्रयकी प्राप्ति होनेसे उन्हें शीघ्र ही मुक्तिरूपी सुंदरीकी प्राप्ति होजाती है ॥ २९ ॥ यह उत्तम धर्मरूपी कल्पवृक्ष हर्ष उत्पन्न करनेवाला है, इच्छानुसार फल देनेवाला है, सौभाग्यशाली बनानेवाला है, उत्तम पदार्थोंकी प्राप्ति करानेवाला है तथा यश और कांति देनेवाला है ॥ ३० ॥ मनुष्योंको पुण्यके प्रभावसे भरतक्षेत्रके छहों खंडोंकी भूमि, नवनिधि, चौदह रत्न, और अनेक राजाओंसे सुशोभित ऐसी चक्रवर्तीकी विभूति प्राप्त होती है ॥ ३१ ॥ पुण्यके प्रभावसे मनुष्य देवांगनाओंके समान सुंदर, पातिव्रत आदि

॥ २६ ॥ मद्यमांसमधुत्यागात्सचित्तवर्जनात्तथा। पंचाक्षचित्तरोधेन स्वशक्त्या दानतो वृषः ॥२७॥ इत्यादि बहुलेभेदैर्जैनो धर्मः प्रजायते। तेनेहामुत्र सत्सौख्यं प्राणिनामुपजायते ॥२८॥ सद्रत्नत्रयसंपत्तिर्निर्मला जायते नृणाम्। सद्धर्मतस्तया शीघ्रं मुक्तिप्रिया समाप्यते ॥२९॥ हर्षदः कामदश्चापि सौभाग्यदः सुवस्त्रदः। यशोदः कांतिदश्चैव सद्धर्मकल्पपादपः ॥ ३० ॥ प्राप्यंते पुण्यतो मर्त्यैश्चक्रवर्त्यादिभूतयः। भरतभूमिसद्रत्ननिधिसुभटसंयुताः ॥३१॥ देवांगनासमाकाराः पति-

अनेक गुणोंसे सुशोभित और गुणवती ऐसी अनेक स्त्रियोंका उपभोग करते है ॥ ३२ ॥ विद्वान, सुंदर, माता पिताकी भक्तिसे भरपूर, रूपवान् और सौभाग्यशाली पुत्र पुण्यके ही प्रभावसे प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ राजा महाराजा आदि बड़े पुरुष जो सोनेके पात्रोंमें अत्यंत स्वादिष्ट और मनोहर भोजन करते है वह सब पुण्यके ही प्रभावसे समझना चाहिये ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! शरीरका नीरोग रहना, उत्तम कुलमें जन्म लेना, बड़ी आयुका पाना और सुंदर रूपका मिलना आदि सब उत्तम धर्मका ही फल समझना चाहिये ॥ ३५ ॥ देव, शास्त्र, गुरुकी निंदा करनेसे पाप उत्पन्न होता है और सम्यग्दर्शन, व्रत आदिकोंके नियम भंग करनेसे भारी पाप होता है ॥ ३६ ॥ सातों व्यसनोंका सेवन करनेसे पाप होता है और पांचों इंद्रियोंके विषयोंको सेवन करनेसे अतिशय पाप उत्पन्न होता है ॥३७॥ क्रोध, मान, माया, लोभ आदि

व्रतादिभूषिताः। भुजंते पुण्यतो मर्त्या. सुगुणाढ्याः सुयोषित. ॥३२॥ सुविद्याः शोभनाचाराः पितृभक्तिभरावहाः। रूपसौभाग्यसंपन्नाः पुत्राः भवंति पुण्यत· ॥३३॥ खाद्यस्वाद्यादिरम्य यद्भोजनं क्रियते नरैः। तत्पुण्ययोगतो नित्य सुवर्णभाजनसंस्थितम् ॥ ३४ ॥ नीरोगता कुले जन्म दीर्घायुश्च सरूपता। इत्यादिकं विजानीहि भूपते ! वृष सत्फलम् ॥ ३५ ॥ सर्वज्ञगुरुशास्त्राणां निंदनात्कलुष भवेत्। सम्यक्त्व-सुव्रतादीना नियमभजनाद् दृढम् ॥ ३६ ॥ सप्तव्यसनसंग्रा-ह्यात्पापं प्रजायते भुवि। पचाक्षविषयाणां हि सेवनात्पापमद्भुतम् ॥ ३७ ॥ क्रोधमानादिसंयोगात्परपीडारतादपि। अकृत्याचरणेनापि

कषायोंके संयोगसे, अन्य जीवोंको पीड़ा पहुंचानेसे और निंद्य आचरणोंके धारण करनेसे पाप उत्पन्न होता है॥३८॥ परस्त्रियोंके सेवन करनेसे, दूसरेका धन हरण करनेसे, दूसरोंके दोष प्रगट करनेसे और किसीकी धरोहर मार लेनेसे महा पाप उत्पन्न होता है ॥ ३९ ॥ जीवोंकी हिंसा करने, झूंठ बोलने, अधिक परिग्रहकी लालसा रखने और किसीके दानमें विघ्न कर देनेसे पाप उत्पन्न होता है ॥ ४० ॥ मद्य, मांस, मधुके भक्षण करनेसे पाप होता है और हरे कंदमूल आदि सचित्त पदार्थोंके स्पर्श करने मात्रसे भी पाप होता है ॥ ४१ ॥ विना छाना हुआ पानी पीनेसे बहुत ही पाप होता है। बिल्ली आदि दुष्ट जीवोंके पालन पोषण करनेसे तथा मिथ्यादृष्टियोंकी सेवा करनेसे भी पाप ही उत्पन्न होता है ॥ ४२ ॥ पापकर्मके उदयसे ये जीव कुरूप, लंगडे, काने, टोंटे, बौने, अँधे, थोड़ी आयुवाले, अङ्ग, उपाङ्ग रहित और मूर्ख उत्पन्न होते हैं ॥ ४३ ॥ पापकर्मके ही उदयसे दरिद्री

कल्मषमुपजायते ॥ ३८ ॥ परसीमंतिनीभोगैरन्यस्वहरणादपि। परदोषकथाभ्यासान्न्यासप्रहरणादघम् ॥ ३९ ॥ शरीरिणां बधात्पापमसत्यवचनादपि। परिग्रहग्रहेणैव दानविघ्नकरादपि ॥ ४० ॥ मधुपिशितहालानां प्रभक्षणादघं भवेत्। आर्द्रककंदमूलादिसचित्तस्पर्शनादपि ॥४१॥ अगालितजलपानाद्भूयिष्ठ कल्मषं भवेत्। दुष्टानां प्राणिनां पोषान्मिथ्यादृष्टिप्रसेवया ॥ ४२ ॥ कुरूपाः पंगवः काणाः खंजा विकलवामनाः। अंधा अल्पायुषो मूढा जायंते पापतो नराः ॥४३॥ दरिद्रोपहता नीचाः क्लेशविषादकुण्ठिताः। आधिव्याधिसमा-

नीच, कोढ़ी, चिंतित, दुःखी, मानसिक तथा शारीरिक अनेक व्याधियोंसे पीड़ित और अनेक दुःखोंसे दुःखी उत्पन्न होते हैं ॥ ४४ ॥ पापकर्मके उदयसे ही जीवोंके अपयश बढ़ानेवाले दुराचारी, सदा कलह करनेवाले और असन्त दुःख देनेवाले कुपुत्र उत्पन्न होते हैं ॥४५॥ पापकर्मके उदयसे ही गृहस्थियोंको काले रंगकी, लम्बे शरीरकी, टेढ़ी नाकवाली, दुर्वचन कहनेवाली और भयङ्कर स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं ॥४६॥ पापकर्मके उदयसे ही मनुष्योंको भीख मांग मांगकर प्राप्त हुआ, स्वाद रहित, नीरस और मिट्टीके वर्तनमें रक्खा हुआ कुभोजन खानेके लिये मिलता है ॥४७॥ हे राजन्! इस संसारमें जो कुछ बुरा और दुःख देनेवाला है वह सब पापरूपी वृक्षोंका ही फल समझना चाहिये ॥ ४८ ॥ इसप्रकार पाप, धर्म और उन दोनोंके फलोंको सुनकर राजा महीचन्द्र अपने चित्तमे बहुत संतुष्ट हुआ ॥ ४९ ॥ इधर राजाने कुटम्बकी बैठी हुई तीन कन्याएं देखी जो कि दुष्ट स्वभावकी थीं, सदा दीन थीं, तीव्र दुःखसे दुखो थीं, काले रंगकी थी, दया रहित थीं और माता

युक्ता दुःखिताः पापतो ध्रुवम् ॥ ४४ ॥ कुयशसो दुराचारा नित्य कलहकारिणः । पापोदयात्प्रजायते कुतनया. प्रदुःखदाः ॥ ४५ ॥ श्यामवर्णाश्च दीर्घाग्यो वक्रनासा भयानकाः । दुर्वचना. स्त्रियो नृणां जायते पापतो गृहे ॥४६॥ विरस याचनाप्राप्त मृत्तिकाभाजनस्थितम् । स्वादहीनं सदा भोज्यं भुंजन्ते पापतो नराः ॥ ४७ ॥ इत्यादिक हि यत्किंचिदशोभन प्रदुःखदम् । तत्सर्व विद्धि भूमीश ! पापमहीरुहां फलम् ॥ ४८ ॥ इतिपापवृषस्तोमफलमुत्पत्तिसंयुतम् । समाकर्ण्य

पिता, भाई, बंधु आदिसे रहित थीं। उन्हें देखकर राजाके नेत्र प्रफुल्लित हो गये तथा मुख और मन आनंदित होगया ॥ ५०-५१ ॥ तदनंतर राजाने उन मुनिराजको नमस्कार किया, उनकी स्तुति की और फिर पूछा कि इन कन्याओंको देखकर मेरे हृदयमें प्रेम क्यों उत्पन्न हो आया है? ॥५२॥ इसके उत्तरमें वे मुनिराज कहने लगे कि इनके साथ तेरा प्रेम उत्पन्न होनेका कारण पहिले भवमें उत्पन्न हुआ है। वह मैं कहता हूं तू सुन ॥ ५३ ॥

इसी भरतक्षेत्रमें एक काशी देश है जो कि बहुत बड़ा है, तीर्थंकर परमदेवके पंचकल्याणकोंसे सुशोभित है, अनेक नगर, गांव और पत्तन आदिसे शोभायमान है, रत्नोंकी खानिसे भरपूर है और अनेक प्रकारकी शोभासे सुशोभित है ॥ ५४-५५ ॥ उसी काशी देशमें एक बनारस नामका नगर है जो कि बहुत ही सुंदर है और ऐसा मालूम होता है

निजे चित्ते महीचंद्रस्तुतोष सः ॥ ४९ ॥ इतः महीपतिर्दृष्ट्वा तिस्रः कन्याः कुटुंबिनः। बभूव विकसन्नेत्रो हर्षिताननमानसः ॥ ५० ॥ दुष्टशीलाः सदा दीनास्तीव्रदुःखेन पीडिताः। श्यामवर्णा दयाहीनाः पितृबांधववर्जिताः ॥५१॥(युग्मम्)। पप्रच्छेति नृपो नत्वा स्तुत्वा तं मुनिपुंगवम्। इमाः कन्याः समालोक्य स्नेहो जातः कथं मम ॥५२॥ प्रोवाचेति मुनिर्भूपमाभिस्ते स्नेहकारणम्। पूर्वभवांतरे जातं शृणु त्वं च गदाम्यहम् ॥५३॥ इहैव भारते क्षेत्रे काशी देशोऽस्ति विस्तृतः। सत्तीर्थंकरदेवानां पंचकल्याणभूषितः ॥५४॥ अनेकनगरग्रामपत्तनादि-विराजितः। रत्नखनिसमाकीर्णः नानाशोभासमन्वितः ॥५५॥ तत्र

मानो विधाताने स्वर्गकी अलका नगरीको जीतनेके लिये ही यह नगर बनाया हो ॥ ५६ ॥ उसके चारों ओर एक कोट था जोकि ऊंचाईसे आकाशको छूता था और फैलावमें बाद-लोंके समान था तथा इसीलिये उसने मानों अपने क्रोधसे ही सूर्यका तेज भी रोक रक्खा था ॥ ५७ ॥ उस कोटके चारों ओर एक खाई थी जोकि शत्रुओंको भय उत्पन्न करनेवाली थी, अत्यन्त निर्मल, मनोहर गंभीर और सरस (रस वा जलसे भरी हुई) थी तथा इसीलिये वह अच्छे कविकी कविताके समान सुशोभित होती थी ॥ ५८ ॥ कुंदोंके पुष्पोंके समान श्वेत–उज्वल ऐसे वहांके जिनालय वायुसे फहराती हुई अपने शिखरकी ध्वजारूपी हाथोंसे मानों दूरसे ही भव्य जीवोंको बुला रहे थे॥५९॥ वहांके मकानोंकी पंक्तियां बड़ी ही ऊंची थी, उनके चारों ओर चित्र बने हुए थे, वे बरफ और चंद्र-माके समान श्वेत थीं और इसीलिये ऐसी शोभायमान हो रही थीं मानों कीर्तिकी सुन्दर मूर्ति ही बनी हो ॥ ६० ॥ वहांके मनुष्य अच्छे दानी थे, भगवान जिनेन्द्रदेवके चरण-

---

वाणारसी नाम पुरमस्ति सुशोभनम् । अलका नगरं जेतु विधात्रा निर्मितं वरम् ॥५६॥ प्राकारो राजते यत्र तुंगतास्पृष्टशिताम्बरः । येनारुद्धं रवेस्तेजो रोषादिवाभ्रविस्तृतम् ॥ ५७ ॥ यत्खातिका परा भाति वैरिवर्गभयप्रदा । निर्मला सरसा रम्या गभीरेव कवेः सुगी ॥५८॥ ह्वयंति जिनगेहानि यत्र च भव्यजन्मिनः । कुंदोज्वलानि वातेन चलत्सद्ध्वजपाणिना ॥५९॥ सचित्रा यत्र राजन्ते प्रोत्तुंगाः सौधरा-जयः । तुषारचन्द्रमाश्वेताः परा वा कीर्तिमूर्तयः ॥ ६० ॥ सत्यागाः

कमलोंकी पूजा करनेमें सदा तत्पर रहते थे, परोपकारी थे, सुंदर थे और उनके आचरण बहुत ही अच्छे थे ॥ ६१ ॥ वहांकी स्त्रियां अपने रूपसे देवांगनाओंको भी जीतती थी, बड़ी गुणवती थीं, सौभाग्यशालिनी थीं और पतिप्रेममें सदा तत्पर थीं ॥६२॥ वहांके बजारोंकी दुकानोंकी पंक्तियां बड़ी अच्छी जान पड़ती थीं, रत्न, सोना, चांदी आदिसे वे भर रही थीं, सब तरहके धान्योंसे शोभायमान थीं और वस्त्रोंके व्यवसायसे भरपूर थीं ॥ ६३ ॥ रात्रिमें जब वहांकी स्त्रियां अपने मधुर स्वरसे गाती थीं और उस समय कदाचित् चंद्रमा उस नगरके ऊपर आ जाता था तो उसके चलानेवाले देव उस गानको सुनकर वहीं ठहर जाते थे और इस प्रकार वह चंद्रमा भी आगे नहीं बढ़ सकता था ॥ ६४ ॥ रात्रिमें अपने नियत स्थानपर जानेकी इच्छा करनेवालीं और श्याम रंगके वस्त्रोंसे सुशोभित ऐसी वहांकी वेश्याएं लहर लेती हुई नदीके समान बहुत ही अच्छी जान पड़ती थीं॥६५॥ वहांकी बावड़ियोंके निर्मल जलमें जल भरनेवालीं पनिहारियां क्रीडा

शोभनाचारा जिनपादार्चने रताः । बभूवुर्मानवा यत्र परोपकृतिनः शुभाः ॥ ६१ ॥ जयंति योषिता यत्र स्वरूपेण सुरांगनाः । सुगुणाढ्याः ससौभाग्या धवस्नेहपरायणाः ॥ ६२ ॥ हट्टश्रेणिः परा भाति रत्नस्वर्णादिसभृता । अशेषसस्यसद्राशिः सवसनक्रियाणका ॥६३॥ गंतु शशाक रात्रौ न यत्रोपरि गतो विधुः । कामिनीकंठसंजातगीतसंरुद्धवाहनः ॥६४॥ यत्र पण्यागता रेजुर्निशीथे गमनोत्सुकाः । श्यामवस्त्रधराः कांता नद्य इव सविभ्रमाः ॥६५॥ क्रीडंति

करती थीं और वहांपर खिले हुए कमलोंकी सुगंधसे भ्रमण करते हुए भौंरे उन्हें दुखी कर रहे थे ॥६६॥ उन स्त्रियोंकी जलक्रीडासे जो उनके शरीरसे केशर धुलकर निकल रही थी उससे वहांके सुगंधित कमल भी पीले हो गये थे और उन्ही सरोवरोंमें कामी पुरुष अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीडा कर रहे थे ॥ ६७ ॥ उस नगरके बाहर खलियानोंमें अनाजोकी राशियां शोभायमान थीं। वे राशियां गोल थीं, ऊंची थीं, शुद्ध थी और किसानोको आनंद देनेवाली थीं ॥ ६८ ॥ वहांके खेतोंमें सब तरहके धान्य सदा उत्पन्न होते रहते थे। वे धान्य सुकालके मेघोसे सींचे हुए थे और बड़े ही उत्तम थे ॥६९॥ उस शहरकी सड़कोंपर पेड़ोंकी पंक्तियां लगी हुई थीं, जो कि परोपकार करनेमें तत्पर थी, सघन उनकी छाया थी और फलके भारसे वे नम्र थीं ॥७०॥ उस नगरके चारो ओर बगीचे थे उनकी लताएं पुष्प और फलोंसे सुशोभित थीं, मनोहर थीं, सरस थी और गुणवती थीं तथा विलासवती स्त्रियोंके समान शोभायमान थी ॥७१॥

जलहारिण्यो यत्र सद्वापिकाजले। पद्मगधभ्रमद्भृङ्गताडिता अतिनिर्मले ॥ ६६ ॥ जलधौतांगरागेण पीते सुगंधवारिजे। दीव्यंते निजनारीभिस्तडागे यत्र कामिनः ॥ ६७ ॥ यद्बनखलवृंदेषु शोभंते सस्यराशयः। वर्तुलाः प्रोन्नताः शुद्धाः कार्षुकानन्ददायिकाः ॥ ६८॥ यत्क्षेत्रेऽशेषसस्यानि प्रोत्पद्यते हि सततम्। सुकालभवमेघौघसिंचितानि शुभानि वै ॥ ६९ ॥ यत्पथि पादपाराजिः परोपकृतितत्परा। बभूव सघनच्छाया फलभारेण सन्नता ॥ ७० ॥ यदंते वाटिकावल्यः

वहांपर सरोग राजहंस ही थे अर्थात् राजहंस ही सरोग अर्थात् सरोवरोंपर रहनेवाले थे अन्य कोई सरोग अर्थात् रोगी नहीं था, ताडन कपासका ही होता था, कपासकी ही रुई निकाली जाती थी और किसीका ताडन नहीं होता था। वहांपर पतन वृक्षोंके पत्तोंका ही होता था वे ही ऊपरसे नीचे गिरते थे और किसीका पतन नहीं होता था तथा बंधन केशपाशोंका ही होता था, केशपाश ही बांधे जाते थे और किसीका बंधन नहीं होता था ॥ ७२ ॥ वहांपर दंड ध्वजाओंमें ही था और किसीको दंड नहीं दिया जाता था, भंग कवियोंके रचे हुए छंदोंमें ही था और किसीका भंग नहीं होता था, हरण स्त्रियोंके हृदयमें ही था, स्त्रियोंके हृदय ही पुरुषोंके मनको हरण करते थे और किसीका हरण नहीं होता था और भयसे उत्पन्न हुआ शब्द नवोढा स्त्रियोंमें ही था और कोई भयभीत नहीं था ॥७३॥ उस नगरमें राजा विश्वलोचन राज्य करता था। वह राजा शत्रुओंके समुदायरूपी हिरणोंके लिये केसरी था और अपनी कांतिसे सूर्यको भी जीतता था ॥ ७४ ॥ वह राजा याचकोंके लिये इच्छासे भी अधिक दान देता था और

सपुष्पाः भांति सत्फलाः। गुणाढ्याः सरसाः कम्रा नार्य इव सविभ्रमाः ॥७१॥ सरोगा राजहंसाः स्युः कार्पासे यत्र ताडनम्। पतनं वृक्षपत्रेषु केशपाशेषु बंधनम् ॥७२॥ यत्र ध्वजेषु दंडोऽपि भंगो वृत्तेषु दृश्यते। हरणं वनिताचित्ते प्रमदासु भयारवः ॥७३॥ तदीश्वरो महाराजो वरोऽभूद्विश्वलोचनः। वैरिकुलैणपंचास्यः स्वकांत्या जितभास्करः ॥७४॥ ददौ कांक्षाधिकं दानं याचकेभ्योऽनिशं नृपः। कल्पवृक्ष

इसीलिये वह मनकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्षोंको भी सदा जीतता रहता था ॥ ७५ ॥ विधाताने मानों इंद्रसे प्रभुत्व लेकर, कुवेरसे धन लेकर, यमसे क्रोध लेकर, अग्निसे तेज लेकर और चंद्रमासे सुंदरता तथा शीतलता लेकर ही उसके अंग प्रत्यंग बनाये हों ऐसा मालूम होता था ॥ ७६ ॥ जिस प्रकार सिंहके भयसे हरिण अपने जीवनके लिये वनको छोड़ देते हैं उसी प्रकार उसके प्रतापको सुनकर शत्रु लोग भी अपने जीवनके लिये देशका भी त्याग कर देते थे ॥ ७७ ॥ उसका ललाट बहुत ही विस्तीर्ण और मनोहर था और ऐसा मालूम होता था मानों विधाताने अपने लिखनेके लिये ही वह ललाट बनाया हो ॥ ७८ ॥ उसके भुजारूपी दंड बड़े ही मनोहर थे, जंघातक लंबे थे और ऐसे जान पड़ते थे मानो शत्रुओंके समुदायको जीतनेके लिये नागपाश ही हों ॥ ७९ ॥ उसका वक्षःस्थल बहुत ही बड़ा था, बहुत ही सुन्दर था, देवांगनाओंके भी मनको मोहित करता था और लक्ष्मीके क्रीड़ा करनेके घरके समान ही जान

जिगायातो मनोभिलाषदायकम् ॥७५॥ इद्रात्प्रभुत्वमादाय श्रीदाद्वित्तं यमाद्रुषम्। यस्यांगं निर्मितं धात्रा तेजोग्नेः सौम्यतां विधोः ॥७६॥ यत्प्रतापं समाकर्ण्य रिपवो देशहायिनः। बभूवुर्जीवितार्थाय सिंहभयान्मृगा इव ॥७७॥ मनोहरां च योऽधत्त विस्तीर्णां भालपट्टिकां। निर्मितेव विधात्रा या लेखार्थं मेदिनीप्रभोः ॥७८॥ धत्ते यो बाहुसंद्वंडौ कांतौ जानुप्रमाणकौ। वैरिकदंबकं जेतुं नागपाशाविव ध्रुवम् ॥७९॥ वक्षोऽतिविस्तृतं यस्य शुशुभे चातिसुंदरम्। रंजकं विबुध-

पड़ता था ॥८०॥ जिसप्रकार पृथ्वी समुद्रोंको धारण करती है उसीप्रकार गंभीर, निर्मल और मनोहर उसकी बुद्धि चारों राजविद्याओंको धारण करती थी ॥ ८१ ॥ कुंदके पुष्पोंके समान अत्यंत उज्वल और निर्मल उसकी कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त हो रही थी और निर्मल किरणोंकी उत्तम मूर्तिके समान जान पड़ती थी ॥८२॥ उस राजाके पास प्रधान, मंत्री, अच्छे अच्छे देश, किले, खजाना और सेना आदि सब कुछ था, प्रभाव उत्साह आदि तीनों शक्तियां थीं, संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधा, आश्रय आदि छहों गुण थे और इसीलिये वह राजा शत्रुओंके लिये अजेय होरहा था ॥८३॥ वह राजा संसारके समस्त राजाओंमें मुख्य था, नीतिमें निपुण था, रूपवान् था, सुन्दर था, मधुरभाषी था और प्रजाको प्रसन्न करनेमें सदा तत्पर रहता था ॥८४॥ उसके राज्यसिंहासनपर बैठनेपर सब प्रजा सुखी, धर्मात्मा, दानी, आनंदी और परोपकार करतत्पर हो गई थी ॥८५॥ उस राजाके विशालाक्षी (दीर्घ

स्त्रीणां लक्ष्मीक्रीडनसद्गृहम् ॥८०॥ राजविद्या चतस्रोपि दधार यस्य सन्मतिः । गंभीरा निर्मला कांता धरित्री वारिधीन्निव ॥ ८१ ॥ सत्कीर्तिर्यस्य बभ्राम निर्मला भुवनोदरे । सन्मूर्तिरिव शुभ्रांशोः कुंदपुष्पसमुज्वला ॥ ८२ ॥ प्रधानामात्यसद्देशदुर्गकोशबलाधरः । त्रिशक्तिः षड्गुणोऽजय्यो भूपोऽभूदरिसंहतेः ॥८३॥ विश्वभूपतिमुख्योऽभूद्यः सुवाक् नीतिकोविदः । सुरूपः सुंदराकारः प्रजारञ्जनतत्परः ॥८४॥ यस्मिन् पाति जनाः सर्वे बभूवुः सुखिनः सदा । धर्मिणो दानिनः कांताः परोपकृतितत्पराः ॥ ८५ ॥ तस्य प्रिया विशालाक्षी

नेत्रोंवाली) नामकी रानी थी जोकि प्रेमसे भरपूर थी और इंद्राणी, रतिदेवी, नागस्त्री अथवा देवांगनाके समान सुन्दर जान पड़ती थी ॥८६॥ वह रानी अपने लीलापूर्वक गमन करनेमें मदोन्मत्त हाथियोंकी उत्तम गतिको भी जीतती थी। इसीलिये मानों वे हाथी अपने शरीरपर धूलिके समूहको फेंक रहे थे ॥ ८७ ॥ उसकी उंगलियोंमे वीसों नख वहुत अच्छे शोभायमान थे, वे द्वितीयाके चंद्रमाके समान थे और रुधिरकी लालिमासे वड़े ही मनोहर जान पड़ते थे ॥८८॥ उसके जंघा वड़े ही सुन्दर और मनोहर थे, वे केलेके खम्भेके समान थे और उद्दीपक थे ॥८९॥ वह रानी अपनी मनोहर कटिशोभासे सिहकी कटिशोभाको भी जीतती थी। यदि ऐसा न होता तो फिर सिह पर्वतोंकी गुफाओंमें ही क्यों पड़ा रहता? ॥९०॥ उसकी नाभि गम्भीर, गोल और मनोहर थी तथा कामके विलास करनेके लिये रससे भरी हुई (जलसे भरी हुई) छोटी सरोवरीके समान थी ॥९१॥ उसके उन्नत कुच विल्व-

---

बभूव प्रीतिमडिता। शचीव रतिदेवीव नागस्त्री किं सुरांगना ॥८६॥ निजगमनलीलाभिः सा जयतिस्म सद्गतिम्। अतस्ते स्वतनौ नागाः क्षिपंति पांशुसंचयम् ॥८७॥ यदंगुलीषु भासते नखरा विंशतिप्रमाः। द्वितीयेंदुसमाकाराः शोणप्रभा मनोहराः ॥८८॥ यस्याः शुशुभतु जघे शुभाकारे मनोहरे। कदलीस्तंभतुल्ये हि मदनशमधी यथा ॥८९॥ सा हरत्तत्कटीशोभां कृशकट्या सुकांतया। अन्यथा स कथं सिंहो गिरिगुहासु तिष्ठति ॥९०॥ यस्या नाभिः सुगंभीरा वर्तुलाऽभून्मनोहरा। पंचशरविलासार्थं सरोवरीव सद्रसा ॥ ९१ ॥ विल्वफलसमौ

फलके समान कठोर थे मनोहर थे और कामियोंके हृदयको जीतनेवाले थे ॥९२॥ उसके दोनों कुचोंके मध्यभागमें रहनेवाली कोमल रोमराजी ऐसी अच्छी जान पड़ती थी मानों कुचरूपी दोनों राजाओंका विरोध दूर करनेके लिये मध्यमें सीम ही नियत कर दी हो॥९३॥ उसके दोनों हाथोंकी हथेलियां लाल, कोमल, मनोहर, छोटी और सुन्दर थीं तथा उनपर मछली, ध्वजा आदि, अनेक सुन्दर चिह्न थे ॥९४॥ वह रानी अपने मुखरूपी चन्द्रमासे आकाशके चन्द्रमाकी शोभाको भी जीतनी थी और इसीलिये तभीसे यह चंद्रमा उसके डरसे ही मानों महादेवकी सेवा करने लग गया है ॥९५॥ उस रानीने अपनी नाकसे तोतोंकी चोंचकी शोभा भी जीत ली थी इसीलिये मानों वे सब तोते लज्जासे व्याकुल होकर वनमें चले गये हैं ॥ ९६ ॥ उसने अपनी वाणीसे आमकी कलीकी मधुर गंधसे उत्पन्न होनेवाली कोयलकी वाणी भी जीत ली थी इसीलिये कोयल मानो उसी समयसे श्याम वर्णकी होगई है ॥ ९७ ॥

पीनावुन्नतौ सुमनोहरौ। कामिहृदयजेतारौ या धत्तेस्म पयोधरौ ॥९२॥ रोमराजिरभाद्यस्याः कोमला मध्यवर्तिनी। सीमेव स्तनभूपत्योर्विरोधशमनाय वै ॥ ९३ ॥ दधौ करतले या च मीनध्वजादिलक्ष्मके। रोहिते मृदुले सूक्ष्मे शुभाकारे मनोहरे ॥ ९४ ॥ स्ववदनेंदुना व्योमचंद्रशोभां जहार या। तदा प्रभृति भूतेशसेवां चक्रे सा तद्भिया॥९५॥ स्वघ्राणेन जिगायासौ तस्य घोणारमां शुभाम्। तदा वनं गता कीरा लज्जयेव सविह्वलाः ॥९६॥ वाचा जिगाय तद्वाणीं या चाम्रकलिकोद्भवाम्। कांतया कोकिला जाताः श्यामवर्णाश्चितास्तदा ॥ ९७ ॥

उस रानीने अपने चंचल और विशाल नेत्रोंसे हिरणोंके नेत्रोंकी शोभा भी जीत ली थी इसीलिये मानों हिरण भयभीत होकर वड़ी शीघ्रतासे वनमें जा वसे हैं ॥ ९८ ॥ उसके दोनों कान कोमल थे, मनोहर थे, सुंदर थे और सुंदर कर्णभूषणोंसे अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥ ९९ ॥ उसकी दोनों भौहें टेढ़ी थीं, चंचल थी और ऐसी जान पड़ती थीं मानों कामीरूपी योद्धाओंको जीतनेके लिये वाणोंसे सजे हुए दोनों धनुष ही हों ॥१००॥ उस रानीका श्याम और सुगंधित पुष्पोंसे गठा हुआ केशपाश ऐसा अच्छा जान पड़ता था मानों उसके मुखकी सुगंधिके लोभसे सर्प ही आ गया हो ॥१०१॥ वह रानी हाव, भाव विलास आदि गुणोंसे भरपूर थी, लावण्य आदि गुणोंसे सुशोभित थी और समस्त गुणोंकी खानि थी। उसमें इतने गुण थे कि उनको कहनेके लिये भी कोई समर्थ नहीं है ॥ १०२ ॥ वह रानी वड़ी ही सुंदरी थी और पतिके मनको वश करनेके लिये परम औषधिके समान

येषां नेत्ररमां जह्रे दृशा चचलया च या। अतो मृगाः भयत्रस्ताः शीघ्रं इव बनं गताः ॥९८॥ शब्दग्रहौ दधातिस्म कोमलौ सुमनोहरौ। शुभाकारौ च या कांतौ कर्णाभरणभूषितौ ॥ ९९ ॥ भातःस्म सुभ्रुवौ यस्याः प्रकुंचिते सविभ्रमे। कामिसुभटसंजेतुं धनुषीव गुणांचिते ॥१००॥ रराज केशपाशोऽस्याः श्यामः सुपुष्पगुंठितः। तद्वक्त्रगंध-लोभेन भुजंगम इवागतः ॥ १०१ ॥ हावभावविलासाढ्या लावण्य-गुणसंयुता। सर्वगुणखनिर्याभूद्वक्तुं कस्तद्गुणान् क्षमः ॥ १०२ ॥ तया समं सुखं भुंजन् कालं निनाय भूपतिः। भर्तृमनोवशीकर्तु परौ-

थी, उसके साथ सुख भोगता हुआ राजा अपना काल व्यतीत कर रहा था ॥ १०३ ॥ जिस प्रकार रतिदेवी कामदेवके मनको वश कर लेती है, रोहिणी चन्द्रमाके मनको वश कर लेती है उसीप्रकार उस रानीने अपने स्नेहरूपी पाशसे अपने पतिका मन बांध लिया था—अर्थात् वशमें कर लिया था ॥१०४॥ वह राजा विश्वलोचन उस विशालाक्षी रानीके साथ स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्दसे होनेवाले पंचेंद्रियोंके सुखोंका अनुभव करता था ॥ १०५ ॥ इसप्रकार उस राजाके सुखपूर्वक काल व्यतीत करनेपर शुभ वसंत समय आया। वह वसंत समय तरुण पुरुषोंके हृदयमें कामोद्दीपनका कारण था ॥१०६॥ उस समय सब वृक्षोंपर फल पुष्प आगये थे और सब वृक्षोंपर पक्षीगण निवास करने लग गये थे ॥ १०७ ॥ उस समय तरुण पुरुष भी उत्सुक होगये थे और स्त्रियां भी अपने संयोगजन्य परस्परके प्रेमसे भरे हुए कामियोंके हृदयमें निवास करने लग गई थीं ॥१०८॥ उस समय

षध्या सुकांतया ॥ १०३ ॥ तया धवमनो बद्धं परमस्नेहपाशया। इंदुहृदिव रोहिण्या रतिदेव्येव मन्मथः ॥१०४॥ पंचेंद्रियसुखं भूपो विशालाक्ष्या बुभोज हि। स्पर्शगंधरसालोकगुणश्रवणसंभवम् ॥१०५॥ तस्मिन् सुखं प्रकुर्वाणे वसंतसमयः शुभः। प्राप्तस्तरुणचित्तेषु कामोत्पादनहेतुकः ॥ १०६ ॥ तदा सकलवृक्षाणां समुत्पत्तिरजायत। सत्पुष्पफलयुक्तानां विहंगमनिवासिनाम् ॥१०७॥ तदा कामो युवा जातः कामिनीकामिमानसे। निरंतरस्वसंयोगान्योन्यसुप्रेमपूरिते ॥१०८॥ मुनीनां क्षीणगात्राणां चित्तसंक्षोभकारकः। तत्राभूत्काम-

कामरूपी योद्धा शील संयम धारण करनेवाले और अत्यन्त क्षीण शरीरको धारण करनेवाले मुनियोंके हृदयमें भी क्षोभ उत्पन्न करता था ॥ १०९ ॥ उस वसंतऋतुके आजानेपर संसारमें ऐसी कोई स्त्री नहीं थी जो अपने पतिके साथ कलह उत्पन्न करती हो अर्थात् उस समय सब अपना मान छोड़ देती थीं ॥ ११० ॥ उस वसंतऋतुमें वह राजा विश्वलोचन अपनी सेना और नगर निवासियोंके साथ अनेक वृक्ष व लताओसे भरे हुए वनमें अपनी रानीके साथ क्रीड़ा करनेके लिये गया ॥१११॥ वहां जाकर राजाने वह वन देखा। वह वन बड़ा ही मनोहर था और वायुसे हिलती हुई लताओंके समूहसे तथा चहचहाते हुए पक्षियोंकी आवाजसे ऐसा जान पड़ता था मानों राजाके आनेसे वह वन नृत्य ही कर रहा हो ॥११२॥ उस समय ऐसा मालूम होता था मानों राजा विश्व-लोचनके आनेपर वहांका वायु लतारूपी स्त्रीको नृत्य ही करा रहा हो। वह लतारूपी स्त्री पुष्पोंके समूहसे सुशोभित थी, पत्ते ही उसके केश थे, फल ही उसके स्तन थे, राजहंस आदि पक्षियोंके शब्द ही उसके गीत थे, वनकी शोभाको वह धारण

योद्धा वै शीलसंयमधारिणाम् ॥१०९॥ वसंतसमये प्राप्ते सह का विरहस्य के। कलह निज कांतैश्च का वनिता प्रचक्रिरे ॥११०॥ वसंते कांतया सार्द्धमियाय भूपतिर्वनम्। ससेनो नागरैः साकं नानावृक्षादि-संकुलम् ॥१११॥ नृपोऽपश्यद्वनं कांत नृत्यदिव तदागमे। मारुताधूतसद्वल्लीसमूहं विहगस्वनम् ॥ ११२ ॥ भ्रमरीस्वानसद्गीतैः पिकध्वनिमृदंगकैः। शुकनिर्घोषवीणाभिः कीचकारावतालकैः ॥११३॥

कर रही थी, पुष्पोंके हारसे वह सुशोभित थी और मनुष्योंके चित्तको मोहित करनेवाली थी। उसके नृत्यके साथ भ्रमरोंके झंकार ही उत्तम गीत थे, कोयलोंकी ध्वनि ही मृदंग थे, तोतोंकी आवाज ही वीणा थी और कीडोंके द्वारा खाये हुए (छिद्र सहित) बांसोंकी आवाज ही तालका काम देरही थी। इसप्रकार वह वन मानों राजाका सत्कार ही कर रहा था।११३—११५॥ वहांपर राजाने एक आमके पेड़पर स्त्री पुरुष रूप दो कोयलोंको देखा। वे दोनों ही परस्परके प्रेमके समुदायसे एक दूसरेके मुखमें आमकी कलिका देरहे थे॥११६॥ संभोग सुख देनेवाला जिनका पति विदेश गया है ऐसी कौनसी स्त्रियां इन कोयलोंकी स्त्रियोंके वचन सहन कर सकती हैं? भावार्थ-को नहीं॥ ११७॥ इस प्रकार घूमते फिरते हुए राजाने कहीं तो स्त्रियोंको मोहित करनेवाले, आनंद देनेवाले और अत्यन्त मनोहर ऐसे सारस पक्षियोंके शब्द सुने॥११८॥ कहींपर मालतीके मनोहर फूल देखे जिनपर सुगं-

---

पुष्पसमूहशोत्तमा पत्रकेशां फलस्तनीम्। राजहसादिसद्गीतां वनलास्यधरां स्फुटम्॥११४॥ पुष्पहारसमाक्रांतां मानवचित्तमोहिनीम्। यत्र नृपागमे वायुर्नर्तयति लतावधूम्॥ ११५॥ (त्रिभिः कुलकम्)। सहकारे ददर्शायं तत्र कोकिलयुग्मकम्। अन्योन्यप्रेमसंदोहैर्दत्तमुखाम्रसत्फलम्॥११६॥ कांतेह पिककांतानां वाचं सोढुं हि का क्षमा। विदेशे भर्तरि प्राप्ते संभोगसुखदायिके॥ ११७॥ क्वचिच्छुश्राव संरावान् सारसपक्षसभवान्। प्रमोददायकान् कांतान् प्रमदामोहकारिणः॥११८॥ क्वचिच्च मालतीपुष्पं लुलोकेह मनोहरं। सुगंध्याकृष्टभृङ्गा-

धिसे आये हुए भ्रमरोंके समूह झंकार शब्द कर रहे थे ॥११९॥ इसी प्रकार कहींपर मयूरोंका नृत्य देखा, कहींपर बंदरोंकी क्रीड़ा देखी, कहींपर हिरणोंकी लीला देखी और कहींपर पक्षियोंके समुदाय देखे ॥ १२० ॥ उसने कहींपर मनोहर आमके वन देखे, कहींपर अनारोंके वन देखे, कहीं-पर सुपारीके वन देखे और कहीपर विजौरेके फल देखे ॥१२१॥ कहींपर कोई स्त्री पतिको मना रही थी, कोई मान कर रही थी, कोई प्रेमसे भरपूर थी, कोई मनोहर थी और कोई स्तन ही दिखा रही थी। कहींपर पृथ्वी हरी घाससे सुशोभित होरही थी, कहीं जलसे भर रही थी और कहींपर चावलोंके पेड़ फलोंसे नम्रीभूत होरहे थे। यह सब शोभा राजाने देखी ॥१२२-१२३॥ तदनन्तर वह राजा दाखोंकी लताओंके मंडपमें गया और हँसी, विलास, चूर्ण आदिके द्वारा अपनी रानीके साथ क्रीडा करने लगा ॥१२४॥ फिर वह राजा

लिकृतझंकारसंयुतम् ॥११९॥ क्वचिन्मयूरसन्नृत्यं क्वचिन्मर्कटकेलिकाम् । क्वचित्कुरंगसल्लीलां पक्षिणां निवहं क्वचित् ॥ १२० ॥ क्वचिदाम्रवनं कांतं क्वचिद्दाडिमकाननम् । क्वचिच्च क्रमुकारामं वीजपूरफलं क्वचित् ॥१२१॥ मानयंतं क्वचिन्नारी भर्तारं रतकोपिनीम् । सुप्रेमपूरितां कांतां क्वचिच्च दर्शितस्तनीम् ॥ १२२ ॥ क्वचिच्च शाड्वलां भूमिं सज्जलपूरितां क्वचित् । फलभारनताः शालीः क्वचिल्लुलोकभूपतिः ॥१२३॥ (चतुर्भिः कुलकम्) । द्राक्षासुमंडपे भूपो रमे स्वकांतया समम् । यक्षकर्दमसच्चूर्णैं हास्यवाक्यैर्विलासकैः ॥१२४ भूपस्तां प्रीणयामास सत्कौतूहललीलया । सुरतैः सुरसैः कांतैः पंचा-

पांचों इंद्रियोंको तृप्त करनेवाले मनोहर सरस कामभोगके द्वारा लीलापूर्वक रानीको साथ प्रसन्न करने लगा ॥१२५॥ तदनंतर वह राजा प्रसन्न होकर कामभोगसे उत्पन्न हुए खेदको दूर करनेके लिये रानीके साथ जलक्रीड़ा करने लगा। १२६॥ उस जलक्रीड़ासे सरोवर चलायमान होगया, शरीरकी केसर धुल जानेसे सरोवर सब पीला होगया और कमलोंकी सुगन्धीसे सब सुगंधित होगया ॥ १२७ ॥ जलक्रीडा करनेके बाद वह राजा तुरईके बाजोंके साथ, स्त्रियोंके गीतोंके साथ और बड़े भारी उत्सवके साथ अपने घरको आया ॥ १२८ ॥

अथानन्तर—शाम हुई, जिन कामियोंके हृदय स्त्रियोंने ग्रहण कर रक्खे थे उन कामियोंपर दया करके ही क्या मानों सूर्य अस्त होने लगा और समस्त आकाशमें लाली ही लाली छागई ॥१२९॥ संध्याकाल होगया, आकाशकी कांति लाल हो गई, चारोंओर पक्षियोंके कोलाहल होनेलगे और सूर्यकी कांति छिप गई ॥ १३० ॥ तदनंतर आकाशमें पूर्ण चंद्रमाका उदय

क्षपीडनक्षमैः ॥ १२५ ॥ ततो बभूव स भूपो जलक्रीडारतस्तया। सुरतोद्भवसत्खेदहानये प्रीतिमानसः ॥१२६॥ तत्क्रीडाभिश्चलद्वारि दधार पीततां सरः। जलधौतांगरागेण पद्मसुगंधिवासितम् ॥१२७॥ जलक्रीडां विधायासौ स्वगृह आययौ द्रुतम्। तूर्यसंदोहनिर्घोषैः वधूगीतैर्मनोहरैः ॥१२८॥ अथास्तमित आदित्योऽनुकंपयेव कामिनाम्। योपदगृहीतचित्तानां निर्भरारुणितप्रभः ॥१२९॥ साध्यकालस्तदा जातः कृतापरारुणछविः। पक्षिकोलाहलाकीर्ण आच्छादितरविद्युति ॥१३०॥ ततो नभसि संजातश्चन्द्रोदयः सुविस्तृतः। कृतकुमुदसंकाशः

हुआ । उसके उदयसे कुमुदिनी प्रफुल्लित होगई और संयोगिनी स्त्रियां सुखी होगई ॥१३१॥ राजा राजमहलमें आकर फिर उस रानीके साथ आसक्त हो गया सो ठीक ही है स्त्रियां चित्तको मोहित करनेवाली होती ही हैं, यदि वे बहुत ही रूपवती हों तो फिर क्या पूछना है ॥१३२॥ इस प्रकार बहुतसा समय बीत जानेपर भी राजाको मालूम नहीं हुआ । सो ठीक ही है क्योंकि सुखमें एक महीना भी एक दिनके समान बीत जाता है और दुःखमें एक दिन भी एक महीनेके बराबर बीतता है ॥ १३३ ॥

किसी एक दिन वह विशालाक्षी रानी प्रसन्नचित्त होकर चामरी और रंगिका नामकी दो दासियोंके साथ राजमहलके झरोखेमें खड़ी थी । उस समय किसी नाटकको देखकर उसका मन चंचल हो गया था । वह नाटक आनंद उत्पन्न करनेवाला था, मनोहर था, रससे भरपूर था, अनेक प्रकारके पात्रोंसे सुशोभित था, भेरी, मृदंग, ताल, वीणा, वंशी, डमरू, झांझ आदि अनेक बाजे उसमें बज रहे थे, स्त्रीपुरुषोंसे वह भर रहा था, ताल और लयोंसे वह सुंदर था, स्त्रीभेषको

संयोगिनीसुखाकरः ॥१३१॥ मंदिरमेत्यभूपोऽभूत्तदासक्तसुमानसः । स्त्रियो हि चित्तमोहिन्यः सर्वा रूपयुताः किमु ॥१३२॥ गत कालं विवेदासौ न विश्वलोचनः सुखे । मासो हि दिनतुल्यः स्याद्दुःखे माससमं दिनम् ॥१३३॥ अथैकदा विशालाक्षी सौधगवाक्षके स्थिता । चामरी रंगिका दासी युता संहृष्टमानसा ॥१३४॥ तदा नाटकमालोक्य सा जाता चलमानसा । प्रमोदकारणं कांतं बहुरूप रसाकुलम् ॥१३५॥

धारण करनेवाले पुरुषोंके नृत्यसे सुशोभित था, उसमें अनेक अभिनय (खेल वा दृश्य) दिखाये जा रहे थे, पात्रलोग अंग-विक्षेप कर रहे थे, स्त्रियोंके गीत हो रहे थे और वह नाटक समस्त स्त्रीपुरुषोंके मनको मोहित कर रहा था। इस प्रकारके नाटकको देखकर उस रानीका मन चंचल हो गया था सो ठीक ही है क्योंकि अपूर्व नाटकको देखकर किसके हृदयमें विकार उत्पन्न नहीं होता है॥१३४-१३८॥ उसी समयसे वह रानी अपने हृदयमें चितवन करने लगी कि इस राज्यसुखसे मुझे क्या लाभ है, मैं तो एक अपराधीकी तरह बंदीखानेमें पड़ी हुई हूं ॥१३९॥ संसारमें वे ही स्त्रियां धन्य हैं जो अपनी इच्छानुसार चाहे जहां घूमती फिरती हैं। परन्तु पहले पाप-कर्मोंके उदयसे मुझे वह इच्छानुसार घूमने फिरनेका सुख प्राप्त नहीं हुआ है ॥१४०॥ इसलिये अब मैं इच्छानुसार घूमने फिरनेरूप संसारके फलको शीघ्र और सदाके लिये देखना चाहती हूं। इस विषयमें लज्जा मेरा क्या करेगी ? ॥१४१॥

भेरीमृदंगसत्तालवीणावंशादिनादकम्। डमरुझंझराराव नरनारीसमाकुलम् ॥१३६॥ सताळं सलयं चारु प्रकुशलास्यसंयुतम्। अभिनयांगविक्षेपं कामिनीगीतसंकुलम् ॥१३७॥ अशेषनरनारीणां मनोमोहनकारणम्। अपूर्वनाटकं दृष्ट्वा विकृतिं यांति के न हि ॥१३८॥ (पंचभिः कुलकम्)। तदा प्रभृति सा राज्ञी चिंतयामास मानसे। किमहं राज्यसौख्येन वंदिस्थाने न योजिता ॥१३९॥ ता धन्याः संति कामिन्यः स्वेच्छाभ्रम प्रकुर्वते। संसारे तच्च नो लेभे पूर्वपापविपाकतः ॥१४०॥ संसारस्य फलं शीघ्रं द्रक्षाम्यहं निरंतरम्। स्वैरिता भ्रमणे-

वह रानी इस प्रकार चिंता करने लगी परन्तु वह अपने मनोरथोंको पूर्ण न कर सकी इसलिये उसने कपट करनेमें अत्यन्त चतुर ऐसी अपनी दासियोंसे कहा ॥१४२॥ कि हे दासियो ! इच्छानुसार घूमना फिरना मनुष्यभवको सफल करनेवाला है और काम भोगादिको देनेवाला है इसलिये हम सबको यहांसे निकल कर इच्छानुसार घूमना चाहिये ॥१४३॥ इसके उत्तरमें वे दासियां कहने लगीं कि आपने यह विचार बहुत अच्छा किया। संसारमें मनुष्यजन्मका फल ही यही बतलाया है ॥१४४॥ तदनन्तर कामबाणसे पीड़ित, कामसे अन्धी, अत्यन्त विह्वल, दुष्ट हृदयवाली, अपने कुलाचारसे रहित और दुर्बुद्धिको धारण करनेवाली वह रानी अपने पहलेके पापकर्मके उदयसे उन दोनों दासियोंके साथ घरसे निकलनेका उपाय करने लगी ॥१४५-१४६॥ झूठ बोलना, दुर्बुद्धि होना, कुटिलहृदय होना, छल कपट करना और मूर्ख होना ये स्त्रियोंके स्वाभाविक गुण होते हैं ॥१४७॥

नैव लज्जा मे किं करिष्यति ॥१४१॥ इति चिंता समाप्यासावसपूर्णमनोरथा। अकथयद्द्रुतं दास्यौ भूरिकापट्यपंडिते ॥१४२॥ स्वेच्छागमनकं चेटयो करिष्यामो वयं द्रुतम्। मानुष्यभवसद्धेतु कामभोगादिदायकम् ॥ १४३ ॥ तदा जगदतुस्ते तां सखीति भवता वरम्। विचारितं नरत्वस्य फलमेतत्प्रकीर्तितम् ॥१४४॥ सोपायं साधयामास निर्गमनस्य सत्वरम्। दासीद्वयसमायुक्ता स्वकुलाचारवर्जिता॥१४५॥ पीडिता कामबाणेन मारांधा चातिविह्वला। पूर्वपापविपाकेन दुर्मतिर्दुष्टमानसा ॥१४६॥ असत्यं दुर्मतिश्चैव कुटिलहृदयं तथा। माया

इन्हीं गुणोंके कारण उस रानीने रात होते ही रुई भरकर एक स्त्रीका पुतला बनाया और उसे कपड़ोंसे खूब सुशोभित किया ॥ १४८ ॥ उस रानीने उस पुतलेकी कमरमें करधनी पहनाई, पैरोंमें बिछुआ पहनाये, माथेपर तिलक लगाया, समस्त शरीरको चन्दनसे लिप्त किया, केशोंको फूलोंसे गुंठित किया, स्तनोंपर कंचुकी (चोली) पहनाई, मुखपर पानकी लाली लगाई और मोतियोंसे जड़ी हुई नाकमें नथ पहनाई ॥ १४९-१५० ॥ तदनन्तर वह रानी उस पुतलेके रूपको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुई, क्योंकि उस पुतलेका बना हुआ शरीर बहुत ही सुशोभित होरहा था और ठीक रानीके रूपके समान ही जान पड़ता था ॥ १५१ ॥ फिर उस रानीने मणि तथा मोतियोंसे जड़े हुए अनेक रेशमी वस्त्रोंसे सुशोभित और अनेक प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंसे सुगंधित ऐसे पलंग-पर उस पुतलेको सुला दिया ॥१५२॥ तदनन्तर उस रानी विशालाक्षीने राजा विश्वलोचनके द्वारपाल आदि सब सेव-

---

शौचं च मूर्खत्वं स्त्रीणां दोषा निसर्गजाः ॥ १४७ ॥ निशागमे विशालाक्ष्या शोभनं तूलिकामयम् । प्रकल्पितं वधूरूपं दुकूलपरिभूषितम् ॥१४८॥ कटिमेखलया युक्तं नूपुरशोभितक्रमम् । तिलकाकीर्णसद्भालं चंदनैर्लिप्तविग्रहम् ॥१४९॥ पुष्पैर्गुंठितसत्केशं कंचुकाच्छादितस्तनम् । तांबूलरक्तसद्वक्त्रं नासिकाधृतमौक्तिकम् ॥ १५० ॥ ततस्तद्रूपमालोक्य राज्ञी सानंदलोचना । आसीच्छोभितसद्गात्रं निजरूपमिवापरम् ॥१५१॥ मणिमुक्ताफलाकीर्णे नानासुक्षौमवेष्टिते । स्थापितं तत्तया तल्पे सुगंधिद्रव्यवासिते ॥१५२॥ ततो द्वाःस्थादयः

कोंको वस्त्र, आभूपण और धन देकर अपने वशमें कर लिया ॥ १५३ ॥ फिर वह रानी अपने पूर्व पापकर्मके उदयसे उन दोनों दासियोंको साथ लेकर किसी देवीकी पूजाके वहानेसे आधी रातके समय उस राजमहलसे वाहर निकल गई ॥१५४॥ उन तीनों स्त्रियोंने सुन्दर वस्त्राभूपण आदि राज्यके चिह्नोंका त्याग कर दिया और गेरूके रंगे हुए वस्त्रोंसे अपने शरीरको ढककर जोगिनीका रूप धारण कर लिया ॥१५५॥ वनमें जाकर उन तीनोंका राजभवनमें मिलनेवाला सुन्दर भोजन तो छूट गया और भूख मिटानेके लिये वे तीनों वनके वृक्षोंके फल खाने लगी ॥१५६॥ देखो, कहां तो राजाकी महा सपत्ति और कहां जोगिनीका रूप ? पापकर्मके उदयसे इस संसारमें जीवोंको किस किस अशुभकी प्राप्ति नहीं होती है ? भावार्थ—समस्त अशुभ कर्मोंकी प्राप्ति होती है ॥१५७॥

इस घटनाके एक दिन वाद ही कामसे पीड़ित हुआ वह राजा रात्रिके समय मणियोंसे सजाये हुए रानीके शुभ्र

सर्वं विश्वलोचनदासकाः । वस्त्राभरणरौप्येण विशालाक्ष्या वशीकृताः ॥१५३॥ निशीथसमये जाते देवीपूजामिषात् द्रुतम् । दासीद्वययुता राज्ञी निःसृता पूर्वपापतः ॥१५४॥ ता राज्यलक्षणं मुक्त्वा योगिनीरूपमादधुः । गैरिकारक्तसद्वस्त्रपिधानितशरीरकम् ॥ १५५ ॥ कानने ताश्च योगिन्यो हित्वा राजार्हभोजनम् । बुभुजुर्वनवृक्षाणां फलानि क्षुद्विहानये ॥१५६॥ क्व भूमिपतिसंपत्तिर्योगिनीरूपकं क्व च । पापोदयो न किं कुर्यादशुभं भुवि देहिनाम् ॥१५७॥ एकस्मिन्नतरे भूपो रात्रौ जगाम तद्गृहम् । मणिविचित्रित शुभ्रं मदन-

(सफेद) महलमें पहुंचा ॥ १५८ ॥ राजाने परिवारके लोगोंको तो बाहर ही छोड़ दिया और कपूर, कस्तूरी, चंदन, पुष्प आदि अनेक पदार्थोंसे सुगंधित होनेवाले राजमहलके मध्य भागमें जा पहुंचा ॥ १५९ ॥ वह राजा रानीके उस सुन्दर पलंगको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और प्रेमसे उसका मन भर रहा था और मुंह तथा नेत्र प्रफुल्लित होरहे थे ॥ १६० ॥ उस समय वह अपने मनमें विचार कर रहा था कि मैं इंद्र हूं, यह रानी शची है, यह राजभवन वैजयंत (इन्द्रभवन) है और यह सुन्दर पलङ्ग इन्द्रकी ही शय्या है ॥ १६१ ॥ तदनन्तर राजा मनमें फिर विचार करने लगा कि यह रानी आज मेरा आदर सत्कार क्यों नहीं करती है, मालूम नहीं आज इसका क्या कारण है ॥१६२॥ क्या इसके शरीरमें कोई रोग होगया है अथवा कोई मानसिक दुःख है अथवा मेरा अनिष्ट करनेवाले किसीसे रूठ गई है ॥१६३॥ इसप्रकारकी चिंतासे व्याकुल हुआ वह राजा उस रानीसे

बाणपीडितः ॥ १५८ ॥ परिवारं बहिर्मुक्त्वा सौधमध्यं गतो नृपः । कर्पूरघनकस्तूरीचंदनपुष्पवासितम् ॥ १५९ ॥ स जहर्ष समालोक्य महिषीशयनं शुभम् । विकचद्वक्त्रसन्नेत्रः स्नेहपूरितमानसः ॥१६० एवं विचारयामास सोऽहं शक्र इयं शची । वैजयंतमिदं वेश्म तच्छयनमिदं शुभम् ॥१६१॥ राजेत्यचिंतयच्चित्तेऽभ्युत्थानं किमियं मम । संप्रति कुरुते नैव न जाने किमु कारणम् ॥१६२॥ शरीरेऽस्याः किमु व्याधिः किमु का मानसी व्यथा । किं च केनापि संरुष्टा मदनिष्टप्रकारिणा ॥ १६३ ॥ इति चिंताकुलो भूपो वचो जगाद

कहने लगा कि हे कांते ! हे रानी ! आज न उठनेका क्या कारण है, मेरे सामने कह ॥ १६४ ॥ तदनन्तर उस राजाने उस पलङ्गपर बैठकर उसका स्पर्श किया तथापि उस अचेतन विशालाक्षीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥ १६५ ॥ तब राजाने अपने मनमें समझा कि दोनो दासियोंसे रहित यह मायामयी रानी है इसलिये स्त्रियां जिसप्रकार विनय करती हैं उससे रहित है और पंचेन्द्रियोंके विषयोंसे रहित है। रतिके समान रूपको धारण करनेवाली वह रानी तो किसी पापीने हरण कर ली है। यही समझकर वह राजा बेहोश होकर भूमिपर गिर पड़ा ॥ १६६-१६७ ॥ कस्तूरी, चन्दन आदि शीतोपचारोंसे सेवकोंने उसे सावधान किया, फिर जिसका चित्त हरा गया है ऐसा वह राजा उस रानीके लिये विलाप करने लगा। वह कहने लगा कि हे हंसकीसी चाल चलनेवाली ! हे सुन्दरी ! हे हिरणकेसे नेत्रवाली ! हे बाले ! तू कहां है, जल्दी कह ॥१६८-१६९॥ हे गुणोंकी गौरवताको

तां प्रति । राज्ञि! किं कारण कांते! ममाग्रे त्वं निरूपय ॥१६४॥ ततस्तच्छयने स्थित्वा तेन तत्स्पर्शनं कृतम्। तथापि किमु नो ब्रूते विशालाक्षी विचेतना ॥१६५॥ राज्ञी मायामयी जाता दासीद्वयेन-वर्जिता। योषिद्विनयसंहीना पंचाक्षविषयच्युता ॥१६६॥ततो मनसि संज्ञात्वा राज्ञीयं केन पापिना। हृतेति रतिरूपाढ्या भूमौ पपात भूपतिः ॥१६७॥ कस्तूरी घनसारादिशीतोपचारतस्तदा। प्रबोधं सेवकैर्नीतो भूपतिर्हृतमानसः ॥१६८॥ विलापमिति चक्रेऽसौ हा! मरालगते! वरे!। हा! मृगलोचने बाले कुत्रासि त्वं वद द्रुतम्॥१६९॥ हा गुण-

बढानेवाली ! हे कांते ! हे मेरे हृदयरूपी धनको चुरानेवाली ! हे गुणोंकी आधार ! हे विलासिनी ! तू कहां है, शीघ्र कह ॥ १७० ॥ हे चंद्रवदनी ! हे सुन्दरी ! हे रतिके भी मानको मर्दन करनेवाली ! हे पंचेन्द्रियोंको सुख देनेवाली ! हे चित्तको मोहित करनेवाली ! तू कहां गई, शीघ्र बतला । १७१ ॥ हे सुन्दरी ! तेरी रक्षा करनेवाली दोनों दासियां कहां गई तथा मुझमें होनेवाला तेरा बहुतसा प्रेम इस समय कहां चला गया ? ॥१७२॥ यह सब मायामयी दृश्य मुझे मनोहर नहीं जान पड़ता। हे प्यारी ! इस महलमें कोई आ भी नहीं सकता फिर किस उपायसे तुझे हरण कर लिया ॥१७३॥ अथवा हे कुलाचारसे रहित दुष्ट ! तू अपने आप नष्ट होगई है ? नीच मनुष्योंकी संगतिसे सज्जन पुरुष भी नष्ट हो जाते हैं ॥१७४॥ स्त्री किसी अन्य पुरुषको बुलाती है, हृदयमें किसी अन्य पुरुषको धारण करती है, नियत किया हुआ स्थान किसी अन्यको बतलाती है और किसी अन्यके साथ क्रीड़ा

गौरवे कांते मच्चित्तवित्ततस्करि। निर्दये ! हा ! गुणाधारे कुत्रासि हा विलासिनि ॥१७०॥ हा ! चंद्रवदने वामे हा ! रतिमानमर्दने। पंचाक्षसुखदे कुत्र गतासि चित्तमोहिनि ॥ १७१ ॥ सुंदरि रक्षपालास्ते क्व गतं चेटिकाद्वयम् । भूरिमद्विषये प्रीतिस्तव कुत्राधुना गता ॥ १७२॥ इदं मायामयं सर्वं दृश्यते न मनोहरी। कस्याप्यागमनं नात्र कस्मादुपायतो हृता ॥ १७३ ॥ दुष्टे ! किं वा स्वयं नष्टा कुलाचारविवर्जिते ! कुमानवप्रसंगेन नाशं यांति हि सज्जनाः ॥ १७४ ॥ अन्यमाह्वयते नारी विधत्तेऽन्यं नरं हृदि।

करती है। स्त्री ये सब काम एक साथ करती है। स्त्री जैसी भीतरसे दिखाई देती है वैसी बाहरसे दिखाई नहीं देती और जैसी बाहरसे दिखाई देती है वैसे कार्य नहीं करती। स्त्रियोंके चारित्रको भला कौन जान सकता है॥१७५-१७६॥ कुटिल हृदयवाली स्त्रियोंकी जैसी चेष्टा होती है वैसी वे स्वयं नहीं होतीं। इस प्रकार शोकरूपी अग्निसे जिसका हृदय संतप्त होरहा है ऐसा वह राजा अपने हृदयमें बारबार चिंतवन करने लगा॥ १७७॥ वक्रोक्ति (जिस अभिप्रायसे कोई बात कही गई है उसका अर्थ बदलकर उत्तर देना), वक्र दृष्टि (तिरछी चितवन), पहेलियोको पढ़ानेवाली, बुरी संगति और सदा एकांतमें बातचीत करते रहना ये सब बातें स्त्रियोको नष्ट कर देती हैं॥१७८॥ उस रानीको मैंने कभी अप्रसन्न नहीं किया था, उसे पट्टरानीके पदपर विराजमान किया था और सब रणवासमें वह पूज्य मानी जाती थी। तो भी वह रानी क्यों रुष्ट होगई॥१७९॥ समस्त गुणोंको

दत्तेऽन्यं वचनस्थान रमतेऽन्येन वै समम्॥१७५॥ यादृशी दृश्यते मध्ये तादृशी न बहिर्वधूः। यद्बाह्येन करोत्येव वेत्ति स्त्रीचरितं हि कः॥१७६॥ कुटिलचेतसां स्त्रीणां चेष्टा या नास्ति सा नहि। पार्थिवोऽचिंतयच्चित्ते शोकाग्नितप्तमानसः॥१७७॥ वक्रोक्ति वक्रदृष्टिश्च प्रहेलीपाठिका तथा। कुसगती रहोवार्ता स्त्रीरेताभिर्विनश्यति॥१७८॥ कृतोऽस्या नाप्रसादोपि मया सा महिपीपदे। धृतावरोधसंपूज्या राज्ञी रुष्टा किमप्यसौ॥ १७९॥ यस्याः सर्वगुणाधारो दशवर्षीय आत्मजः। प्रजानां पालने दक्षः सा सुंदरी कथं गता

धारण करनेवाला और प्रजाको पालन करनेमें चतुर ऐसा जिसका दश वर्षका पुत्र है वह सुंदरी उसे छोडकर कैसे चली गई ? ॥ १८० ॥ मनको हरण करनेवाली वह रानी नीच दासियोंकी संगतिसे नष्ट होगई। जिस खेतकी वाड़ (खेतोंके चारों ओरकी कांटोंकी दीवाल) ही उस खेतको खाने लग जाती है उसकी रक्षा फिर भला कौन कर सकता है ? ॥ १८१ ॥ अपने कुलाचारको पालन करनेवाला भी ऐसा कौन पुरुष है जो कुसंगतिसे नष्ट न हुआ हो ? क्या अग्निसे लाल हुए लोहेके गोलेकी संगतिसे जल नष्ट नहीं हो जाता है ? अवश्य हो जाता है ॥ १८२ ॥ इसप्रकारकी चितासे दुःखी होता हुआ वह राजा वहुत दिन वीत जानेपर भी राज्यको नहीं संभालता था। वह राज्य उसे अत्यन्त दुःखदायी जान पड़ता था ॥ १८३ ॥ अनेक राजाओंके द्वारा समझानेपर भी वह राजा क्षणभरके लिये भी उस शोकको नहीं छोडता था। क्योंकि उसके मनको रानी पहले हीसे हरण कर ले गई थी ॥ १८४ ॥ इसके वाद उस रानीके

॥ १८० ॥ कुदासिका प्रसंगेन विनष्टा सा मनोहरी। वृत्तिरस्यति चेत्क्षेत्रं तद्रक्षां कः करोति हि ॥ १८१ ॥ कुसंगात् को विनष्टो न स्वकुलाचारतत्परः। तप्तायःपिंडसंगेन जलं नश्यति किं न हि ॥१८२॥ भूपो राज्यं न पातिस्म भूरिघस्रगते सति। इति चितादरिद्रेण दुःखसंदोहभाजनम् ॥ १८३ ॥ नरपार्थिवसंदोहैः प्रबोधितोऽपि भूपतिः। न त्यजति क्षणं शोकं कांतया हृतमानसः ॥१८४॥ ततः स निधनं प्राप्तस्तद्वियोगप्रपीडितः। स्त्रीवियोगविषबाधा केषां

वियोगसे दुःखी होकर वह राजा मर गया सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रीके वियोगरूपी विषकी बाधा किसको नहीं मार डालती है ? भावार्थ—सबको मार डालती है ॥१८५॥ राजाके मर जानेपर सब मंत्रियोंने मिलकर समस्त ऐश्वर्योंसे भरपूर वह राज्य, अनेक राजा जिसकी सेवा करते हैं ऐसे उसके पुत्रके लिये दे दिया ॥ १८६ ॥ उस राजाके जीवने इस अनादि अनन्त संसारमें अनेकबार जन्म मरण किया और फिर किसी एक बार बहुत ऊँचा हाथी हुआ ॥ १८७ ॥ उस हाथीके नेत्र क्रोधसे लाल होरहे थे, वह बड़ा ही तेजस्वी था और बड़ा ही मदोन्मत्त था। वह वनमें सब स्त्री पुरुषोंको मार गिराता था ॥ १८८ ॥ महा शरीरको धारण करनेवाले उस हाथीने उस भवमें बड़ा भारी पाप उपार्जन किया। क्योंकि प्राणियोंका घात करना भव भवमें महादुःख देता है ॥ १८९ ॥ उस हाथीके किसी पुण्यकर्मके उदयसे उस वनमें एक मुनिराज पधारे। वे मुनिराज अवधिज्ञानी थे और भव्य जीवोंके लिये अच्छे धर्मोपदेशक थे ॥ १९० ॥

भवेन्न मृत्युदा ॥१८५॥ तदा पुत्राय सद्दत्तं राज्यं समित्य मंत्रिभिः। विश्वसमृद्धिसंपन्नं समस्तभूपसेविने ॥१८६॥ अथानाद्यंतसंसारे मृतो जातः पुनः पुनः। आसाद्य भवमेकं त्वं दंती चासीन्महोच्छ्रितः ॥१८७॥ स वने ताडयामास नरसीमंतिनीगणान्। मदोद्धतो महातेजाः कोपारुणितलोचनः ॥१८८॥ तद्भवे स महत्पापमुपार्जयन्महातनुः। घातो हि प्राणिनां गाढं प्रदुःखदो भवे भवे ॥ १८९ ॥ केनचित्पुण्ययोगेन मुनिरेकः समागतः। अवधिज्ञानचक्षुर्भव्यजीव-

उन्होंने उस हाथीको धर्मोपदेश दिया, उसे सुनकर हाथीने श्रावकके व्रत धारण कर लिये। फिर उस हाथीने सचित्त फल पुष्प आदि कोई भी पदार्थ ग्रहण नहीं किये ॥१९१॥ अन्त समयमें उसने समाधिमरण धारण किया, चारों प्रकारके आहारका त्यागकर दिया और भगवान् अरहंतदेवकी स्तुति सुननेमें चित्त लगाया जिससे वह मरकर पहले स्वर्गमें देव हुआ ॥ १९२ ॥ हे राजन् ! वहांसे चयकर तू उत्तम राजा हुआ है। हे राजेन्द्र ! आगे चलकर तू मुक्त होगा (मोक्षमें जायगा) ॥ १९३ ॥ हे राजा महीचंद्र ! अब तू उन तीनों स्त्रियोंकी कथा सुन। वे तीनों स्त्रियां बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रत्येक देशमें अपनी इच्छानुसार भ्रमण करने लगीं ॥१९४॥ घूमती फिरती वे अवन्ती देशमें जा पहुंचीं। उनके पास कंथा था, खड़ाम थीं, दंड था और साथमें बहुतसी योगिनी थीं ॥१९५॥ वे तीनों ही स्त्रियां लोगोंसे भीख मांग मांगकर पेट भरती थीं सो ठीक ही है—भूखे मनुष्योंकी लज्जा अवश्य ही

प्रबोधकः ॥ १९० ॥ तेन संबोधितो हस्ती श्रावकव्रतमग्रहीत् । सचित्तफलपुष्पादिहरितं तत्र नाचरेत् ॥१९१॥ सोऽपि सन्यासमादाय चतुराहारवर्जनम् । मृत्वाद्य दिवि देवोऽभूदर्हतां नुतिकर्णनात् ॥ १९२ ॥ ततोऽवतीर्य भूपस्त्वं जातोऽत्र नृपपुंगवः । कालांतरेण राजेंद्र! मुक्तिगामी भविष्यसि ॥१९३॥ अथ शृणु महीचंद्र! तिसणां हि कथानकम् । ताः स्वेच्छाभ्रमणं चक्रुर्देशे देशे मुदान्विताः ॥१९४॥ ततोऽनुक्रमतः प्रापुरवंतीविषयं च ताः । सुकंथापादुकादंडयोगिनीगणसंयुताः॥१९५॥ जनेषु प्रार्थनां कृत्वा जठरं पूरयंति ताः । मानुषाणां

नष्ट होजाती है ॥ १९६ ॥ वे योगिनियां सदा प्रमाद उत्पन्न करनेवाली मद्य पीती थीं और शरीरको पुष्ट करनेवाला मांस खाती थीं ॥१९७॥ वे प्रतिदिन शहत खाती थीं और अनेक जीवोंसे भरे हुए तथा महापाप उत्पन्न करनेवाले पांचों उदंबर भक्षण करती थीं ॥ १९८ ॥ वे तीनों स्त्रियां कामसेवनकी इच्छासे प्रसन्नचित्त होकर उत्तम वा जघन्य जैसा मिला उसी मनुष्यका सेवन करती थीं ॥ १९९ ॥ वे योगिनियां लोगोंके सामने ही रागसे भरे हुए और योगी लोगोंको भी काम उत्पन्न करनेवाले गीत सदा गाया करती थीं ॥२००॥ वे लोगोंको सदा यही विचित्र बात कहा करतीं थीं कि योग धारण किये हम लोगोंको सौ वर्ष गीत गये हैं ॥२०१॥

अथानंतर किसी एक दिन धर्माचार्य नामके मुनि आहारके लिये पधारे । वे मुनि मौन धारण करनेमें पर्वतके समान निश्चल थे, पांचों इंद्रियोंको वश करनेवाले थे, मनरूपी

क्षुधार्तानां लज्जा नश्यति निश्चितम् ॥१९६॥ प्रमादजननं मद्यं पिबंति ता निरंतरम् । पुष्टकर्तॄणि मांसानि खादयंति पुनः पुनः ॥ १९७॥ प्रत्यहं मधु भक्षंति सहोदुंबरपंचकैः । जीवसंदोहसद्गेहं भूरिकिल्बिष-कारणम् ॥ १९८ ॥ उत्कृष्टं वा जघन्यं वा सेवंते मानुषं सदा । मदनवांच्छया कांता हर्षिताननलोचनाः ॥ १९९ ॥ गीतं गायंति कामिन्यो लोकानामग्रतोऽनिशम् । सराग योगिनां चापि कामोत्पा-दनकारणम् ॥२००॥ लोकेभ्य इति जल्पंति नियतमद्भुतावहम् । अस्माकं योगयुक्तानां गतं वर्षशतप्रमम् ॥२०१॥ अथ मौनाचलारूढं कृतपंचाक्षनिग्रहम् । वशीकृतमनोभूपं शरीरेऽपि गतस्पृहम् ॥२०२॥

राजाको वश करनेवाले थे और उन्होंने अपने शरीरसे भी ममत्व छोड़ दिया था, तपश्चरणसे उनका सुंदर शरीर क्षीण होरहा था, शील और संयमको वे धारण कररहे थे, चारित्र पालन करनेमें वे सदा तत्पर रहते थे, कषायोंको नाश करनेमें वे समर्थ थे, धर्मोपदेश रूपी अमृतकी वे वर्षा किया करते थे, क्षमाके पर्वत थे, संसारके सर्व जीवोंपर दया धारण करते थे, दोपहरके समयमें भी वे योग धारण करते थे, चोरी झूठ आदि पापरूपी वृक्षोंको काट डालनेके लिये वे कुठारके समान थे, समस्त परिग्रहके वे त्यागी थे और उस समय वे ईर्यापथ शुद्धिसे गमन कर रहे थे। उन गमन करनेवाले श्रेष्ठ मुनिको देखकर वे तीनों स्त्रियां क्रोधसे लाल लाल आंखें निकालकर कहने लगीं॥२०२-६॥ कि अरे नग्न फिरनेवाले! तू मान मोह आदि सबसे रहित है। हमारे घरसे निकलते ही तू किस पापकर्मके उदयसे हमारे सामने आगया ॥२०७॥ उज्जयनी महा नगरीका राजा शत्रुओंकी सेनाको

तपसा क्षीणसद्गात्रं शीलसंयमसंयुतम्। चारित्राचरणोद्यतं कषायनाशनक्षमम् ॥२०३॥ धर्मोपदेशपीयूषं वर्षंतं सत्क्षमाधरम्। विश्वजीवदयापात्रं मध्याह्ने योगधारकम् ॥२०४॥ ईर्यापथविलोकंतमाहारार्थं समागतम्। असत्यस्तेयसद्वृक्षप्रच्छेदनकुठारकम् ॥२०५॥ विश्वपरिग्रहत्याग धर्माचार्याभिधानकम्। प्रोचुस्ताः सन्मुनिं दृष्ट्वा कोपारुणितलोचनाः ॥२०६॥ (पंचभिः कुलकम्) ॥

अहो! नग्नाट निष्क्रांते मानमोहविवर्जितः। केन पापोदयेन त्वं कृतोऽस्मद्दृष्टिगोचरे ॥२०७॥ उज्जयिन्यां महापुर्यां यो वैरिबलभंजनः।

नाश करनेवाला है, समस्त प्राणियोंपर दया करनेवाला है और बहुत ही दान देनेवाला है, इसीके पास धन मागनेके लिये हम लोग जा रहीं थीं कि तूने अपना नग्न रूप हमें दिखला दिया ॥२०८–२०९॥ तेरा दर्शन होना भी मिथ्या वा बुरा है और तेरा शासन भी मिथ्या है। जो मनुष्य तेरी स्तुति करता है वह मिथ्यादृष्टी है और पापी है ॥ २१० ॥ अरे निर्लज्ज! अरे दुराचारी! क्या तूने अपनी लज्जा वेच दी है? तू कुलस्त्रियोंमें भी नंगा क्यों फिरता है? ॥ २११ ॥ अरे मूर्ख योगी! तूने हमारे लिये अपशकुन कर दिया है। इसलिये अब हमारे कार्यकी सिद्धि तो कभी हो ही नहीं सकती ॥२१२॥ अभी तो दिन है। दिनमें सब पदार्थ अच्छी तरह दिखलाई देते हैं इसलिये इस अपशकुनका फल तुझे हम रातको देंगी ॥ २१३ ॥ इसप्रकार उन स्त्रियोंके दुष्ट वचन सुनकर भी मुनिराजने अपने हृदयमें क्रोध नहीं किया

अभून्नृपो महात्यागी प्राणिनां सुकृपापरः ॥२०८॥ वयं प्रचलिता यावत्तस्मै याचयितुं धनम्। त्वया नोऽभिमुखीभूय रूपं तावत्प्रदर्शितम् ॥२०९॥ त्वदीयं दर्शनं मिथ्या मिथ्या हि तव शासनम्। मिथ्यादृष्टिर्नरो यस्त्वां स्तौति स पातकी भवेत् ॥२१०॥ रे निर्लज्ज दुराचारिन्! विक्रीता किं त्वया त्रपा। कथं भ्रमसि नग्नस्त्वं मध्ये हि कुलयोषिताम् ॥२११॥ अस्मभ्यं शठ रे योगिन्! त्वयापशकुनं कृतम्। अतोऽस्माकं कृते सिद्धिर्निश्चितं न भविष्यति ॥२१२॥ संप्रति वर्तते घस्रः पदार्थदर्शनप्रदः। क्षपायां दर्शयिष्यामस्तुभ्यं तस्य फलं वयम् ॥२१३॥ इति तासां वचो दुष्टं श्रुत्वा कोपं मुनीश्वरः।

क्योंकि वे मुनिराज समुद्रके समान महागम्भीर थे ॥२१४॥ वे मुनिराज इस घटनाको अन्तराय समझकर लौटकर वनमें चले गये और वनमें जाकर योग धारणकर मेरुपर्वतके समान अचल आसनसे विराजमान होगये ॥ २१५ ॥ जिसप्रकार जलसे भरी हुई पृथ्वीपर जलती हुई अग्नि कुछ काम नहीं कर सकती उसीप्रकार क्षमा धारण करनेवाले पुरुषके लिये दुष्टोंके वचन कुछ नहीं कर सकते हैं॥२१६॥ जिसप्रकार काले पत्थरका मध्यभाग पानीसे नरम नहीं होता उसीप्रकार योगियोंका निर्मल हृदय क्रोधरूपी अग्निसे कभी नहीं जलता है॥२१७॥ तदनंतर वे तीनों ही महा नीच स्त्रियां रात्रिके समय मुनिराजके समीप आईं और क्रोधित होकर अनेक उपद्रव करने लगीं ॥२१८॥ एकने आकर मुनिराजके समीप ही रोना प्रारंभ किया, दूसरी कामसे पीडित होकर उनके शरीरसे लिपट गई और तीसरीने धुआं कर मुनिराजको बहुत ही दुःख दिया। सो ठीक ही है—कामसे पीडित हुआ मनुष्य कौन कौनसे बुरे काम नहीं

दधौ चित्ते न गंभीरः सरित्पतेरिवापरः ॥२१४॥ अंतरायं मुनिः कृत्वा व्यावुत्य कानने शुभे । गत्वा योगं समादाय स्वर्णाचल इव स्थितः ॥ २१५ ॥ क्षमायुक्तस्य मर्त्यस्य दुर्जनवाक् करोति किम् । सलिलार्द्रकमेदिन्या ज्वलद्दहनयो यथा ॥ २१६ ॥ योगिनो निर्मलं चित्तं कोपाग्निना न दह्यते ॥ कृष्णपाषाणमध्यं हि यथा न भिद्यतेऽभसा ॥२१७॥ ततस्तिस्रो मुनींद्रांते समागत्य महाधमाः । त्रियामासमये कोपादुपद्रवान् प्रचक्रिरे ॥२१८॥ महामुनिसमासन्ने पूत्कार एकया कृतः । तदंगे परया लिप्ता मदनातुरचित्तया ॥ २१९ ॥

करता है ? अर्थात् वह सभी बुरे काम कर डालता है। ॥२१९–२२०॥ उन स्त्रियोंके सैकडों उपद्रव करनेपर भी वे मुनिराज चलायमान नहीं हुए। क्या प्रलय कालकी वायुसे महान् मेरु पर्वत भी कभी चलायमान होता है ? ॥ २२१ ॥ तदनन्तर वे तीनों ही स्त्रियां विरह रूपी वह्निसे संतप्त होकर अनेक प्रकारके कटाक्ष करती हुई उन मुनिराजके सामने नंगी होकर नाचने लगीं ॥ २२२ ॥ और भोग क्रीड़ाकी इच्छासे ही राज्यको छोड़कर इच्छानुसार भ्रमण करनेवाली वे स्त्रियां उन मुनिराजसे कहने लगी ॥२२३॥ कि जो इस लोकमें इच्छानुसार घूमते फिरते हैं उनको परलोकमें भी कोई बंधन नहीं होता। इस लोकमें भोग करनेसे भोगोंकी प्राप्ति होती है और नंगे रहनेसे नंगापन ही मिलता है ॥ २२४ ॥ इसलिये हे मुनिराज ! प्रसन्न हो और हमारी इच्छाओंको पूर्ण करो। क्योंकि यह भोगोंकी संपदा चक्रवर्ती, देवेन्द्र और नागेन्द्रोंसे भी नहीं छूटी है ॥२२५॥ संसारमें आनेका फल

तृतीयया मुनीद्रोऽपि धूम्रव्याकुलितः कृतः। मदनपीडितः को ना कृत्यं किं किं करोति हि ॥२२०॥ न चचाल मुनिः किंचित्तत्कृतोपद्रवैः शतैः। प्रलयकालवातेन किं वा स्वर्णाचलो महान् ॥२२१॥ नग्नीभूत्वा तदा सर्वास्ता ननृतुर्मुनेः पुरः। विरहवह्निसंतप्ताः कटाक्षक्षेपतत्पराः ॥२२२॥ राज्यस्थानं परित्यज्य भोगक्रीडनवाञ्छया। स्वैरिताः भ्रमणे रक्तास्ताः प्रोचुरिति त प्रति ॥ २२३ ॥ भ्रमति स्वेच्छया येऽत्राऽमुत्र तेषा न बंधनम्। भोगेन लभते भोग्यं नग्नत्वे नग्नता भवेत् ॥ २२४ ॥ प्रसन्नीभूय योगींद्र ! देहि नो वांच्छितं

स्त्रियोंकी प्राप्ति ही है। क्योंकि स्त्रियां पांचों इंद्रियोंको सुख देनेवाली हैं। जिन्हें स्त्रियोंका भोग प्राप्त नहीं होता उनका जन्म ही व्यर्थ समझना चाहिये ॥ २२६ ॥ संसारका उत्तम फल द्रव्य है जो अनेक प्रकारके भोगोपभोगोंको देनेवाला है, इसी भोगोपभोगसे प्राणियोंको परलोकमें भी ऐसा ही वैभव प्राप्त होता है ॥ २२७ ॥ इस बातको तू सच समझ कि यदि तू इस समय हमारी इच्छाको पूर्ण न करेगा तो हम तेरे इस शरीरको चण्डीके मुखमें रख देंगे ॥ २२८ ॥ इसप्रकार कहकर और फिर भी उनको निर्विकार देखकर उन तीनों स्त्रियोंने मुनिराजको हाथसे उठाया और चण्डीके सामने लाकर रख दिया ॥२२९॥ तदनन्तर उन्होंने उन मुनिराजपर घोर उपसर्ग किया। पत्थर, लकड़ी, मुक्का, लात, जूता आदिसे ताड़न किया और उन्हें बांध भी लिया ॥२३०॥ उस समय वे मुनिराज अपने हृदयमें बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन

फलम् । चक्रिदेवेंद्रनागेंद्रैर्न त्याज्या भोग्यसंपदा ॥२२५॥ संसारस्य फलं योषित् पंचाक्षसुखदायिका । स्त्रीभोगरहिता येऽत्र तेषां जन्म निरर्थकम् ॥ २२६ ॥ संसृतेः सत्फलं द्रव्यं भोगोपभोगदायकम् । तेन सुप्राणिनः यो[illegible]ऽमुत्र वैभवम् ॥२२७॥ वांछितं यदि नः सत्यं न करिष्य[illegible] । ततो वयं प्रदास्यामस्त्वद्वपुश्चंडिकामुखे ॥२२८॥ इत्युक्त[illegible] [illegible]विकारं तं ज्ञात्वा चोत्थाय पाणिभिः । ताः सर्वाः स्थापयामासु[illegible]चंडिकापुरतस्तदा ॥२२९॥ उपसर्गं मुनौ चक्रुः पाषाणैर्यष्टिभिर्घनैः । [illegible]बंधनैः पादैस्ताडनैः पादरक्षकैः ॥२३०॥ अचिंतयन्मुनिश्चि[illegible]ऽनु[illegible] द्वादशात्मिकाः । प्राणिनां तरणे नावो

करने लगे क्योंकि संसाररूपी समुद्रमें डूबते हुए प्राणियोंको पार होनेके लिये अनुप्रेक्षा ही नावके समान है ॥ २३१ ॥ वे चिंतवन करने लगे कि इस संसारमें मनुष्योंका शरीर, यौवन आदि सब क्षणस्थायी हैं, झट नष्ट होजाते हैं, यह जीवन पानीके बुद्बुदाके समान है और लक्ष्मी विजलीके समान चंचल है ॥ २३२ ॥ जब भरत आदि चक्रवर्तियोंका ही जीवन नष्ट होजाता है तो हे जीव ! तू तो किसी गिनतीमें नहीं है फिर भला अपने कार्य सिद्ध करनेमें तू कैसे समर्थ हो सकता है ॥ २३३ ॥ जिसप्रकार विलावके द्वार पकड़े हुए और भयभीत हुए चूहेकी कोई रक्षा नहीं कर सकता इसीप्रकार यमरूपी शत्रुके द्वारा पकड़े हुए इस जीवकी कोई रक्षा नहीं कर सकता, कोई नहीं बचा सकता ॥ २३४ ॥ भगवान् अर्हंतदेवके विना इस संसारमें प्राणियोंका और कोई शरण नहीं है इसलिये हे प्राणिन् ! तू सावधान होकर भगवान् अर्हंतदेवका ही स्मरण कर ॥ २३५ ॥ हे जीव ! तूने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव इन पांचों प्रकारके संसारमें

भवाकूपारमज्जताम् ॥२३१॥ नृणां लोके क्षणस्थायि शरीरयौवनादिकम् । जीवितं बुद्बुदौपम्यं शंपावदिव रा मता ॥२३२॥ चक्रिणां भरतादीनां जीवितं यदि नश्यति । त्वं छिन्नोसि क्व जीव क्षमस्व कार्यसाधने ॥ २३३ ॥ रक्षते केरयं जीवो गृहीतो यमशत्रुभिः । अशरण्यो भयैर्भीतो मार्जारेणेव मूषकः ॥ २३४ ॥ भगवंत विना नैव शरण्यं कोऽपि देहिनाम् । अतस्तत्स्मरणे प्राणिन् ! सावधानो भव त्वकम् ॥ २३५ ॥ पंचविधेऽपि संसारे क्वनो भ्रमस्त्वनेकशः ।

अनेकवार परिभ्रमण किया है तथा अब भी त्रस स्थावर योनियोंमें तू सदा परिभ्रमण किया करता है ॥ २३६ ॥ हे जीव! तू इस संसारमें रत्नत्रयको प्राप्त करनेमें असावधान क्यों होरहा है? अब तू रत्नत्रयको सिद्ध करनेमें ही मनको स्थिर कर क्योंकि इस संसारका नाश रत्नत्रयसे ही होता है ॥ २३७ ॥ हे आत्मन्! इस संसारमें परिभ्रमण करता हुआ तू अकेला ही कर्मोंका कर्ता है और अकेला ही सुख दुःखका भोक्ता है। भाई बन्धु आदि सब तुझसे भिन्न हैं ॥ २३८ ॥ हे आत्मन्! त्रस स्थावर योनियोंमें तुझे अकेला ही जन्म लेना पड़ता है और अकेला ही मरण करना पड़ता है इसलिये कर्ममल कलङ्कसे रहित ऐसे सिद्ध परमेष्ठीमें ही तू अपने मनको निश्चलकर अर्थात् उन्हींका ध्यान कर ॥२३९॥ इस जीवसे कर्म भिन्न हैं, क्रिया भिन्न है, इंद्रियोंके विषय भिन्न हैं और शरीर भी भिन्न है, फिर भाई बन्धु आदि कुटुम्बी जन तो सर्वथा भिन्न हैं ही ॥ २४० ॥ हे आत्मन्! तू सांसारिक चीजोंसे तथा शरीरसे सर्वथा भिन्न है। ये सब

भ्रमिष्यसि पुनर्नित्यं त्रसस्थावरयोनिषु ॥२३६॥ किं भो मुह्यसि संसारे रत्नत्रयस्य लाभतः। स्थिरीकुरु मनः सिद्धे तेन तन्नाशनं भवेत् ॥ २३७ ॥ भ्रमन् चेतन ! संसार एकः कर्तासि कर्मणाम्। सत्सुखदुःखयोर्भोक्तास्येको भिन्नास्तु बांधवाः ॥२३८॥ त्रसस्थावरयोर्मृत्यौ जन्मन्येकोऽसि चेतन। अतो निरंजने सिद्धे हृदयं त्वं स्थिरीकुरु ॥ २३९ ॥ अन्यत्कर्म क्रिया अन्या इन्द्रियविषयाः परे। जंतुरन्यश्च कायोऽन्यो बांधवाद्याः किमु ततो ॥ २४० ॥ जीवास्ति

चीजें जडरूप हैं और तू ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यमय है तथा कर्मरहित शुद्ध है इसलिये हे जीव ! तू उसी शुद्ध आत्माका ध्यान कर और उसीका जप कर ॥२४१॥ यह शरीर मांस, हड्डी, रुधिर, विष्ठा, मूत्र, चमड़ा, वीर्य आदि महा अपवित्र पदार्थोंसे बना हुआ है इसलिये हे जीव ! तू इसमें व्यर्थ ही क्यों मोहित हो रहा है ॥ २४२ ॥ भगवान् सिद्ध परमेष्ठी कर्मोंसे रहित हैं, निराकार हैं, सब तरहकी अपवित्रतासे रहित हैं, ज्ञानमय हैं और समस्त दोषोंसे रहित हैं इसलिये हे प्राणिन् ! तू ऐसे सिद्ध परमेष्ठीका स्मरण कर ॥ २४३ ॥ जिसप्रकार नावमें छिद्र होजानेसे उसमें पानी भर जाता है उसीप्रकार मिथ्यात्व, अविरत, कषाय और योगोंसे जीवोंके कर्मोंका आस्रव होता रहता है ॥ २४४ ॥ जिसप्रकार नावमें जल भर जानेसे वह नाव समुद्रमें डूब जाती है उसीप्रकार कर्मोंका आस्रव होनेसे यह जीव भी संसारमें डूब जाता है इसलिये हे जीव ! कर्मोंके आस्रवसे सर्वथा रहित ऐसे सिद्ध परमेष्ठीका स्मरण कर ॥ २४५ ॥ जिसप्रकार नावका छिद्र

सर्वतोऽन्यस्त्व दृग्वीर्यसुखात्मक. । आत्मध्यान जपातस्त्व कर्मातीतो निरञ्जन. ॥२४१॥ मांसास्थिरक्तशकृन्मूत्रचर्मगेहमये ध्रुवम् । काये शुक्रास्रसभूते जतो ! रज्यसि किं वृथा ॥ २४२ ॥ कर्मातीतं निराकारं सर्वाशुचिविवर्जितम् । सिद्धं भजस्व भो प्राणिन् ! ज्ञानरूपं निरंजनम् ॥२४३॥ अविरतकषायैश्च मिथ्यात्वयोगकैर्भवे । कर्मास्रवोगिनामब्धौ नावां रन्ध्रैर्यथाम्भसाम् ॥२४४॥ आस्रवाद्ब्रूडते जीवः संसारेऽब्धौ च नौरिव । जलागमाद्भजातस्त्वं सिद्धमास्रववर्जितम्

बन्द कर देनेसे फिर उसमें पानी नहीं आ सकता उसीप्रकार कर्मोंके आनेके कारण मिथ्यात्व, अविरत, आदिका साग कर देने और ध्यान चारित्र आदिको धारण करनेसे आते हुए कर्म रुक जाते हैं। इसीको संवर कहते हैं ॥२४६॥ संवरके होनेसे ही यह जीव मोक्षस्थानमें जा विराजमान होता है इसलिये हे जीव! तू अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्माका स्मरण किये बिना केवल अपने शरीरमें ही क्यों मोहित होता है? ॥ २४७ ॥ तप और ध्यानसे जो पहलेके इकट्ठे किये हुए कर्मोंका नाश करना है उसे निर्जरा कहते हैं। वह निर्जरा दो प्रकारकी है—एक भावनिर्जरा और दूसरी द्रव्यनिर्जरा तथा वे दोनों ही निर्जराएं सविपाक और अविपाकके भेदसे दो दो प्रकारकी हैं ॥ २४८ ॥ जिसप्रकार नावमें भरे हुए पानीके निकल जानेसे नाव ऊपर आ जाती है उसी प्रकार कर्मोंके नाश हो जानेसे यह जीव ऊपर जाकर मोक्षस्थानमें ही जा विराजमान होता है इसलिये हे चेतन! तुझे सदा कर्मोंकी निर्जरा करते रहना चाहिये ॥ २४९ ॥ जिस प्रकार

॥२४५॥ निरोधः संवरस्तेषां ध्यानचारित्रसद्बलैः। अब्धौ नौछिद्र बंधाद्वा जलागमं भवेन्न हि ॥२४६॥ सति तस्मिन्नयं जन्मी स्वेष्टां गतिं प्रयाति वै। मुह्यस्यतः कथं स्वांगे चिद्रूपस्मरणं विना ॥२४७॥ तपोध्यानबलेनापि पूर्वसंबद्धकर्मणाम्। या निर्जरा द्विधा सापि सविपाकाविपाकतः ॥ २४८ ॥ कर्मणां संक्षयात्स्वेष्टं पदं यास्यसि चेतन!। पूर्ववारिक्षयान्नौर्वा त्वमतः कुरु निर्जराम् ॥२४९॥ ऊर्ध्वनरः कटौ हस्तः प्रसृतांह्रिर्विमस्तकः। ईदृग्विधः स्थितो लोकः सोऽकृ-

कोई मनुष्य खड़ा हो जाय, वह अपने दोनों पैर फैला ले और दोनों हाथ कमरपर रखले तथा उसका मस्तक न हो उस समय उसका जैसा आकार होता है ठीक वैसा ही आकार इस लोकका है। यह लोक अकृत्रिम है, किसीका बनाया हुआ नहीं है ॥ २५० ॥ यह लोक चौदह रज्जू ऊंचा है और तीनसौ तेतालीस रज्जू घनाकार है। हे जीव! इस लोकमें तू व्यर्थ ही क्यों परिभ्रमण कर रहा है? ॥२५१॥ इस संसारमें भव्य होना अत्यन्त कठिन है फिर मनुष्य होना, आर्यक्षेत्रमें जन्म लेना, मोक्ष जाने योग्य कालमें उत्पन्न होना, अच्छे कुलमें जन्म लेना, अच्छी आयु पाना आदि उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं। इन सबके प्राप्त होते हुए भी रत्नत्रयकी प्राप्ति होना अत्यन्त दुर्लभ है ॥२५२॥ हे जीव ! अपनी इच्छाको पूर्ण करनवाले और चिंतामणिके समान सुख देनेवाले ऐसे रत्नत्रयको पाकर तू व्यर्थ ही क्यों खो रहा है? (इसको पाकर शीघ्र ही अपना कल्याण क्यों नहीं करता) ॥ २५३ ॥ यह धर्म अहिंसारूप एक प्रकार है, मुनि श्रावकके भेदसे दो प्रकार है, क्षमा, मार्दव आदिके भेदसे दश प्रकार है, पांच महाव्रत पांच समिति

त्रिमो न कै. कृतः ॥२५०॥ ऊर्ध्वश्चतुर्दशो रज्जुर्घनाकारशतत्रयम् । त्रिचत्वारिंशता सार्द्ध तत्र भ्रमसि किं मुधा ॥ २५१ ॥ भव्यत्वं नृत्वसत्क्षेत्रं कालोच्चजन्मसुस्थितिः । दुर्लभं ते क्रमात्सत्सुबोधं तेष्वपि दुर्लभम् ॥२५२॥ बोधं प्राप्य कथं जंतो ! त्वं गमयसि वै वृथा । वांछितं सुखदातारं चितामणिमिवापरम् ॥२५३॥ एकविधो वृषो जैनो द्विविधो दशधा मतः । त्रयोदशविधश्चापि बहुधा व्रतभेदतः

तीन गुप्तिके भेदसे तेरह प्रकार है और व्रतोंके भेदसे अनेक प्रकार है ॥२५४॥ धर्मके प्रसादसे आत्माके परिणाम शुद्ध होते हैं, शुद्ध होनेसे आत्मा प्रबुद्ध होता है और प्रबुद्ध होनेपर रत्नत्रयरूप शुद्ध आत्मामें स्थिर हो जाता है ॥२५५॥ वे मुनिराज इसप्रकार बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन करने लगे और असन्त दुःख देनेवाले उन स्त्रियोंके किये हुए उपद्रवको उन्होंने कुछ भी नहीं माना ॥ २५६ ॥ सवेरा होते ही उस उपद्रवको व्यर्थ समझकर और जानेवाले लोगोंके डरसे वे तीनों ही स्त्रियां भाग गईं ॥२५७॥ कर्मोंको क्षय करनेवाले वे भव्य मुनिराज मनको निश्चल कर और आत्मध्यानमें तत्पर होकर उसीप्रकार वहीं विराजमान रहे ॥२५८॥ तदनंतर वहांपर बहुतसे भव्य श्रावक आगये और उन सबने मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक जल चंदन आदि आठों द्रव्योंसे उन मुनिराजकी पूजा की ॥२५९॥ उन मुनिराजका शरीर तो क्षीण हो ही रहा था परन्तु उपद्रवके कारण उनके सब शरीरमें घाव हो रहे थे

॥२५४॥ धर्मात्पुंसो विशुद्धिः स्यात्तस्याश्चात्मप्रबोधनम् । तस्माद्दृग्वीर्यचिद्रूपे स्वात्मरूपे स्थिरीभव ॥२५५॥ मुनिश्चित्ते त्वनुप्रेक्षा द्वादश भावयन्न हि । उपद्रवं मनुतेस्म तत्कृतं दुःखदायकम् ॥२५६॥ प्रत्यूपेऽथ नाकीर्णे नष्टास्तिस्रोपि योषितः । मानवभयतो ज्ञात्वा निरर्थकमुपद्रवम् ॥ २५७ ॥ योगी तथैव संतस्थे स्वात्मध्यानेषु तत्परः । निश्चलमानसो भव्यः कर्मणां क्षयकारकः ॥ २५८ ॥ ततो भव्यजनाः सर्वे समागत्य मुनीश्वरम् । त्रिशुद्धया पूजयामासुरष्टद्रव्यैर्जलादिभिः ॥२५९॥ ते चित्ते ज्ञापयामासुरुपद्रवितयोगिनम् । व्रण-

और वे मौन धारण कर रहे थे। इन्हीं सब कारणोंसे उन भव्य जीवोंने अपने हृदयमें उन मुनिराजका उपद्रव समझ लिया था ॥ २६० ॥ सज्जन पुरुष स्त्रियोंके कटाक्षोंसे कभी चलायमान नहीं होते हैं। क्या मेरुपर्वत प्रलयकालकी वायुसे चलायमान हो सकता है ? कभी नहीं ॥ २६१ ॥ संसारमें मदोन्मत्त हाथियोंको बांधनेवाले भी बहुत हैं और सिंहके मारनेवाले भी बहुत हैं परन्तु जिनका मन स्त्रियोंमें नहीं विका है, ऐसे पुरुष संसारमें बहुत थोड़े हैं ॥ २६२ ॥ उन स्त्रियोंने उन मुनिराजपर जो घोर उपसर्ग किया था वह अत्यन्त दुःखदायी था और उससे महापापका बंध हुआ था। उसी पापकर्मके उदयसे उन तीनों स्त्रियोंको कोढ़ हो गया था ॥ २६३ ॥ उन तीनोंकी ही बुद्धि कुबुद्धि होगई थी, वे सदा पापकर्ममें ही लगी रहती थी, सब लोग उनकी निंदा करते थे और वे सदा महा दुःखी रहती थीं ॥ २६४ ॥ आयु समाप्त होनेपर वे रौद्रध्यानसे मरी और सब इकट्ठे हुए पापकर्मोंके उदयसे वे पांचवें नरकमें पहुंची ॥२६५॥ वहांपर उन नारकि-

---

संव्याप्तसर्वांगं मौनिन क्षीणविग्रहम् ॥ २६० ॥ वधूकटाक्षनुन्नोपि चलते न हि सज्जनः। महान् स्वर्णाचलः किं वा प्रलयकालवायुना ॥२६१॥ मत्तेभबंधने दक्षाः संति सिंहवधेऽपि ना। विक्रियंते मनो येषां योषिति विरलास्तके ॥२६२॥ मुनिघोरोपसर्गेण संजातप्रचुरेनसा। ताः कुष्टिन्यः समाजाताः भूरिदुःखप्रदायिना ॥ २६३ ॥ कुधिषणासमाकीर्णाः कुकर्मनिरताः सदा। विश्वजनविनिंदिन्यो जातास्ता दुःखपूरिताः ॥२६४॥ ततः आयुक्षये मृत्वा पंचमे नरके

योंको पांचों प्रकारके महादुःख भोगने पड़ते थे। उनकी कृष्णलेश्या थी, वे सदा क्रूर रहते थे और क्रोधसे उनका मन सदा जलता ही रहता था ॥२६६॥ बंधन, छेदन, कदर्थन (दुःख देना,) पीडन, तापन और ताडन आदिके दुःख वे नारकी सदा सहन करते रहते थे ॥ २६७ ॥ उष्णवायु वा शीतवायुसे वे सदा पीडित रहते थे और भूख प्याससे सदा दुःखी रहते थे। उनका अवधिज्ञान दो कोस तक था, उनके शरीरकी ऊंचाई एकसोपच्चीस हाथ थी, आयु सत्रह सागरकी थी, वे सब नपुंसक थे, भयानक उनका शरीर था, वे निर्दयी थे, धर्मका लेशमात्र भी उनमें नहीं था, वे सबसे ईर्ष्या करते थे, देखनेमें बड़े भयंकर थे और मुंहसे सदा मार मार ही कहा करते थे ॥ २६८–२७० ॥ आयु पूर्ण होनेपर वे नारकी वहांसे निकले और अनेक दुःखोंसे भरे हुए तथा परस्पर एक दूसरेके साथ विरोध करनेवाले शरीरोंमें उत्पन्न हुए ॥२७१॥

गताः। रौद्रध्यानेन तास्तिस्त्रः सामवायिककर्मणा ॥२६५॥ तत्रापि पंचधा दुःखं ते भुंजतेस्म नारकाः। कृष्णलेश्याः सदा क्रूराः क्रोधज्वलितमानसाः ॥२६६॥ वधनं छेदनं खेदं बंधनं च कदर्थनम्। पीडनं तापनं नित्यं सहंतेस्म सुताडनम् ॥ २६७ ॥ उष्णशीतलवाताभ्यां पीड्यंते ते निरंतराः। क्षुत्पिपासासमाकीर्णाः क्रोशद्वयावधीक्षणाः ॥२६८॥ सहितं पंचविंशत्या शतहस्तप्रमं वपुः। सप्तदशजलध्यायुर्दध्युस्ते षंडवेदकाः ॥२६९॥ अतिरौद्रा दयाहीना धर्मलवविवर्जिताः। मारमारेति जल्पंति मत्सरिणः कुदर्शनाः ॥ २७० ॥ ततस्ते नारकास्तस्मादायुःक्षये विनिःसृताः। अनेकदुःखसंकीर्णाः

उन सबने एकसे ही कर्मोका वंध किया था इसलिये अनुक्रमसे वे सब बिल्ली, सुअरी, कुत्ती और मुर्गीकी योनियोंमें उत्पन्न हुए ॥ २७२ ॥ वहांपर वे रातदिन पाप उत्पन्न करते रहते थे, अनेक प्रकारके दुःख सहन करते रहते थे और अनेक जीवोंकी हिंसा करते थे ॥२७३॥ वे उच्छिष्ट भोजन करते थे, परस्पर लड़ते थे, घरघर फिरते थे और घरघर मनुष्य उन्हें मारते थे ॥ २७४ ॥ रौद्रध्यानसे जीवोंको नर्कगति होती है, आर्तध्यानसे तिर्यंचगति होती है, धर्म्यध्यानसे मनुष्यगति तथा देवगति होती है और शुक्लध्यानसे जीवोंको केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है। तथा केवलज्ञानसे सदा रहनेवाला प्रकाशमय (ज्ञानमय) मोक्षस्थान प्राप्त होता है ॥२७५–२७६॥ जो दुष्ट मनुष्य शांत चित्तको धारण करनेवाले मुनिराजपर क्रोध करते हैं वे नरक जाते हैं फिर भला जो दुष्ट उनपर उपसर्ग करते हैं उनकी तो बात ही

परस्परविरोधिनः ॥२७१॥ विडालशूकरश्वानकुर्कुटानां भवावलिम्। अनुक्रमेण ते प्रापुरेकत्र कर्मबंधनात् ॥ २७२ ॥ तत्र तेऽहर्निशं पापमुपार्जयंति निर्भरम्। सहते दुःखसंदोहं कुर्वंति जंतुहिंसनम् ॥२७३॥ खादंति चान्नमुच्छिष्टं प्रयुद्धंते परस्परम्। मानवताडनेनैव संभ्रमंते गृहे गृहे ॥२७४॥ रौद्रध्यानेन जीवानां दुर्गतिर्जायतेऽनिशम्। तिरश्चां गतिरार्तेन नरदेवगतिर्वृषात् ॥ २७५ ॥ प्राप्यते केवलज्ञानं शुक्लध्यानेन जंतुभिः। तस्माद्भवेच्छिवस्थानं ज्योतिर्मयं सनातनम् ॥२७६॥ मुनिभ्यः शांतचित्तेभ्यो ये क्रुध्यंति कुमानवाः। ते नरके प्रजायंते किमु तदुपसर्गिणः ॥ २७७ ॥ जिनेंद्रगुरुशास्त्राणां निंदा

क्या है ॥२७७॥ विद्वान् लोगोंको अरहंतदेव, उनके कहे हुए शास्त्र और निर्ग्रंथ गुरुकी कभी निंदा नहीं करनी चाहिये क्योंकि इनकी निंदा करनेवाले मनुष्य नरकमें जाते हैं और स्तुति करनेवाले स्वर्गमें जाते हैं ॥२७८॥ तदनंतर हे राजन्! आयु पूर्ण होनेपर वे तीनों मुर्गियां बड़े कष्टसे मरीं सो ठीक ही है—पूर्व पापकर्मोंके उदयसे जीवोंको प्रत्येक भवमें दुःख होता है ॥२७९॥ वे तीनों ही मरकर धर्मस्थानोंसे सुशोभित ऐसे अवंती देशके समीप नीच लोगोंसे वसे हुए किसी कुटंवीके घर कन्याएं उत्पन्न हुईं। उस कुटंवीके घर पिता, जवांई, और पुत्र थे तथा वे सब मुर्गियां पाला करते थे॥ २८०–२८१ ॥ उन कन्याओंके गर्भमें आते ही धन सब नष्ट हो गया था, जन्म होते ही माताएं सब मर गईं थीं और कुटंबके सब लोग मर गये थे, केवल पिता रह गया था वही उन्हें पालता था॥ २८२ ॥ उन कन्याओंमेंसे एक कानी थी, एक लंगडी थी और एक काले रंगकी

कार्या न पंडितैः। अधोगा निंदकात्मानो व्रजंत्यूर्ध्वमनिंदकाः ॥२७८॥ अथ ते कुर्कुटा भूप। कष्टादायुःक्षये मृताः। पूर्वपापविपाकेन दुःखिनो हि भवे भवे ॥ २७९ ॥ अवंती नाम सद्देशो धर्मस्थानविराजितः। समीपे तस्य घोषोऽस्ति नीचजनसमावृतः ॥ २८० ॥ तत्र त्रयः समाजाताः कन्याः कुटंविनां गृहे। पितृजामातृपुत्राणां कुर्कुटवृंद-पालिनाम् ॥ २८१ ॥ तासां गर्भे गतं द्रव्यं मृता जन्मनि मातरः। कुटंविनां क्षयो जातो वर्द्धते सह पितृभिः ॥२८२॥ एका काणा परा खंजा श्यामवर्णा तृतीयका। मुन्युपसर्गजाघेन जातास्ता दुःख-

थी। मुनियोंको घोर उपसर्ग करनेके पापसे वे सदा दुःखी रहती थीं ।। २८३ ।। उनकी देह सूखी हुई थी, आखें पीलीं थीं, तालू ओठ जीभ सब नीली थीं, नाक टेढ़ी थी, पेट बहुत बड़ा था, दांत दूर दूर थे, पैर मोटे थे, शरीर भी मोटा था, स्तन विषम थे, हाथ छोटे थे, ओठ लंबे थे, बाल हल्दीके समान पीले थे, आवाज कौएके समान थी, प्रेम उनमें था ही नहीं, उनकी भोंहे मिली हुई थीं, वे सदा झूठ बोला करती थीं, बहुत ही क्रोध करती थीं, अनेक दोषोंसे अंधी (विचार-हीन) हो रही थीं, अनेक रोगोंसे पीडित थीं, उनके नगरमें जाते ही समस्त नगरमें दुर्गंध फैल जाती थी सो ठीक ही है-पापकर्मके उदयसे इस संसारमें क्या क्या नहीं होता है। वे तीनों हो उच्छिष्ट भोजनोंसे अपना पेट भरती थीं, चिथडोंसे शरीर ढकती थीं, और दुःखदारिद्रसे सदा पीडित रहती थीं ॥ २८४–२८८ ॥ वे तीनों ही बदसूरत कन्याएं अनुक्रमसे बढ़कर तरुण हुई और उन्हीं दिनों उनके पूर्व पापकर्मके

पूरिताः ॥ २८३ ॥ शुष्कदेहाश्च पिंगाक्ष्या नीलतालोष्टजिह्वकाः । वक्रनासो महातुदा विरलदशनास्तथा ॥ २८४ ॥ स्थूलपादाश्च दीर्घाग्यो विषमस्तनधारिकाः । ह्रस्वहस्ताश्च लंबोष्टचो हरिद्राभतनूरुहाः ॥२८५॥ काकरवा गतस्नेहाः संरूढाः सहति भ्रुवः । सत्यहीना महातीव्रा दोषांधा रोगपीडिताः ॥२८६॥ तासां चरणसंचारे नगरमुद्गसं भवेत् । यन्न पापोदयेऽश्रेयो जायते भुवि तच्च किम् ॥२८७॥ उच्छिष्टभक्तवृंदेन जठरं पूरयंति ता । खंडवस्त्रपिधानांग्यो दुःखदारिद्रपीडिताः ॥२८८॥ अनुक्रमेण तारुण्यं संप्राप्तास्ताः प्रकु-

उदयसे उस देशमें दुष्काल पड़ा ॥२८९॥ इसीलिये भूख प्याससे दुःखी हुईं, अत्यन्त दुर्बल और दुराचार करनेमें तत्पर ऐसी वे तीनों कन्याएं विदेशके लिये निकलीं ॥२९०॥ वे मार्गमें सदा परस्पर लडती हुई चलतीं थीं, साथमें न तो उनके पास कुछ खानेको था और न उन्हें लज्जा अभिमान था ॥ २९१ ॥ पापकर्म जब अपना फल देने लगता है तब सुख, सुंदरता, घर, धान्य, भोजन आदि सब नष्ट हो जाते हैं ॥२९२॥ ये तीनों कन्याएं अनेक नगरोंमें भ्रमण करती हुईं और लोगोंसे मांगती खाती हुईं अनुक्रमसे इस पुष्पपुर नगरमें आपहुंची है ॥२९३॥ इस वनमें मुनि और वहुतसे लोगोंको देखकर धन मांगनेके लिये यहां आई हैं ॥२९४॥ यद्यपि इनका शरीर मलिन है तथापि इन्होंने प्रसन्नचित्त हो मुनिके पास आकर नमस्कार किया है ॥२९५॥ हे राजन् !

त्सिताः । तदा हि दुर्भिक्ष जात पूर्वपापविपाकतः ॥ २८९ ॥ तदा तिस्रोपि संलेपुर्विदेशं क्षीणविग्रहाः । क्षुत्पिपासासमाक्रांता दुराचारेपु तत्पराः ॥२९०॥ कलहं पथि कुर्वंत्यस्तागच्छति निरंतरम् । पाथेयलवसहीना लज्जामानपरिच्युताः ॥ २९१ ॥ विपाकाभिमुखं पापं यदा जंतोः प्रजायते । तदा सुखं स्वरूपं च गेहं धान्यं न भोजनम् ॥ २९२ ॥ कन्याः तिस्रः परिभ्रम्य नगरपुरपत्तनम् । क्रमात्पुष्पपुरं प्रापुर्याचयंत्यो जन जनम् ॥ २९३ ॥ अथारण्ये समालोक्य मुनिमानवसंचयम् । इमाः समागताः राजन् वसुयाचनहेतवे ॥ २९४ ॥ मुनेरंतिकमागत्य नमस्कृत्य प्रगयणाः । बभूवुस्ता मलालिप्ता विकचाननमानसाः ॥२९५॥ अनाद्यंतेऽत्र संसारे जननमृत्युसंकुले । कस्मिन्

यह संसार अनादि अनंत है, इसमें यह जीव सदा जन्म मरण किया करता है। इसमें भ्रमण करते हुए जीव कर्मोंके उदयसे न जाने किस भवमें मिल जाते हैं ॥ २९६ ॥ हे राजन्! इस संसारमें पापी जीव चारो गतियोंमें अनेक प्रकारके दुःख भोगते रहते हैं और पुण्यकर्मके उदयसे स्वर्गमोक्षके सदा रहनेवाले सुख भोगते हैं ॥ २९७ ॥ जिसप्रकार बादलकी गर्जना सुनकर मोर प्रसन्न होते हैं उसीप्रकार मुनिराजके मुखसे अपने भवांतर सुनकर वे तीनों कन्याएं प्रसन्न हुईं ॥२९८ हे राजन्! यह श्रेष्ठ धर्म एक कल्पवृक्षके समान है। सम्यग्दर्शन ही इसकी मोटी जड़ है, भगवान जिनेन्द्रदेवके वचन ही इसकी मोटी पींड है, श्रेष्ठ दान ही इसकी शाखाएं हैं, अहिंसादिक व्रत ही पत्ते हैं, क्षमादिक गुण ही कोंपल वा नये पत्ते हैं, इन्द्र चक्रवर्ती आदिकी विभूति ही इसके पुष्प हैं, श्रद्धारूपी बादलोंके समूहसे ही यह सींचा जाता है और

भवातरे जीवा मिलंति कर्मयोगतः ॥२९६॥ चतुर्गतिभव दुःखं लभंते किल्बिषान्नराः। सौख्यं सुकृतपाकाद्धि नित्य स्वर्गापवर्गयोः ॥२९७॥ ताः स्वभवांतरं श्रुत्वा मुनिराजमुखात्तदा। जहर्षुः हृदये सार्द्धं केकिन्यो वा घनारवम् ॥२९८॥ सम्यक्त्वस्थूलमूलो जिनवरवचन-स्कंधबधःसुदान, शाखोऽहिंसादिपत्र' सुगुणकिसलयः शक्रचक्र्यादि-पुष्पः। रुच्यम्भोवृन्दसेको मुनिवरनिचयद्विजराजप्रसेव्यः, स श्रेयः कल्पशाखी प्रभवतु भवतां मुक्तये भूप! नित्यम् ॥२९९॥

इतिश्रीमडलाचार्यश्रीधर्मचंद्रविरचिते श्रीगौतमस्वामिचरित्ते

कुटंबिकन्याभवांतरवर्णनं नाम द्वितीयोऽधिकारः।

अनेक मुनियोंका समुदायरूपी पक्षीगण ही इसकी सेवा करते हैं। ऐसा यह धर्मरूपी कल्पवृक्ष तुझे सदा मोक्षसुख देनेवाला हो।

इसप्रकार मंडलाचार्य श्रीधर्मचंद्र विरचित श्रीगौतम-
स्वामीचरित्रमें कुटंम्बी कन्याओंके पूर्वभव वर्णन
करनेवाला यह दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।

अथ तीसरा अधिकार।

तदनन्तर संसारसे दुःखोंसे भयभीत हुई वे तीनों ही कन्याएं उन मुनिराजको आनंदके साथ नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति कर उनसे प्रार्थना करने लगीं॥ १॥ वे कहने लगीं कि हे प्रभो! हे मुनिराज! मुनिराजके उपसर्गसे हम मातापितासे रहित हुईं और भव भवमें हमने दुःख पाया॥२॥ हे मुनिराज! हे स्वामिन! इस संसाररूपी अपार समुद्रमें डूबते हुए समस्त दुःखी प्राणियोंको पार कर देनेके लिये आप जहाजके समान हैं॥३॥ हे संसारी जीवोंके परम मित्र! पहिले भवमें हमने जो महा पाप किया है अब उसके नाश करनेका उपाय बतलाइये॥ ४॥ हे मुनिराज! जिस व्रतरूपी औष-

---

अथ कुटंवनां कन्याः प्रोचुरिति मुनीश्वरम्। स्तुत्वा नत्वा च सानंदं संसृतिभयकंपिताः॥१॥ महायोगिन्! वयं जाता दुःखिन्यो हि भवे भवे। मुनींद्रस्योपसर्गेण मातृपित्रादिवर्जिताः॥ २॥ संसारापारपाथोधिमज्जता विश्वदेहिनाम्। दुःखिनां तारणायापि पोतायसे मुने! प्रभो!॥ ३॥ पूर्वभवांतरेऽस्माभिर्यदघं समुपार्जितम्। उपायं तस्य नाशाय कुरु परममित्र! भो॥४॥ पापविपानि नश्यंति येन

धिसे यह पापरूपी विष नष्ट होता है उसे आज शीघ्र ही हम लोगोंको बतलाइये ॥ ५ ॥ तदनंतर वे मुनिराज उन कन्याओंके शुभ वचन सुनकर और उन्हें निकट भव्य समझकर मीठी वाणीसे कहने लगे ॥६॥ कि हे पुत्रियो ! तुम लब्धिविधान व्रत करो, यह व्रत ही कर्मरूपी शत्रुओंको नाश करनेवाला है और संसाररूपी समुद्रमे पार कर देनेवाला है ॥ ७ ॥ इस लब्धिविधान व्रतके पालन करनेसे सब भवोंमें उत्पन्न हुए पाप क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं और मोक्षके अनुपम सुख प्राप्त होते हैं फिर भला इंद्र चक्रवर्ती आदिकी विभूतिकी तो बात ही क्या है ॥८॥ मुनिराजके ये वचन सुनकर वे कन्याएं कहने लगीं कि हे स्वामिन् ! यह व्रत किसप्रकार किया जाता है, और इसका सुनिश्चित फल पहले किस भव्यने प्राप्त किया है? ॥९॥ इसके उत्तरमें वे मुनिराज कहने लगे कि हे पुत्रियों ! इस व्रतकी विधि सुनो। उसके सुनने मात्रसे मनुष्योंको उत्तम सुख प्राप्त होता है ॥ १० ॥ मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले भव्य जीवोंको यह व्रत भादो और

व्रतौषधेन वै । अद्य तदद्भुतमस्माकं कथय भो मुनीश्वर ! ॥५॥ अथ महामुनीद्रोऽसौ जगाद मधुरां गिरम् । तासां शुभ वचः श्रुत्वा ज्ञात्वा चासन्नभव्यताम् ॥ ६ ॥ बालाः कुरुत भो पुत्र्यश्चारु लब्धिविधानकम् । कर्मारिनाशने दक्ष भवसमुद्रतारणम् ॥७॥ विश्वभवार्जितं पापं नश्यते येन तत्क्षणे । प्राप्यते मुक्तिसत्सौख्यं शक्रादीनां तु का कथा ॥ ८ ॥ इत्याकर्ण्य पुनः प्रोचुः स्वामिन् ! तत्क्रियते कथम् । अस्य फलं पुरा प्राप्तं केन भव्येन निश्चितम् ॥ ९ ॥ ततोऽब्रवीत्मु-

चैत इन दोनों महीनोंके शुक्लपक्षके अंतके दिनोंमें करना चाहिये ॥ ११ ॥ उस दिन सब शरीरको शुद्धकर धुले हुए धोती दुपट्टा पहनने चाहिये और मुनिराजके समीप जाकर तीन दिनके लिये शीलव्रत (ब्रह्मचर्य) धारण करना चाहिये ॥ १२ ॥ मन, वचन, कायकी शुद्धतापूर्वक प्रोषधपूर्वक तेलौ करना चाहिये क्योंकि यह प्रोषधपूर्वक उपवास ही मोक्षफल देनेवाला है और इसीसे समस्त कर्म नष्ट होने हैं ॥ १३ ॥ अथवा यदि शक्ति न हो तो फिर एकांतरसे इस व्रतको करना चाहिये (१२ का एकाशन १३ को उपवास, १४ को एकाशन १५ को उपवास, पडवाको एकाशन) क्योंकि जैन विद्वानोंने व्रत ही शीघ्र स्वर्गफल देनेवाला बतलाया है॥१४॥ यदि इतनी भी शक्ति न हो तो फिर अपनी शक्तिके अनुसार जितना किया जाय उतना ही करना चाहिये क्योंकि शक्तिके

निर्वाचं पुत्र्यः शृणुत तद्विधिम् । तस्याकर्णनमात्रेण सत्सुख जायते नृणाम् ॥ १० ॥ मासे भाद्रपदे चैत्रस्वेतपक्षे पुरा दिने । इद व्रतं प्रकर्तव्यं भव्यैर्मुक्तियियासुभिः ॥ ११ ॥ विश्वांगं निर्मलीकृत्य धार्यं धौतांवरं द्वयम् । संगृहीत्वा मुनेरंते शीलव्रतदिनत्रयम् ॥ १२ ॥ कर्तव्योऽष्टोपवासो हि मनोवाक्कायशुद्धितः । विश्वकर्मक्षयप्राप्त्यै मुक्तिफलप्रदायकः ॥ १३ ॥ एकांतरेण वा कार्यं व्रतं शक्तिपरिच्युतैः । स्वर्गफलप्रदं शीघ्रं प्रोक्तं जैनविदांवरैः ॥ १४ ॥ स्वशक्त्या क्रियते

१—सुदी १२के दिन एकाशन, १३—१४—१५को उपवास और पडवाको फिर एकाशन इसको अष्टोपवास वा आठवारका भोजन त्याग कर देना कहते हैं।

अनुसार किया हुआ व्रत निष्फल कभी नहीं होता। इन तीनों दिनोंतक जिनमंदिरमें ही शयन करना चाहिये ॥ १५ ॥ श्रीवर्द्धमानस्वामीका प्रतिबिंब स्थापन कर इक्षुरस, दूध, दही, घी और जलसे भरे हुए कुंभोंसे अभिषेक करना चाहिये ॥१६॥ तदनंतर पापोंको नाश करनेके लिये मन वचन कायको स्थिर कर जल, चंदन आदि आठों द्रव्योंसे भगवान् वर्द्धमान-स्वामीकी पूजा करनी चाहिये ॥१७॥ फिर कुबुद्धिको नाश करनेके लिये श्रीसर्वज्ञदेवके मुखारविंदसे उत्पन्न हुई श्री-सरस्वतीदेवीकी पूजा भक्तिपूर्वक करनी चाहिये ॥ १८ ॥ तदनंतर मुनिराजके चरणकमलोंकी सेवा करनी चाहिये क्योंकि गुरुपूजा पापरूपी वृक्षोंको नाश करनेके लिये कुठारके समान है और संसाररूपी समुद्रमें पड़े हुए जीवोंको पार कर देनेके लिये नावके समान है ॥१९॥ उन दिनों मनको निश्चलकर भक्तिपूर्वक तीनो समय सामायिक करना चाहिये क्योंकि सामायिक ही आते हुए कर्मोंको रोकनेमें समर्थ है

यत्तन्निष्फलं न हि जायते। यावद्दिनत्रयं शय्या कर्तव्या जिनमंदिरे ॥१५॥ श्रीवीरनाथबिंबस्य स्नपनं क्रियते मुदा। इक्षुसुवृत्तसदुग्धदधि-वारिभृतैर्घटैः ॥१६॥ ततः पूजा प्रकर्तव्या वीरस्य सलिलादिभिः। हृद्वाक्काय स्थिरीकृत्य दुष्कृतनाशहेतवे ॥१७॥ ततो जैनागमस्यार्चा क्रियते भक्तिपूर्वकम्। सर्वज्ञवक्त्रजातस्य कुमतिनाशहेतवे ॥ १८ ॥ गुरुक्रमाबुजं सेव्यं पापद्रुमकुठारकम्। भववार्द्धिपतज्जंतुसमुत्तारण-नौसमम् ॥१९॥ सामायिकं प्रकर्तव्यं त्रिसंध्यायां सुभक्तितः। हृदयं निश्चलीकृत्य कर्मरोधनतत्परम् ॥२०॥ अपराह्निनमंत्रेण प्रसंध्याष्टो-

॥२०॥ शुद्ध लवंगपुष्पोंके द्वारा एकसौ आठवार अपराजित मंत्रका जप करना चाहिये और श्री वर्द्धमानस्वामीकी सेवा करनी चाहिये ॥२१॥ जैन शास्त्रोंमें महावीर, महाधीर, सन्मति, वर्द्धमान और वीर ये पांच श्री वर्द्धमानस्वामीके नाम कहे गये हैं ॥ २२ ॥ भक्तिपूर्वक इन सब नामोंका उच्चारण कर और तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान महावीरस्वामीके लिये विद्वानोंको महा अर्घ देना चाहिये ॥२३॥ व्रत पालन करनेवाले भव्य जीवोंको उन दिनों जिन भव्य जीवोंने यह व्रत धारण किया था जिन्होंने इसका निरूपण किया था और जिन्होंने यह व्रत पालन कराया था उनकी कथाएं वांचनी चाहिये ॥२४॥ उन दिनों चित्तको स्थिर कर भगवान अरहंतदेवका ध्यान करना चाहिये क्योंकि भगवान अरहंतदेवका ध्यान करनेसे ही त्रेसठ शलाकाओंके पद प्राप्त होते हैं ॥२५॥ इन दिनों विद्वानोंको रात्रिमें पृथ्वीपर ही शयन करना चाहिये और सदा तीर्थंकर आदि महापुरुषोंकी स्तुति करते रहना चाहिये ॥२६॥ जिनधर्मकी प्रभावना करना

त्तरं शतम्। शुद्धलवंगपुष्पाणां प्रसेव्यो वर्द्धमानकः ॥२१॥ महावीरो महाधीरः सन्मतिर्वर्द्धमानकः। वीरश्च पंच नामानि कथितानि जिनागमे ॥२२॥ इमानि वै समुच्चार्य भूयिष्ठभक्तितो द्रुतम्। त्रिःसंप्रदक्षिणीकृत्य महार्घः क्रियते बुधैः ॥ २३ ॥ येनेदं सुव्रतं चक्रे प्रकथितं च कारितम्। सर्वदा तत्कथाख्यानं श्रोतव्यं व्रतधारिभिः ॥२४॥ एकाग्रेण सुचित्तेन ध्येयं श्रीजिननामकम्। त्रिषष्टिपुरुषादीनां पदं येनाप्यते द्रुतम् ॥२५॥ निशायां पृथिवीशय्या प्रकर्तव्या बुधोत्तमैः। तीर्थंकरादिमर्त्यानां गीतं वा गीयतेऽनिशम् ॥२६॥ भवार्णव

चंचल इंद्रियरूपी हिरणोंको बांधनेवाली है और संसाररूपी समुद्रसे पार कर देनेके लिये जहाजके समान है इसलिये भव्य जीवोंको इन व्रतोंके दिनोंमें जिनधर्मकी प्रभावना अवश्य करनी चाहिये ॥२७॥ भव्य जीवोंको इस विधिके अनुसार यह लब्धिविधान व्रत तीन दिनतक बराबर करते रहना चाहिये क्योंकि यह व्रत समस्त कर्मोंका नाश करनेवाला है और इच्छानुसार फल देनेवाला है ॥२८॥ चतुर पुरुषोंको इस प्रकार यह व्रत तीन वर्षतक बराबर करते रहना चाहिये और तीन वर्ष पूर्ण होजानेपर इसकी उद्यापन क्रिया करनी चाहिये ॥२९॥ उस उद्यापन क्रियाके लिये एक जिनालय बनवाना चाहिये जो अनेक प्रकारकी शोभासे सुशोभित हो, पापरूपी शत्रुओंके नाश करनेमें चतुर हो और पुण्यराशिका कारण हो ॥३०॥ उस जिनालयमें निर्मल हृदयसे श्रीवर्द्धमानस्वामीकी मनोहर प्रतिमा विराजमान करनी चाहिये जो आपत्तिरूपी लताओंको नाश करनेवाली हो ॥३१॥ तदनंतर बड़ी भक्तिके साथ विधिपूर्वक, शुद्ध मन वचन कायसे मनुष्योंको आनंद

महानौका जिनधर्मप्रभावना। भव्यलोकैः सदा कार्या चलाक्षमृगबंधिनी ॥२७॥ विधिनानेन वै कार्यमिदं भव्यैर्दिनत्रयम्। निःशेषकर्मसंहर्तृ-वांच्छितार्थप्रदायकम् ॥२८॥ वर्षत्रितयपर्यंत व्रतं कार्यं विचक्षणैः। ततः पूर्णे समाजाते कर्तव्योद्यापनक्रिया ॥ २९ ॥ जिनचैत्यालयं कार्यमनेकशोभयान्वितम्। पापारिध्वसने दक्षं पुण्यराशिनिबंधनम् ॥३०॥ ततः श्रीवर्द्धमानस्य प्रतिमा सुमनोहरा। विधेयामलचित्तेन व्यापल्लताप्रणाशिका ॥३१॥ विधेय शांतिकं रम्य जनानंदप्रदायकम्।

देनेवाला मनोहर शांति विधान करना चाहिये ॥३२॥ उसके लिये चावलोंके एकसौ आठ कमल बनाने चाहिये (चौकीपर वस्त्र बिछाकर उसपर चांवलोंके कमल बनाने चाहिये) और उनके ऊपर सुंदर दीप और फल रखने चाहिये ॥३३ उसी श्रीवर्द्धमानस्वामीके जिनालयमें सुगंधित जलसे भरे हुए दैदीप्यमान सुवर्णके पांच कलश देने चाहिये ॥३४॥ क्षुधा-रोगको दूर करनेके लिये सोनेके पात्रोंमें रक्खे हुए पांच प्रकारके नैवेद्यसे उन कमलोंकी पूजा करनी चाहिये ॥३५॥ जिसकी सुगंधिसे बहुतसे भ्रमरोंके समूह इकट्ठे होगये हैं ऐसे केसर चंदन आदि सुगंधित द्रव्य भगवान वर्द्धमानस्वामीके उस जिनालयमें समर्पण करने चाहिये ॥३६॥ भगवान अरहंतदेवकी प्रतिमा विराजमान करनेके लिये सुवर्णका बना हुआ मनोहर सिंहा-सन देना चाहिये जो कि भगवान अरहंत देवके चरणकमलोंके नखोंकी कांतिसे दैदीप्यमान होता रहे ॥३७॥ एक भामंडल देना चाहिये जो अपनी कांतिसे सूर्यमंडलको भी जीतता

मनोवाक्कायसंशुद्धैर्भक्तितो विधिना सह ॥३२॥ तंदुलाना सुपद्मानि शतान्यष्टोत्तराणि वै। तेषामुपरि वक्तव्य फलदीपप्रभांतिकम् ॥३३॥ कलशकनकसंभूता दीयंते पंच कुंभकाः। मंदिरे वर्द्धमानस्य सुगंधि-जलसंभृताः ॥३४॥ पंचविधैः सुनैवेद्यैः सुवर्णभाजनस्थितैः। तानि पद्मानि पूज्यानि क्षुद्रोगविनिवृत्तये ॥३५॥ निजगुणैरभिसंहूतमधुकर-समुच्चयम्। प्रदेयं भगवद्गेहे काश्मीरचंदनादिकम् ॥ ३६ ॥ सर्वज्ञ-स्नानपीठानि सुवर्णजानि वै ध्रुवम्। जिनांह्रिनखद्योतिस्तोममनोह-राणि च ॥३७॥ भामंडलं निजकांत्या जितमार्तंडमंडलम्। प्रभूत-

हो, जो बहुत शुद्ध सोनेका बना हुआ हो और उसमें बहुमूल्य रत्न जड़े हुए हों ॥ ३८ ॥ भगवान अरहंतदेवके कहे हुए शुभ शास्त्र लिखाकर समर्पण करने चाहिये जिन्हें पढ़कर लोग कुबुद्धिसे अंधे और बहरे न हो जांय ॥३९॥ जो मुनिराज सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्रसे पवित्र हैं, जिन्हें शत्रु मित्र सब समान हैं ऐसे उत्तम पात्रोंको आहारदान देना चाहिये ॥४०॥ जो देशव्रतको धारण करनेवाले हैं वे मध्यमपात्र कहलाते हैं और जो असंयत सम्यग्दृष्टी हैं वे जघन्यपात्र कहलाते हैं। इनको भोजन कराना चाहिये और पाप दूर करनेके लिये इन्हें दान देना चाहिये जिससे कि भोगभूमिकी संपत्ति सुलभ हो जाय अर्थात शीघ्र ही प्राप्त हो जाय ॥४१-४२॥ जिसप्रकार ईखके खेतमें दिया हुआ पानी मीठा होजाता है उसी प्रकार पात्रेके लिये दिया हुआ अन्नपानी भी अमृतसे भी बढ़कर हो जाता है ॥४३॥ जो मिथ्यादृष्टी हैं, मिथ्याज्ञान और मिथ्या चारित्रको धारण

मौल्यसद्रत्नसुतपनीयमंडितम् ॥३८॥ लेखनीयं शुभं शास्त्रं जिननाथमुखोद्भवम् । कुमतिमूकतांधत्वं येन संजायते न हि ॥ ३९ ॥ सम्यक्त्वदर्शनज्ञानचारित्रेण पवित्रिताः । ये तदुत्कृष्टपात्रा वै ज्ञेयाः समारिमित्रकाः ॥ ४० ॥ देशव्रतधरा ये ते मध्यमपात्रकाः मताः । असंयतः सम्यग्दृष्टिः भवेज्जघन्यपात्रकः ॥४१॥ भोज्यं त्रिविधपात्रेभ्यो दीयते पापहानये । भोगभूमिसु संपत्तिः सुलभा येन जायते ॥ ४२ ॥ इक्षुक्षेत्रे पयो क्षिप्तं यथा मिष्ट प्रजायते । अन्नपानं तथा दत्तं पात्रेऽमृततरं भवेत् ॥४३॥ वर्जिताः स्थूलहिंसादेर्मिथ्यादृग्ज्ञान-

करनेवाले हैं परन्तु जिन्होंने स्थूल हिंसाका त्याग करदिया है उन्हें कुपात्र कहते हैं तथा जिन्होंने न तो कोई चारित्र धारण किया है और न कोई व्रत धारण किया है ऐसे हिंसक मिथ्यादृष्टी जीव अपात्र कहलाते हैं॥४४॥ जिसप्रकार अयोग्य क्षेत्रमें बोये हुए बीजसे थोड़ा और बुरा फल मिलता है उसीप्रकार कुपात्रको दिये हुए दानसे भी कुभोगभूमिकी प्राप्ति होती है ॥४५॥ जिस प्रकार आक और नीमके पेड़में डाला हुआ पानी कड़वा हो जाता है तथा सांपके मुहमें पहुंचा हुआ दूध विष हो जाता है उसी प्रकार अपात्रको दिया हुआ दान भी व्यर्थ ही जाता है अथवा विपरीत फलको ही फलता है ॥ ४६ ॥ अर्जिकाओंके लिये भक्तिपूर्वक शुद्ध सिद्धांत पुस्तकें देनी चाहिये, उनके मनोहर वेष्ठन देने चाहिये, वस्त्र देने चाहिये और पीछी कमंडलु देना चाहिये ॥४७॥ श्रावक श्राविकाओंको बहुतसे आभरण, बहुमूल्य वस्त्र और बहुतसे नारियल देने चाहिये ॥ ४८ ॥ जो स्त्री पुरुष दुर्बल हैं, हीन हैं, दीन हैं, वा किसी दुःखसे दुखी हैं उन्हें दयापूर्वक भोजन

वृत्तिकाः। कुपात्रमित्यपात्रं तु हिंसका अनिवृत्तिकाः ॥४४॥ असत्क्षेत्रे यथा बीजं क्षिप्तं अल्पफलं भवेत्। कुपात्रे च यथा दत्तं दानं कुभोगभूमिभाक्॥४५॥ अर्कनिंबद्रुमे क्षिप्तं पयः कटुकतां व्रजेत्। दुग्धं विषं भुजंगास्येऽपात्रे दानं तथा मतम् ॥४६॥ भक्त्या देयार्यिकाभ्योपि शुद्धसिद्धांतपुस्तिका। आच्छादनानि कांतानि वस्त्रं पिच्छीकमंडलुः॥४७॥ श्रावकश्राविकाभ्योपि प्रभूताभरणानि वै। बहुमूल्यानि वस्त्राणि नालिकेराणि भूरिशः ॥ ४८ ॥ दुर्बला हीनदीनाश्च ये हि दुःखेन

देना चाहिये ॥ ४९ ॥ छहों प्रकारके जीवोंको अभयदान देना चाहिये जिससे कि सिंह व्याघ्र आदि किसीका भी भय न रहे ॥५०॥ जो कोढी हैं, अथवा किसी पेटके रोगसे दुःखी हैं अथवा स्वांस, वात, पित्त आदिके रोगोंसे दुःखी हैं उनके लिये विद्वानोंको यथायोग्य शुद्ध औषधि देनी चाहिये ॥ ५१ ॥ जिनके पास उद्यापनके लिये इतनी सामग्री न हो उन्हें केवल भक्ति ही करनी चाहिये और उस व्रतमें किसी प्रकारकी हीनाधिकता नहीं समझनी चाहिये क्योंकि पुण्य सम्पादन करनेके जीवोंके भाव ही कारण होते हैं इसलिये अपने भाव सदा शुद्ध रखने चाहिये ॥५२॥ जिन्हें उद्यापन करनेकी कुछ भी शक्ति न हो उन्हें उतना ही फल प्राप्त करनेके लिये दूने दिनतक अर्थात् छह वर्ष तक यह व्रत करना चाहिये ॥ ५३ ॥ पहले यह व्रत श्रीवृषभदेवस्वामीके पुत्र अनंतवीरने किया था उसकी कथा आदिनाथपुराणमें प्रसिद्ध हैं ॥५४॥ इसप्रकार मुनिराजके वचन सुनकर राजाने अनेक

पीडिताः । नरा नार्योऽथवा तेभ्यो दयार्थं दीयतेऽशनम् ॥ ४९ ॥ षड्जीवकायवर्गेभ्योऽभयं दानं प्रदीयते । येन व्याघ्रमृगेंद्रादेर्भयं न जायते क्वचित् ॥ ५० ॥ कुष्टोदरव्यथाश्वासवातपित्तादिपीडिताः । यथायोग्यं शुभं तेभ्यो विधेयं भेषजं बुधैः ॥ ५१ ॥ यस्यैतानि न पूर्यंते तेन भक्तिर्विधीयते । चिंत्यं हीनाधिकं नैव पुण्य भावो हि कारणम् ॥५२॥ यस्य प्रोद्यापने शक्तिर्न किंचिच्च प्रजायते । तेनेदं द्विगुणं कार्यं तत्प्रमाणफलाप्तये ॥५३॥ वृषभतनयानंतवीरेणेदं कृतं पुरा । आदिनाथपुराणे हि प्रसिद्धं तत्कथानकम् ॥५४॥ मुनिवचः

श्रावक श्राविकाओंके साथ तथा उन तीनों कन्याओंके साथ सुख देनेवाला लब्धिविधान नामका वह व्रत धारण किया ॥५५॥ सो ठीक ही है क्योंकि जो निकट भव्य हैं, मोक्ष-प्राप्ति जिनके समीप हैं वे देर नहीं करते हैं। संसारी जीवोंकी जैसी होनहार होती है वैसी ही उनकी बुद्धि हो जाती है ॥५६॥ मुनिराजके उपदेशके अनुसार श्रावकोंकी सहायतासे उन तीनों कन्याओंने उद्यापन क्रियाके साथ साथ वह लब्धि-विधान व्रत किया ॥५७॥ उन तीनों कन्याओंने श्रावकोंके व्रत धारण किये, उत्तमक्षमा आदि दशधर्म धारण किये और शीलव्रत धारण किया ॥५८॥ कुछ काल व्यतीत हो जानेपर उन तीनों कन्याओंने जिन मंदिरमें जाकर मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक भगवान् जिनेंद्रदेवकी बड़ी पूजाकी ॥५९॥ तदनंतर आयु पूर्ण होनेपर उन तीनों कन्याओंने समाधि-मरण धारण किया, भगवान अरहंतदेवके बीजाक्षरोंका स्मरण किया और मुनिराजके चरणकमलोंको नमस्कार किया

सनाग्रार्थं नृपेन नागरैः सह। कन्याभिः श्राविकाभिश्च सुखदं जगृहे व्रतम् ॥५५॥ येषां सिद्धिः समासन्ना ते विलंबं न कुर्वते। यादृशी भाविता लोके बुद्धिर्भवेद्धि तादृशी ॥५६॥ तिस्रोपि तद्व्रतं चक्रुरु-द्यापनक्रियायुतम्। मुनिराजोपदेशेन श्रावकाणां सहायतः ॥५७॥ श्रावकव्रतसंयुक्ता बभूवुस्ताश्च कन्यकाः। क्षमादिव्रतसंकीर्णाः शीलां-गपरिभूषिताः ॥५८॥ कियत्काले गते कन्या आसाद्य जिनमंदिरम्। सपर्यां महता चक्रुर्मनोवाक्कायशुद्धितः ॥५९॥ ततः आयुक्षये कन्याः कृत्वा समाधिपंचताम्। अर्हद्बीजाक्षरं स्मृत्वा गुरुपादं प्रणम्य च ॥६०॥

॥६०॥ मरनेके बाद उनके जीव पांचवें स्वर्गमें जाकर स्त्रीलिंग-छेदकर प्रभावशाली देव हुए तथा उत्पन्न होते ही आनंद और यौवनतासे सुशोभित होगये ॥६१॥ उन देवोंने उत्पन्न होते ही अपने अवधिज्ञानसे समझ लिया कि "हम लब्धि-विधान व्रत पालन करनेसे ही यहां स्वर्गमें आकर उत्पन्न हुए हैं ॥६२॥ वे देव देवांगनाओंके साथ अनेक प्रकारके सुख भोगते थे, उनका शरीर पांच हाथ ऊंचा था, दश सागरकी उनकी आयु थी, विक्रिया ऋद्धिसे वे सुशोभित थे, उनके मध्यम पद्मले-श्या थी और तीसरे नरकतक अवधिज्ञान था। जिस प्रकार भ्रमर कमलोंपर लिपटा रहता है उसी प्रकार श्रीसर्वज्ञदेवके चरणकमलोंकी वे सदा सेवा किया करते थे और अनेक देव देवी उनके चरणकमलोंकी सेवा किया करते थे ॥६३–६५॥

भगवान् महावीरस्वामीके समवशरणमें कहा जारहा है कि हे राजा श्रेणिक ! इधर राजा महीचंद्रने संसारकी अनि-त्यता समझकर श्री अंगभूषण मुनिराजके समीप जिनदीक्षा

पंचमे दिवि सजाता महादेवाः स्फुरत्प्रभाः । संछित्वा रमणीलिंगं सानंदयौवनान्विताः ॥६१॥ चिंतितं विबुधैरेवमवधिज्ञानलोचनैः । लब्धिविधानमाहात्म्याद्वयमत्र समागताः ॥६२॥ भुंजतेस्म सुरास्तत्र सुखं स्त्रीरूपसंभवम् । पंचहस्तोच्चसत्कायाः सदशसागरायुषः ॥६३॥ विक्रियार्द्धिसमापन्नाः मध्यमपद्मलेश्यकाः । तृतीयनरकस्यांतावधिज्ञान-समाकुलाः ॥६४॥ श्रीसर्वज्ञपदद्वंद्वसेवनैकमधुव्रताः । अनेकदेवदेवीभिः सेवितपदपंकजाः ॥६५॥ अथ जैनेश्वरी दीक्षा महीचंद्रो नृपो दधौ । अंगभूषणसांनिध्ये ज्ञातसंसारसंस्थितिः ॥६६॥ महातपः करोतिस्म

धारण करली ॥ ६६ ॥ वे श्रेष्ठ महीचंद्र मुनिराज इंद्रियोंका निग्रह कर महा तपश्चरण करने लगे, समस्त परीषहोंको जीतने लगे और उन्होंने मूलगुण, उत्तरगुण सब धारण कर लिये ॥ ६७ ॥

हे राजा श्रेणिक ! गौतमस्वामी कहां उत्पन्न हुए, किस प्रकार उन्होंने लब्धि प्राप्त की, किस प्रकार वे गणधर हुए और किस प्रकार उन्होंने मोक्षफल पाया यह सब तू अब सुन ॥ ६८ ॥ इसी जंबूद्वीपमें मनुष्योंसे भरा हुआ प्रसिद्ध भरतक्षेत्र है। उसमें धर्मात्मा लोगोंसे सुशोभित एक मगध नामका देश है ॥६९॥ इसी मगध देशमें एक ब्राह्मण नामका नगर है जोकि वेदध्वनिसे सदा भरपूर रहता है और उसमें बड़े बड़े विद्वान् ब्राह्मण निवास करते हैं ॥७०॥ उस नगरमें बहुतसा धन था, बाजारोंकी पंक्तियां बहुत अच्छी थीं, चैत्य चैत्यालयोंसे सुशोभित था और सब प्रकारके पदार्थोंसे भरा हुआ था ॥ ७१ ॥ कूआ, बावड़ी, तलाव आदि सब तरहके जलाशय थे, अनेक प्रकारके वृक्ष थे, उसमें सब प्रकारके धान्य

स कृतेंद्रियनिग्रहः। परीषहजयः श्रेष्ठो मूलोत्तरगुणान्वितः ॥६७॥ अथ शृणु महाराज ! तेषामुत्पत्तिकारणम्। पुनर्मुक्तिफलाकीर्णा लब्धि गणधरादिकाम् ॥६८॥ जंबूद्वीपे जनाकीर्णे शस्ये च भारताभिधे। मगधो विश्रुतो देशो धर्मिष्ठजनराजितः ॥६९॥ ब्राह्मणं नगरं तत्र सवेदं भाति सततम्। भूरिविद्याप्रयुक्तानां ब्राह्मणानां निवासकम् ॥७०॥ प्रभूतवसुसंपूर्णं हट्टश्रेणिविराजितम्। चैत्यमंदिरसकीर्णं समस्तवस्तुसंभृतम् ॥७१॥ वापीतडागकूपाढ्यं भूरिपादपसंयुतम्।

उत्पन्न होते थे और सब प्रकारके आश्रम थे ॥ ७२ ॥ मका-नोंकी पंक्तियां बड़ी ही ऊंची और बड़ी ही अच्छी थीं वे कुंदके फूल और चंद्रमाके समान श्वेत थी और बड़ी ही मनो-हर लगती थीं ॥७३॥ उनमें रहनेवाले मनुष्य भी धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थोंका सेवन करते थे, बड़े दानी, सदाचारी, रूपवान और सौभाग्यशाली थे ॥ ७४ ॥ वहांके तरुण पुरुष अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीडा करते थे, वे स्त्रियां भी बड़ी सुंदरी थीं, अपने रूपसे रंभाको भी जीतती थीं और हाव भाव आदिसे सुशोभित थी ॥ ७५ ॥ उसी नगरमें एक शांडिल्य नामका ब्राह्मण रहता था जो बहुत ही गुणी था, अनेक प्रकारकी विद्याओंसे सुशोभित था और अपने कुला-चारके पालन करनेमें तत्पर था ॥७६॥ वह ब्राह्मण धनी था, ब्राह्मणोंमें मुख्य था, प्रशंसनीय था, सुखी था, दानी था, रूपवान था और तेजस्वी था ॥७७॥ उस ब्राह्मणके स्थंडिला

समस्तशस्यनिष्पत्तिसंकुलमाश्रमान्वितम् ॥७२॥ मंदिरपंक्तयो यत्र राजंते प्रोन्नता वराः । कुंदनिशापतिस्वेताः सुंदराकृतयो ध्रुवम् ॥७३॥ भासंते मानवा यत्र त्रिवर्गसाधने पराः । दानिनः शोभना-चारा रूपसौभाग्यसंयुताः ॥७४॥ तरुणा यत्र दीव्यंति स्वस्त्रीभिः सह शोभनाः । स्वरूपजितरम्भाभिर्हावभावादियुक्तिभि ॥ ७५ ॥ शांडिल्यो नाम तत्राभूद्ब्राह्मणः सुगुणाग्रणी । सुविद्यास्तोमसत्पात्रः स्वकुलाचारतत्परः ॥ ७६ ॥ लक्ष्मीनिवासको योऽभूद्वाडवमुख्यतां गतः । श्लाघ्यो भोक्ता सदा त्यागी स्वरूपी तेजसा युतः ॥७७॥ स्थंडिला तत्प्रिया जाता रूपसौभाग्यधारिणी । पतिव्रताऽचलारूढा

नामकी ब्राह्मणी थी जो रूपवती, सौभाग्यवती, पतिव्रता और स्थिर चित्तवाली थी तथा रंभा और रतिदेवीके समान सुंदर थी ॥७८॥ वह ब्राह्मणी पवित्र थी, सदा संतुष्ट रहती थी, प्रशंसनीय थी, याचकोंको दान देनेवाली थी, मधुरभाषिणी थी, मनोहर थी, बुद्धिमती थी और अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई थी ॥७९॥ जिसप्रकार चंद्रमाके रोहिणी है उसी प्रकार उस ब्राह्मणके भी केसरी नामकी दूसरी ब्राह्मणी थी, वह भी स्त्रियोंमें रहनेवाले सब गुणोंसे सुशोभित थी और पतिके हृदयको प्रसन्न करनेवाली थी ॥८०॥ किसी एक दिन वह स्थंडिला ब्राह्मणी कोमल शय्यापर सो रही थी कि उसने रात्रिके अंत समयमें भाग्यशाली पुत्र उत्पन्न करनेवाले शुभ स्वप्न देखे ॥८१॥ उसी दिन सुख संपत्तिको प्रगट करनेवाला मनोहर सबसे बड़ा देव स्वर्गसे चयकर स्थंडिलाके शुभ उदरमें आया ॥८२॥॥ उस गर्भावस्थाके समय वह स्थंडिला ब्राह्मणी ऐसी सुशोभित होनेलगी थी जैसे रत्नोंसे भरी हुई

रंभा वा रतिदेविका ॥७८॥ पूता तुष्टा सदा श्लाघ्या याचकौचित्यदायिका। मधुरवचना कांता सुमतिः सुकुलोद्भवा ॥७९॥ द्वितीया केशरी चाभूद्रोहिणीव विधोः प्रिया। योषिद्गुणसमाकीर्णा प्रियचित्तानुरंजिनी ॥ ८० ॥ अथ निशांत्यमे यामे सुप्ता कोमलतल्पके। सा वधूः सुंदरान् स्वप्नान् ददर्श शुभपुत्रदान् ॥ ८१ ॥ तदा देवालयाच्च्युत्वा स्थंडिलाजठरे शुभे। अस्थाद्वृद्धसुरः कांतसुखसंपत्तिकारकः ॥ ८२ ॥ शुक्तिका मुक्तिमध्येव रत्नगर्भापि वा क्षितिः। तदा सा शुशुभे बाला तुंदांतो जंतुधारिणी ॥ ८३ ॥ अपांडुरं मुखं

पृथ्वी शोभायमान होती है अथवा मोतीसे भरी हुई सीप शोभायमान होती है ॥ ८३ ॥ हंसके समान गमन करनेवाली उस ब्राह्मणीका मुख कुछ सफेद होगया था और ऐसा जान पड़ता था मानो पुत्ररूपी चंद्रमाका जन्म समस्त पापोंका नाश करनेवाला होगा इसीबातको सूचित कर रहा हो ॥८४॥ जिसका शरीर सब कृश होगया है ऐसी उस स्थंडिला ब्राह्मणीके पुत्रकी उत्पत्तिको सूचित करनेवाले दोनों मनोहर स्तनोंके मुख श्याम पड़ गये थे ॥८५॥ उस समय वह स्थंडिला भगवान् जिनद्रदेवकी पूजा करनेमें अपना चित्त लगाती थी और इंद्राणीके समान जैनधर्ममें तत्पर हो गई थी ॥८६॥ उस समय वह स्थंडिला शुद्ध चारित्रको धारण करनेवाले सम्यग्ज्ञानी उत्तम मुनियोंको अनेक पापोंका नाश करनेवाला शुभ आहार देती थी ॥८७॥ सूर्योदयके समय जबकि बुध, शुक्र, बृहस्पति शुभरूपसे केंद्र स्थानमें थे और भी सब ग्रह उच्च स्थानमें थे, उस समय जिसप्रकार श्री वृषभदेवकी रानी यशस्वतीने श्रीवृषभसेनको उत्पन्न किया था, उसी प्रकार

धत्ते सा हंसगमना वरा। वदतीव सुपुत्रेंदुजन्मपापतमोऽपहम् ॥८४॥ हेतुके तनयोत्पत्तेर्मनोहरे स्तनद्वये। कामिनी क्षीणसर्वांगा दधौ श्यामे सुचूचुके ॥ ८५ ॥ श्रीजिनेंद्रपदांभोजसपर्यायां सुमानसा। शचीव सा तदा जाता जैनधर्मपरायणा ॥८६॥ ज्ञानधनाय कांताय शुद्धचारित्रधारिणे। मुनींद्राय शुभाहार ददौ पापविनाशनम् ॥८७॥ मार्तंडोदयवेलायामुच्चग्रहे गते सति। बुधशुक्रसुराचार्यकेंद्रस्थाने शुभे स्थिते ॥८८॥ यशस्वती यथा पूर्वं वृषभसेनसंज्ञकम्। असूत

उस स्थंडिला ब्राह्मणीने समस्त मनोहर अंगोंको धारण करनेवाले पुत्रको उत्पन्न किया ॥८९॥ उस समय सब दिशाएं निर्मल होगई थीं, वायु सुगंधित बहने लगी थी और आकाशमें जय जयके शुभ शब्द हो रहे थे ॥९०॥ उससमय समस्त स्त्री पुरुषोंके हृदयमें आनंद उत्पन्न करनेवाले चारों प्रकारके मनोहर बाजे बज रहे थे ॥९१॥ जिसप्रकार जयंतसे इंद्र इंद्राणी प्रसन्न होते हैं, अथवा जिस प्रकार स्वामिकार्तिकेयसे महादेव पार्वती प्रसन्न होते हैं उसीप्रकार वे ब्राह्मण ब्राह्मणी उस पुत्रसे प्रसन्न हुए थे ॥९२॥ उस समय उस शांडिल्य ब्राह्मणने मागनेवालोंको मणि, सोना, चांदी, वस्त्र, आभरण आदि इच्छानुसार दान दिया था ॥९३॥ उससमय बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण तथा तिलकसे शोभायमान होनेवाली स्त्रियां बड़ी प्रसन्नताके साथ शुभ गीत गा रही थीं ॥९४॥ जिसप्रकार निर्धन मनुष्य खजानेको पाकर प्रसन्न होता है

तनयं रामा निखिलांगमनोहरम् ॥ ८९ ॥ तदा दिशोऽमला जाता; ववुः सगंधवायवः। दिवि वाणी शुभा चाभूज्जयजयारवान्विता ॥९०॥ तदा चतुर्विधं वाद्यं ध्वनतिस्म शुभावरम् । विश्वनरादिचित्तेषु प्रमोदभरदायकम् ॥९१॥ जयंतेन शचीशक्रौ स्कंदेनोमामृडौ यथा । तथा तौ दंपती तेन तनयेन ननंदतुः ॥ ९२ ॥ शांडिल्योप्यर्थिने वित्तं ददौ मानसवाञ्छितम् । मणिसुवर्णरूप्यादिवसनाभरणादिकम् ॥९३॥ कामिन्यः शुभगीतानि गीयतेस्म मुदा युताः । प्रभूतमौल्यसद्वस्त्रभूषणतिलकान्विताः ॥९४॥ पिता पुत्रमुखं वीक्ष्य स्वस्यांगे न ममौ मुदा । निस्वो निधानमाप्येव वार्धिः पूर्णविधुं यथा ॥९५॥

अथवा पूर्ण चंद्रमाको देखकर समुद्र उमड़ता है उसीप्रकार पिता अपने पुत्रका मुख देखकर प्रसन्नतासे अपने शरीरमें भी नहीं समा रहा था ॥९५॥ उसी समय किसी निमित्त-ज्ञानीने ज्योतिषको देखकर कहा था, कि यह पुत्र श्रीगौतमस्वामीके नामसे प्रसिद्ध होगा और समस्त विद्याओंका स्वामी होगा ॥ ९६ ॥ वह ब्राह्मणका पुत्र गौतमस्वामी अपने पहिले पुण्यकर्मके उदयसे लोकोंको आनंद देनेवाला था, अपने रूपसे कामदेवको भी जीतता था और सूर्यके समान तेजस्वी था ॥ ९७ ॥ दूसरा देव भी उस स्वर्गसे चयकर उसी स्थंडिलाके उदरसे गार्ग्य नामका पुत्र हुआ। वह गार्ग्य भी सब कलाओंमें चतुर था ॥९८॥ इसी प्रकार तीसरे देवका जीव भी स्वर्गसे चयकर केसरी नामकी ब्राह्मणीके उदरसे अत्यन्त गुणवान् भार्गव नामका पुत्र हुआ ॥ ९९ ॥ जिस प्रकार कुंतीके पुत्र पांडवोंमें परस्पर प्रेम था उसी प्रकार इन तीनों भाइयोंमें भी इकट्ठे किये हुए पुण्य कर्मके उदयसे परस्पर बड़ा ही अच्छा प्रेम था

सुज्योतिष प्रविचार्य दैवज्ञेनेति भाषितम्। श्रीगौतमाभिधः सर्व-विद्यास्वामी भविष्यति ॥९६॥ आनददायको यो भूल्लोकानां पूर्व-पुण्यतः। रूपेण जितकंदर्पो विभाकरप्रतापकः ॥ ९७ ॥ द्वितीयो विबुधश्च्युत्वा जातस्तदुरात्ततः। गार्ग्यनामात्मभू देहो विश्वकला-विचक्षणः ॥९८॥ तृतीयो निर्जरो नाकात्समभेत्य सुतो वरः। केशरी-जठरे जातो भार्गवः सुगुणाकरः ॥९९॥ अन्योऽन्येन महाप्रीतिस्तेषां जाता मनोहरा। यथा कुन्तीसुतानां वै सामुदायिकपुण्यतः ॥१००॥

॥१००॥ वे तीनों भाई द्वितीयाके चंद्रमाके समान दिन दिन बढ़ते थे और जैसे जैसे वे बढ़ते जाते थे वैसे ही वैसे उनकी आयु, कांति, गुण, बुद्धि और पराक्रम भी बढ़ता जाता था ॥१०१॥ उन तीनों भाइयोंने व्याकरण, छंद, पुराण, आगम, सामुद्रिक (हाथ देखकर भविष्य बतलाना) और ब्राह्मणोंकी क्रियाएं सब पढ़ डालीं थीं॥१०२॥ उन तीनों भाइयोंमेंसे सबसे बड़ा गौतम नामका पुत्र ज्योतिःशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, अलंकार-शास्त्र और न्यायशास्त्र आदि कितने ही शास्त्रोंमें अधिक प्रशंसनीय था ॥ १०३ ॥ जिस प्रकार देवोंका गुरु बृहस्पति है उसी प्रकार वह गौतम ब्राह्मण भी किसी शुभ ब्रह्मशालामें पांचसौ शिष्योंका उपाध्याय था ॥१०४॥ "चौदह महाविद्याओंका पारगामी मैं ही हूं, मेरे सिवाय और कोई विद्वान् नहीं है" इस प्रकारके अहंकारमें वह गौतम ब्राह्मण सदा चूर रहता था ॥ १०५ ॥

हे राजा श्रेणिक ! जो मनुष्य तीर्थंकर परमदेवकी

द्वितीयाचंद्रवच्चैत्यं ववृधुस्ते दिने दिने । यथा तथा वयःकांति-गुणबुद्धिपराक्रमाः ॥ १०१ ॥ व्याकरणं सुच्छंदांसि पुराणं आगमं तथा । पुत्रास्ते सततं पेठुः सामुद्रिकं द्विजक्रियाम् ॥१०२॥ ज्योति-वैद्यकशास्त्राद्यलंकारप्रमुखेन वै । तर्कभाषाप्रमाणेन गौतमः श्लाघ्यतां गतः ॥१०३॥ शुभायां ब्रह्मशालायामुपाध्यायोऽभवद्द्विजः । पंच-शतसुशिष्याणां निर्जराणां गुरुर्यथा ॥१०४॥ चतुर्दशमहाविद्यापार-गोऽहं न चापरः । इत्यहंकारमापन्नो गौतमोऽभूद्द्विजोत्तमः ॥१०५॥ परोक्षे तीर्थराजं तु वदति यो निरंतरम् । भूरिभक्तिविशेषेण त्रिज-

परोक्षमें भी वंदना करता है वह तीनों लोकोंके द्वारा बड़ी भक्तिके साथ वंदनीय होजाता है ॥१०६॥ जो मनुष्य श्री तीर्थंकर परमदेवकी प्रत्यक्षमें स्तुति करता है वह तीनों लोकोंके इन्द्रोंके द्वारा अवश्य ही पूज्य होजाता है ॥१०७॥ हे राजा श्रेणिक! इस व्रतरूपी वृक्षकी सम्यग्दर्शन ही जड़ है. सम्यग्दर्शनका प्रशम गुण (अत्यंत शांत परिणामोंका होना) ही स्कंध है, करुणा ही शाखाएं है, पवित्र शील ही पत्ते हैं और कीर्ति ही इसके फूल हैं। ऐसा यह व्रतरूपी वृक्ष तुम्हारे लिये मोक्षलक्ष्मीरूपी फल देवे ॥ १०८ ॥ इस उत्तम धर्मके ही प्रभावसे सदा राज्यलक्ष्मी प्राप्त होती है, धर्मके ही प्रभावसे स्वर्गके भोग प्राप्त होते हैं, धर्मके ही प्रभावसे इन्द्रकी पदवी प्राप्त होती है जिनके दोनों चरणकमलोंकी सेवा समस्त देवगण करते हैं। धर्मके ही प्रभावसे चक्रवर्तीकी ऐसी विभूति प्राप्त होती है जिसका पारावार नहीं है, जो सबसे उत्तम है और देव लोग भी जिसे

भक्ति' स वद्यते ॥१०६॥ प्रत्यक्षे जिननाथस्य स्तुतिं य. कुरुतेऽनिशम्। त्रिभुवनेश्वरैणैव स कथं न हि पूज्यते ॥१०७॥ सम्यक्त्वमूलः प्रशमप्रकांड., कारुण्यशाख शुभशीलपत्र.। कीर्तिप्रसूनस्तवमुक्तिलक्ष्मी, राजन्! करोतु व्रतपादपोऽयम् ॥१०८॥ सद्धर्माद्राज्यलक्ष्मी प्रभवति सततं धर्मत. स्वर्गभोगो, धर्मादिन्द्रो द्रुत स्यात्सकलसुरगणैः सेव्यमानांघ्रियुग्मः। सद्धर्माच्चक्रिभूति सुरजनमहिता मानहीना प्रकृष्टा, सद्धर्मात्तीर्थराजः कुरु सुवृष यतः श्रेणिक त्वं सदा वै ॥१०९॥

इतिश्रीगौतमस्वामिचरिते श्रीगौतमोत्पत्तिवर्णन नाम तृतीयोऽधिकार.।

पूज्य समझते हैं तथा धर्मके ही प्रभावसे तीर्थंकरकी सर्वोत्तम पूज्य पदवी प्राप्त होती है। इसलिये हे राजन्! तू सदा धर्मका सेवन कर ॥ १०९ ॥

इसप्रकार मंडलाचार्य श्रीधर्मचंद्रविरचित श्रीगौतमस्वामीचरित्रमें श्रीगौतमस्वामीकी उत्पत्तिको वर्णन करनेवाला यह तीसरा अधिकार समाप्त हुआ।

अथ चौथा अधिकार।

इसी भरतक्षेत्रमें एक विदेह देश है जो कि बहुत ही शुभ है और अनेक नगरोंसे सुशोभित है। उसमें एक कुंड-पुर नामका नगर है ॥१॥ वह नगर ऊंचे कोटसे घिरा हुआ है, धर्मात्मा लोगोंसे सुशोभित है, मणि सुवर्ण आदि धनसे भरपूर है और दूसरे स्वर्गके समान सुंदर जान पड़ता है ॥२॥ उस नगरमें राजा सिद्धार्थ राज करते थे जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाले थे और अनेक राजाओंका समुदाय उनके चरणकमलोंकी सेवा करता था ॥ ३ ॥ वे महाराज कामदेवके समान सुंदर थे, शत्रुओंको जीतनेवाले थे, दाता थे, भोक्ता थे, नीतिको जाननेवाले थे

अथेह भरते क्षेत्रे विदेहविषये शुभे। भूरिपुरादिसंयुक्ते भाति कुंडपुरं पुरम् ॥ १ ॥ तुंगप्राकारसंयुक्तं धर्मिष्ठजनसंकुलम्। मणि-स्वर्णादिवित्ताढ्यं नाकपुरमिवापरम् ॥ २ ॥ तत्र रराज सिद्धार्थो राजा विश्वार्थसिद्धकः। महाभूमिपतिव्रातैः सेवितपदपंकजः ॥ ३ ॥ कामरूपी रिपोर्जेता दाता भोक्ता नयी वरः। विश्वगुणाकरो योऽभू-

और सर्वोत्तम थे । जिसप्रकार कुवेर सब धनका स्वामी है उसी प्रकार वे महाराज सिद्धार्थ भी समस्त गुणोंकी खानि थे ॥ ४ ॥ उनकी महारानीका नाम त्रिशलादेवी था । वह त्रिशलादेवी रूपकी खानि थी, सर्वोत्तम थी, चंद्रमाके समान उसका सुन्दर मुख था, हिरणके समान विशाल नेत्र थे, सुंदर हाथ थे और मूंगेके समान उसके लाल अधर थे ॥ ५ ॥ केलेके समान जंघा थे, वह मनोहर थी, उसकी नाभि नीची थी, उदर कृश था, स्तन उन्नत और कठोर थे, भोंहें धनुषके समान थीं, केश सुंदर थे और तोतेके समान सुंदर नाक थी ॥ ६ ॥ अपनी कीर्तिरूपी चन्द्रमाके द्वारा जिन्होंने समस्त दिशाओंको श्वेत कर दिया है ऐसे वे महाराज उस सुंदरी महारानीके साथ सुख भोगते हुए समय व्यतीत कररहे थे ॥७॥ भगवान् महावीरस्वामीके जन्म कल्याणकसे पन्द्रह महीने पहले इन्द्रकी आज्ञासे देव लोग महाराज सिद्धार्थके घर प्रतिदिन रत्नोंकी वर्षा करते थे ॥ ८ ॥ इन्द्रकी आज्ञासे आठों दिक् कन्याएँ वस्त्र, आभरण धारण करती हुई माताकी सेवा करती

द्राजराजो यथा धनी ॥४॥ तत्प्रिया त्रिशलादेवी जाता रूपखनिः परा: । चद्रवक्त्रा कु'गाक्षी सुहस्ता विद्रुमाधरा ॥ ५ ॥ कदलीचरणा कांता निम्ननाभि कृशोदरी । पीनस्तनी धनु सुभ्रू सुकेशी शुकनासिका ॥६॥ तया सम सुख भुजन् काल निनाय भूपति' । सुसुंदर्या स्वकीर्तीदुधवलीकृतदिक्चयः ॥७॥ इन्द्राज्ञया सुराश्चक्रु रत्नवृष्टि दिने दिने । सपादं वर्षमेकं प्राग्जिनोत्पत्तेर्नृपालये ॥८॥ अष्टौ दिक्कन्यकाः कांता देव्यः सेवां प्रचक्रिरे । वस्त्राभरणधारिण्यो मघवल्लब्धशासनाः

थीं तथा और भी मनोहर देवियां माताकी सेवा करती थीं ॥ ९ ॥ किसी एक दिन वह महारानी त्रिशलादेवी राजभव-नमें कोमल शय्यापर सुखसे सो रही थी उस दिन उसने पुत्रोत्पत्तिको सूचित करनेवाले नीचे लिखे सोलह स्वप्न देखे ॥ १० ॥ १ ऐरावत हाथी, २ सफेद बैल, ३ गरजता हुआ सिंह, ४ शुभ लक्ष्मी, ५ फिरते हुए भ्रमरोंसे सुशोभित दो मालाएँ, ६ पूर्ण चंद्रमा, ७ उदय होता हुआ सूर्य, ८ सरोवरमें क्रीडा करती हुई दो मछलियां, ९ सुवर्णके दो कलश, १० निर्मल सरोवर, ११ लहर लेता हुआ समुद्र, १२ मनोहर सिंहासन, १३ आकाशमें देवोंका विमान, १४ सुंदर नाग-भवन, १५ देदीप्यमान रत्नोंकी राशि, १६ धूम रहित अग्नि। ये सोलह स्वप्न देखे ॥ ११-१३ ॥ प्रभात होते ही वह महादेवी बजते हुए बाजोंके साथ उठी और पूर्ण शृंगार कर महाराजके सिंहासनपर जा विराजमान हुई ॥ १४ ॥ वहां जाकर उसने प्रसन्नचित्त होकर महाराजसे वे सब स्वप्न कहे

॥ ९ ॥ सा रात्रिपश्चिमे यामे सौधे कोमलतल्पके। सुखेन शयिता स्वप्नानिमान् ददर्श पुत्रदान् ॥१०॥ ऐंद्रं गजं वृषं गर्जत्सिंहं शुभां रमाम्। दामयुग्मं भ्रमद्भृंगं पूर्णेंदुं बालभास्करम् ॥ ११ ॥ मत्स्ययुग्मं सरःक्रीडं स्वर्णकुंभौ सरोऽमलम्। वार्द्धिं तरंगसंयुक्तं सिंहासनं मनोहरम् ॥१२॥ सुरविमानमाकाशे नागालयं सुशोभनम्। रत्नपुंजं स्फुरत्कांतिं दहनं धूम्रवर्जितम् ॥१३॥ ततो दिनमुखे बुध्वा तूर्यना-देन साद्भुता। विश्वशृंगारमाधाय भर्तृसिंहासने स्थिता ॥१४॥ तान् स्वप्नान् स्वामिने देवी जगाद हृष्टमानसा। स तत्फलानि तस्यै च

और उनके उत्तरमें महाराज सिद्धार्थ अनुक्रमसे उनके फल कहने लगे ॥१५॥ वे कहने लगे कि हाथीके देखनेसे होनहार पुत्र तीनों लोकोंका स्वामी होगा, बैलके देखनेसे धर्मका प्रचार करनेवाला होगा, सिंहके देखनेसे सिंहके समान पराक्रमी होगा ॥ १६ ॥ लक्ष्मीके देखनेसे देवोंके द्वारा मेरुपर्वतपर उसका अभिषेक होगा, मालाओंके देखनेसे वह अत्यंत यशस्वी होगा, चंद्रमाके देखनेसे मोहनीय कर्मका नाश करनेवाला होगा, सूर्यके देखनेसे भव्यजीवोंको धर्मोपदेश देनेवाला होगा ॥१७॥ दो मछलियोंके देखनेसे अत्यंत सुखी होगा, दोनों कलशोंके देखनेसे शरीरके सब लक्षणोंसे सुशोभित होगा, सरोवरके देखनेसे लोगोंकी तृष्णाको दूर करनेवाला होगा, समुद्रके देखनेसे केवलज्ञानी होगा. सिंहासन देखनेसे मोक्षपद प्राप्त करनेवाला होगा, देवोंका विमान देखनेसे वह स्वर्गसे आकर अवतार लेगा, नागभवन देखनेसे वह अनेक तीर्थोंका करनेवाला होगा, रत्नराशि देखनेसे वह उत्तम गुणोंको धारण करनेवाला

क्रमादुवाच सन्मति. ॥१५॥ त्रिभुवनपतिः पुत्रो दृष्टेभेन भविष्यति। वृषेण वृषकर्ता वै सिंहेन सिंहविक्रम' ॥ १६ ॥ लक्ष्म्या मेरौ सुरैः स्नात. सुदामभ्यां यशोधर' । चंद्रेण मोहसंभेदी सूर्येण भव्यबोधकः ॥ १७ ॥ मत्स्ययुग्मेन सत्सौख्यं घटद्वयेन चाप्स्यति । लक्षणांगं सरो लोकाज्जनतृष्णा हनिष्यति ॥१८॥ वार्द्धिनैष्यति बोधं हि विष्टरेण परं पदम् । देवधाम्ना सुरागारादवतरिष्यति ध्रुवम् ॥१९॥ फणींद्रमंदिरेणैव भूरितीर्थं करिष्यति । सुगुणान् रत्नपुंजेन कर्मक्षयं च

होगा और अग्निके देखनेसे कर्मोंका नाश करनेवाला होगा ॥ १८–२० ॥ अपने पतिके मुखसे उन स्वप्नोंका इस-प्रकार फल सुनकर वह महारानी बहुत ही प्रसन्न हुई और भगवान जिनेंद्रदेवके अवतारकी सूचना पाकर वह अपने जन्मको सफल मानने लगी ॥२१॥ उसी स्वप्नके देखनेके दिन अर्थात् आषाढ शुक्ला षष्ठीके दिन प्राणत स्वर्गके पुष्पो-त्तर विमानसे चलकर इंद्रके जीवने त्रिशलाके मुखमें प्रवेश किया ॥२२॥ उसीसमय इंद्रादि देवोंके सिंहासन कंपायमान हुए और अवधिज्ञानसे जानकर वे सब देव आए तथा वस्त्राभरणोंसे माताकी पूजाकर अपने अपने स्थानको चले गये ॥२३॥ चैत्र शुक्ला त्रयोदशीके दिन जब कि ग्रह सब उच्च स्थानमें थे और लग्न शुभ था उससमय महारानी त्रिशलादेवीने भगवान महावीरस्वामीको जन्म दिया ॥२४॥ उस समय सब दिशाएं निर्मल होगईं, सुगंधित वायु वहने लगी, आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और दुंदुभी बाजे बजने लगे ॥२५॥ भगवान महावीरस्वामीके जन्म लेते ही उनके

वह्निना ॥ २० ॥ स्वप्नावलीफलं श्रुत्वा प्रियास्यात्सा च पिप्रिये । स्वजन्म सफलं मेने जिनावतारसूचनात् ॥२१॥ पुष्पोत्तरात्समुत्तीर्य सुरेशस्त्रिशलामुखम् । स्वप्ने निशि शुचौ शुक्लपक्षे षष्ठ्यां विवेश च ॥२२॥ तस्मिन् क्षणे सुरेंद्राद्याः स्वसिंहासनकंपनात् । ज्ञात्वेत्य भूषणाद्यैस्तां संपूज्य स्वगृहं ययौ ॥२३॥ चैत्रे सितत्रयोदश्यां राज्ञी जिनमसूत सा । स्वोच्चगतैर्ग्रहे दृष्टे शुभलग्ने गते सति ॥ २४ ॥ सर्वाः प्रसेदुराशाश्च ववुः सुगंधिमारुताः । पपात पुष्पवृष्टिर्वै नेदुर्दुं-

तीर्थंकर नामके महापुण्यके उदयसे सब इंद्रोंके सिंहासन एक साथ कंपायमान होगये ॥२६॥ अवधिज्ञानके द्वारा उन सबने भगवान महावीरस्वामीका जन्म जान लिया और उसीसमय सब इंद्र, और चारों प्रकारके देव अपने अपने गाजों बाजोंके साथ कुंडपुरमें आये ॥२७॥ राजमहलमें आकर इंद्रादिक सब देवोंने माताके सामने विराजमान भगवानको देखा और भक्तिपूर्वक उनको नमस्कार किया ॥२८॥ इंद्राणीने माताके सामने तो मायामयी बालक रख दिया और उस बालकको गोदीमें लेकर अभिषेक करनेके लिये सौधर्म इंद्रको सोंप दिया ॥२९॥ सौधर्म इंद्रने भी बालक भगवानको ऐरावत हाथीके कंधेपर विराजमान किया और आकाशमार्गके द्वारा अनेक चैत्यालयोंसे सुशोभित मेरुपर्वतपर गमन किया ॥३०॥ उससमय देव सब बाजे बजाने लगे, किन्नर जातिके देव गीत गाने लगे और देवांगनाओंने भृंगार, दर्पण, ताल (पंखा) आदि मंगल द्रव्य धारण किये॥ ३१ ॥ मेरु पर्वतपर पांडुक

दुभयस्तदा ॥२५॥ तस्मिन् जिनपतौ जाते सम सिंहासनानि वै। कंप ययुः सुरेंद्राणां तीर्थंकरसुपुण्यत ॥२६॥ कुडपुरं ययु शक्राश्च-तुर्विधाः सुरास्तथा। स्वस्ववादित्रनादेन ज्ञात्वा चावधिलोचनै.॥२७॥ राजकुलं समासाद्य मातु' पुरः स्थितं जिनम्। तदा ददृशुरिंद्राद्या भक्त्या प्रणतमौलयः ॥२८॥ शची मायार्भकं मातु' पुरो निधाय वेगतः। बालं हृत्वाभिषेकाय सौधर्मेंद्राय संददे ॥ २९ ॥ तदा चैरावतस्कंधे शक्रो निधाय त जिनम्। निन्ये नभोध्वना मेरु चैत्यालयैः प्रशो-भितम् ॥३०॥ सुरास्तूर्यब्रजं नेदुर्जगुर्गीतानि किन्नराः। भृंगाराद-

वनमें पहुंचकर पांडुक शिलाके समीप पहुंचे। वह शिला सौ योजन लंबी, पचास योजन चौड़ी और आठ योजन ऊंची थी। उसपर एक मनोहर सिंहासन था, उसपर देवोंने बालक भगवानको विराजमान किया और फिर वे भक्तिसे नम्रीभूत होकर भगवानका अभिषेक करनेका उत्सव करने लगे ॥३२-३३॥ मणि और सुवर्णके बने हुए एक हजार आठ कलशोंसे क्षीरोदधि समुद्रका जल लाकर इंद्रादिक देवोंने भगवानका अभिषेक किया ॥३४॥ इस अभिषेकमें मेरु पर्वत कंपायमान होगया परंतु बालक भगवान निश्चल ही बने रहे। उसी समय इन्द्रादिक देवोंको भगवान तीर्थंकर परमदेवका स्वाभाविक बल मालूम हुआ ॥ ३५ ॥ तदनंतर इंद्रादिक देवोंने जन्म मरण आदिके दुःख दूर करनेके लिये जल, चंदन आदि आठों शुभ द्रव्योंसे स्वर्ग मोक्षको देनेवाली भगवानकी पूजा की ॥३६॥ भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजा सूर्यकी प्रभाके समान है। जिसप्रकार सूर्यकी प्रभा प्रकाश

शैतालादीन् दधिरे सुरयोषितः ॥ ३१ ॥ पांडुकवनमासाद्य पाडुकं वलसच्छिलाम्। योजनाष्टोच्छ्रयां पंचाशद्विस्तृतां शतायतिम् ॥३२॥ तस्यां सिंहासने देवास्त विनिवेश्य बालकम्। उत्सवमभिषेकस्य भक्तिनम्राः प्रचक्रिरे ॥३३॥ क्षीरोदधेः समानीतैरष्टाधिकसहस्रकैः। मणिकुंभैः सुरेंद्राद्या अभिषिंचत्सुरा जिनम् ॥ ३४ ॥ कंपिते शैलराजेऽस्मिन् घ्राणजलशिशुक्षुता। इंद्रादयस्तदापेतुर्जिनानां सहजं बलम् ॥३५॥ जन्मदाहविनाशाय स्वर्गापवर्गदायिनीं। जलादिभिः शुभद्रव्यैस्तदर्चा चक्रिरे सुराः ॥३६॥ धर्मोद्योतविकाशंती दुष्कृतध्वांत-

करती है, अंधेरेका नाश करती है और कमलोंको प्रफुल्लित करती है उसीप्रकार भगवानकी पूजा धर्मरूपी प्रकाशको फैलाती है, पापरूपी अंधेरेका नाश करती है और भव्य जीवोंके मनरूपी कमलोको प्रफुल्लित करती है ॥३७॥ इंद्रादिक देवोंने उस बालकका नाम वीर रक्खा। उससमय अनेक अप्सराएं और अनेक देवोंके साथ प्रसन्नता पूर्वक सब इंद्र नृत्य कर रहे थे॥३८॥ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान इन तीनों ज्ञानोंसे सुशोभित होनेवाले भगवानको बालकोंके योग्य वस्त्राभरणोसे सुशोभित किया और फिर अपनी इष्ट सिद्धिके लिये उन सब इंद्रादिक देवोने भगवानकी स्तुति की ॥३९॥ जिस प्रकार सूर्यकी प्रभाके विना कमल प्रफुल्लित नहीं होता उसीप्रकार हे वीर! यदि आपके वचन न हों तो इस संसारमें प्राणियोंको तत्त्वोंका ज्ञान कभी न हो ॥४०॥ इस प्रकार स्तुतिकर इंद्रादिक देवोंने भगवानको फिर ऐरावत हाथीके कंधेपर विराजमान किया और आकाशमार्गसे शीघ्र ही आकर, हाथीसे उतर कर वे सब

नाशिनी। जिनार्चार्कप्रभा भव्यमनोबुजं व्यकाशयत् ॥३७॥ वीरेति नाम देवेंद्रा: कृत्वा तस्याग्रत: समम्। अप्सरोभि: समुचिता ननृतुर्निर्जरैः सह ॥ ३८ ॥ सुरा बाल्योचितैर्वस्त्रैराभरणैर्विभूष्य तम्। तुष्टवुरिष्टसंसिध्यै ज्ञानत्रयविभूषितम् ॥ ३९ ॥ वीर! यदि वचस्ते न तत्त्वबोधः कुतो भवेत्। प्राणिनां कमलाकोशं सूर्यतेजो विना कथम् ॥ ४० ॥ इति स्तुत्वा गजस्कंधे निवेश्य तं जिनं सुराः। तरसाभ्रात्समुत्तीर्य कुडपुरं समाययुः ॥४१॥ नीत्वा मेरौ भवत्पुत्रं

कुंडपुर नगरमें आए ॥ ४१ ॥ "आपके पुत्रको मेरुपर्वतपर अभिषेक कराकर लाए हैं" इसप्रकार कहकर उन इंद्रोंने माता पिताको वे वालक भगवान समर्पण कर दिये ॥४२॥ इन्द्रादिक देवोंने दिव्य आभरण और वस्त्रोंसे माता पिताकी पूजा की, उनका नाम और वल निरूपण किया और फिर नृत्यकर वे सव देव अपने अपने स्थानको चले गये ॥४३॥ इसके वाद दिव्य आभरणोंसे विभूषित हुए अत्यन्त सुन्दर वे वालक भगवान् महावीरस्वामी इन्द्रकी आज्ञासे आये हुए और भगवानके समान ही वालक अवस्थाको धारण करनेवाले देवोंके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥४४॥ तदनन्तर वालक अवस्थाको उल्लंघन कर वे भगवान यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए । उनके शरीरकी कांति सुवर्णके समान थी और शरीरकी उंचाई सात हाथ थी ॥४५॥ उनका शरीर निःस्वेदता (पसीनेका न आना) आदि जन्मकालसे ही उत्पन्न हुए दश अतिशयोंसे सुशोभित था । ऐसे उन भगवानने कुमारकालके तीस वर्ष व्यतीत किये ॥४६॥ तीस वर्ष वीत जानेपर विना

संस्नाप्य पितराविति । आनीतोऽयं सुरेंद्राश्च प्रोक्त्वा ताभ्यां ददुः शिशुम् ॥४२॥ दिव्याभरणवस्त्राद्यैर्दंपती पूज्य तद्बलम् । नाम चावेद्य संनृत्य स्वनिलय ययुः सुराः ॥ ४३ ॥ ततो निजवयस्तुल्यैर्वीरो रेमे सुरैः समम् । शक्राप्तशासनैः कांतो दिव्याभरणभूषितः ॥ ४४ ॥ अथासौ शैशवं लंघ्य प्रपेदे यौवनाश्रियम् । सप्तहस्तप्रमो देहो यस्याभूत्स्वर्णसद्युतिः ॥४५॥ कुमारे वत्सरान् त्रिंशद्वीरो निनाय संदधत् । दशभिः सहजैर्गात्रे निःस्वेताद्यैर्गुणैर्युतम् ॥४६॥ अथैकदा विरक्तो-

किसी कारणके संसारको अनित्य समझकर वे बुद्धिमान् भगवान् कर्मोंको शांत करनेके लिये विषयोंसे विरक्त हुए ॥ ४७ ॥ जिनका हृदय मोक्षमें लग रहा है ऐसे वे भगवान् अपने निर्मल अवधिज्ञानसे अपने पहले भवोंको जानकर अपने आप प्रतिबोधको प्राप्त हुए अर्थात् उन्हें आत्मज्ञान अपने आप हुआ ॥ ४८ ॥ उसी समय लौकांतिक देव आए, उन्होंने आकर भगवानको नमस्कार किया और कहा कि "हे प्रभो! तपश्चरणके द्वारा कर्मोंको नाशकर आप शीघ्र ही केवलज्ञानको प्राप्त कीजिये" इसप्रकार निवेदन कर वे लौकांतिक देव अपने स्थानको चले गये ॥ ४९ ॥ भगवानने सब भाई बन्धुओंसे पूछा फिर वे मनोहर पालकीमें सवार हुए। उस पालकीको उठाकर आकाशमार्गके द्वारा इन्द्र ले चले। इस प्रकार वे भगवान नागखण्ड नामके वनमें पहुंचे। वहांपर इन्द्रोंने उन्हें पालकीसे उतारा और एक स्फटिक शिलापर वे भगवान उत्तर दिशाकी ओर मुंह करके विराजमान होगये ॥ ५०-५१ ॥ महाबुद्धिमान उन भगवानने मार्गशीर्ष कृष्णा

भूद्विषयेभ्यो जिनः सुधीः । प्रशमाय बहिर्हेतु ज्ञातनश्वरसंसृतिः ॥ ४७ ॥ विमलावधिना ज्ञात्वा नाथः पूर्वभवान्निजान् । प्रतिबोधः स्वयं चाभून्निर्वाणदत्तचित्तकः ॥ ४८ ॥ लौकांतिकाः समागत्य नम्येत्युक्त्वा वचो जिन। तपसा कर्म निर्मूल्य केवलं नय संययुः ॥४९॥ बंधुवर्गं समापृच्छ्य शिविकामभिरुह्य च । नमसींद्रैर्धृतां कांतां स भगवान् वनं ययौ ॥५०॥ सम्प्राप्य नागखंडं स निषीदत्स्फटिकोपले। कृत्वोत्तरमुखं यानात्सुरेंद्रैरवतारितः ॥ ५१ ॥ मार्गशीर्षासिते पक्षे

दशमीके दिन सायंकालके समय जिन दीक्षा धारण की और सबसे प्रथम षष्ठोपवास (तेला) करनेका नियम धारण किया ॥५२॥ उस समय भगवानने जो पंचमुष्टि लोंच किया था उन बालोंको इन्द्रने मणियोंके पात्रमें रक्खा और उसे ले जाकर क्षीरसागरमें पधराया ॥५३॥ जो तपश्चरणरूपी लक्ष्मीसे शोभायमान हैं और चारों ज्ञानोंसे विभूषित हैं ऐसे उन भगवानको इन्द्रादिक सब देव नमस्कार कर अपने अपने स्थानको चले गये ॥५४॥ पारणाके दिन वे बुद्धिमान भगवान दोपहरके समय कुल्य नामके नगरमें कुल्य नामके राजाके घर गये ॥ ५५ ॥ राजाने नवधा भक्ति पूर्वक भगवानको आहार दिया। वे भगवान आहार लेकर और अक्षयदान देकर उस घरसे निकल कर वनको चले गये ॥ ५६ ॥ उसी समय उस दानके फलसे ही क्या मानों देवोंने राजाके घर पंच आश्चर्योंकी वर्षाकी। (रत्नवर्षा, पुष्पवर्षा, जय जय शब्द, दुंदुभियोंका बजना और दानकी प्रशंसा) सो ठीक ही है—पात्रोंको दान देनेसे धर्मात्मा लोगोंको लक्ष्मीकी प्राप्ति

दशम्यामपराह्णके। स प्रपेदे तपो जैनं कृतषष्ठो महामतिः ॥५२॥ पंचभिर्मुष्टिभिर्लुप्तान् शक्रो जिनस्य केशौघान्निधाय मणिभाजने। दधौ क्षीरपयोदधौ ॥५३॥ अमरा अभिवंद्य तं प्रतिजग्मुर्निजालयम्। तपःश्रिया समायुक्तं चतुर्ज्ञानविराजितम् ॥५४॥ अन्येद्युः पारणायै हि मध्याह्ने कुल्यपत्तने। कुल्यनाम नृपागारं विवेश भगवान् सुधीः ॥५५॥ गत्वाद्य नवधा पुण्यं भूपतिस्तमभोजयत्। जिनो भुक्त्वाक्षयं दानं दत्वागात्तद्गृहाद्वनम् ॥५६॥ तदा दानफलेनैव सुरेभ्योऽद्भुतपंचकम्।

होती ही है ॥५७॥ वे भगवान किसी एक दिन रात्रिके समय अतिमुक्त नामके श्मशानमें प्रतिमा योग धारण कर विराजमान थे उससमय भव नामके रुद्रने (महादेवने) उनपर बहुतसे उपसर्ग किये परन्तु वह उन्हें जीत न सका ॥ ५८ ॥ तब उसने आकर भगवानको नमस्कार किया तथा उनका 'महावीर' नाम रक्खा और फिर अपने घरको चला गया। इसप्रकार तपश्चरण करते हुए भगवानको जब बारह वर्ष बीतगये तब किसी एक दिन ऋजुकूल नामकी नदीके किनारे जृंभक नामके गांवमें वे भगवान षष्ठोपवास (तेला) धारण कर शामके समय एक शालवृक्षके नीचे किसी शिलापर विराजमान हुए। उस दिन वैशाख शुक्ला दशमीका दिन था। उसी दिन ध्यानरूपी अग्निसे घातिया कर्मोंको नष्टकर उन भगवानने केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ ५९-६१ ॥ केवलज्ञान होते ही शरीरकी छायाका न पडना आदि दश अतिशय प्रगट हो गये और चारों प्रकारके इंद्रादिक देवोंने आकर लोक अलोक सबको प्रकाशित करनेवाले उन भग-

---

नृपोऽवाप श्रिया हेतुः पात्रदानं हि धर्मिणाम् ॥ ५७ ॥ निश्यतिमुक्तकाभिख्ये श्मशाने प्रतिमास्थितम्। तं नाशकद्भवो जेतुं वितन्वन्नुपसर्गकम् ॥ ५८ ॥ प्रणम्य तं महावीरं नाम कृत्वा निजालयम्। रुद्रो गतः सुदीक्षायां पूर्णद्वादशवत्सरम् ॥ ५९ ॥ ऋजुकूलनदीकूले जृंभकग्राममाप्य सः। शालमूलोपले तिष्ठत्सायं षष्ठोपवासकः ॥६०॥ राधमासे सिते पक्षे दशम्यां ध्यानवह्निना। घातिकर्माणि संदह्य केवलज्ञानमाप सः ॥६१॥ अच्छायाद्यैर्गुणैर्युक्तं दशभिस्तं चतुर्विधाः।

नको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥ ६२ ॥ उसीसमय इंद्रकी आज्ञासे कुवेरने चारकोश लंवा चौड़ा वहुत सुंदर समवसरण वनाया ॥६३॥ वह समवसरण मानस्तंभ, ध्वजादंड, घंटा, तोरण, जलसे भरी हुई खाई, जलसे भरे हुए सरोवर और पुष्पवाटिकाओंका सुशोभित था, ऊंचे धूलिप्राकारसे घिरा हुआ था, नृत्यशालाओंसे विभूषित था, उपवनोंसे सुशोभित था, वेदिका, अंतर्ध्वजा, सुवर्णशाला आदिसे विभूषित था, सव प्रकारके कल्पवृक्षोंसे सुशोभित था, और वहुत ही प्रसन्न करनेवाला था ॥६४-६६॥ उसमें अनेक मकानोंकी पंक्तियां थीं। वे मकान दैदीप्यमान सुवर्ण और प्रकाशमान मणियोंके वने हुए थे। अनेक स्फटिक मणियोंकी शालाएं थीं जो गीत और वाजोंसे सुशोभित थीं ॥ ६७ ॥ उस समवसरणके चारों ओर चारों दिशाओंमें चार वड़े दरवाजे थे जिनकी अनेक देवगण सेवा कर रहे थे तथा सुवर्ण और रत्नोंके वने हुए ऊंचे भवनोंसे वे दरवाजे शोभायमान थे ॥ ६८ ॥ उसमें वारह सभाएं थीं

भक्त्या नेमुः सुरेंद्राद्या लोकालोकप्रकाशकम् ॥६२॥ अथ शक्राज्ञया यक्षः समवशरणं मुदा। जिनस्य सुदरं चक्रे चतुःक्रोशप्रविस्तृतम् ॥६३॥ मानस्तंभध्वजादंडघंटातोरणराजितम्। सजलखातिकावारिभृतकासारसंयुतम् ॥ ६४ ॥ कुसुमवाटिकातुंगरेणुप्राकारवेष्टितम्। नृत्यशालसमाकीर्णमुपवनादिराजितम् ॥ ६५ ॥ वेदिकांतध्वजाद्याढ्यं सुवर्णशालमंडितम्। विश्वकल्पद्रुमारण्यशोभितं हर्षदायकम् ॥ ६६ ॥ तप्तहेमस्फुरत्कांतिरत्नहर्म्यावलीयुतम्। स्फाटिकमणिशालाढ्यं गीतवाद्यप्रणादितम् ॥६७॥ चतुः सद्गोपुरैर्व्याप्तममरगणसेवितैः। पंचसुवर्ण-

जिनमें मुनि, अर्जिका, कल्पवासी देव, ज्योतिषी देव, व्यंतर देव, भवनवासी देव, कल्पवासी देवांगनाएं, ज्योतिषी देवोंकी देवांगनाएं, व्यंतर देवोंकी देवांगनाएं, भवनवासी देवोंकी देवांगनाएं, मनुष्य और पशु बैठे हुए थे ॥६९॥ अशोकवृक्ष, दुंदुभियोंका बजना, छत्र, भामंडल, सिंहासन, चमर, पुष्प-वृष्टि और दिव्यध्वनि इन आठों प्रातिहार्योंसे वे भगवान सुशोभित थे ॥७०॥ उस समय वे श्रीवीरनाथ भगवान अठारह दोषोंसे रहित थे, चौतीस अतिशयोंसे सुशोभित थे, और ऊपर लिखी सब विभूतिके साथ विराजमान थे ॥७१॥ इसप्रकार भगवान वीरनाथको सिंहासनपर विराजे हुए तीन घंटे बीत गये तथापि उनकी दिव्यध्वनि नहीं खिरी ॥७२॥ यह देखकर सौधर्म इंद्रने अपने अवधिज्ञानसे विचार किया कि यदि गौतम आजाय तो भगवानकी दिव्यध्वनि खिरने लग जाय ॥७३॥ गौतमको लानेके लिये इंद्रने वृद्धका रूप बनाया जोकि पद पदपर कंप रहा था और फिर वह ब्राह्मण नगरमें जाकर गौतमशालामें पहुंचा ॥७४॥ उससमय लकड़ी

रत्नानां तुंगप्रासादमंडितैः ॥६८॥ मुनिस्तथार्यिकाकल्पज्योतिर्व्यंतर-भावनाः। सुरास्तदंगना भूपाः पशवो द्वादशी सभा ॥६९॥ अशोको दुंदुभिश्छत्रं प्रभामंडलमासनम्। पुष्पवृष्टिर्ध्वनिर्दिव्यः प्रातिहार्याणि चामरम् ॥७०॥ एतद्विभूतिसंयुक्तो वीरनाथोऽभवज्जिनः। निःशेष-दोषनिर्मुक्तश्चतुस्त्रिंशातिशयिकः ॥ ७१ ॥ याममात्रे व्यतिक्रांते सिंहासनप्रसंस्थिते। अथ श्रीवीरनाथस्य नोऽभवद्ध्वनिनिर्गमः ॥७२॥ चिंचितं प्रथमेंद्रेण स्वावधिलोचनैरिति। चेद्गौतमागमः स्याद्धि तदास्य

उसके हाथमें थी, मुहमें एक भी दांत नहीं था और बोलतें समय पूरे अक्षर भी नहीं निकलते थे। इसप्रकार जाकर उसने कहा कि 'हे ब्राह्मणो! इस पाठशालामें समस्त शास्त्रोंको जाननेवाला और सब प्रश्नोंके उत्तर देनेवाला कौनसा मनुष्य है ॥ ७५–७६ ॥ इस संसारमें ऐसा मनुष्य बहुत ही दुर्लभ है जो मेरे काव्यको विचारकर और उसका यथार्थ अर्थ समझाकर मेरी आत्माको संतुष्ट करे ॥ ७७ ॥ इस श्लोकका अर्थ समझनेसे मेरे जीवनका उपाय निकल आवेगा। आप धर्मात्मा हैं इसलिये आपको इस श्लोकका अर्थ बतला देना चाहिये ॥७८॥ केवल अपना पेट भरनेवाले मनुष्य संसारमें बहुत हैं परन्तु परोपकार करनेवाले मनुष्य इस पृथ्वीपर बहुत ही थोड़े हैं ॥ ७९ ॥ मेरे गुरु इससमय धर्म-कार्यमें लगे हैं, वे इस समय ध्यान कर रहे हैं, मोक्ष पुरुषार्थको सिद्ध कर

ध्वनिनिर्गमः ॥ ७३ ॥ वार्द्धकं वपुरादाय कंपमानः पदे पदे। तदा गौतमशालायां स गतो ब्रह्मपत्तने ॥७४॥ तत्क्षणे तेन संप्रोक्तं वचो लुप्ताक्षरैर्युतम्। यष्टिमधृतहस्तेन दंतहीनमुखेन च ॥ ७५ ॥ अहो वाडव सत्कांत निःशेषशास्त्रकोविदः। नरः कोस्त्यत्र शालायां सत्प्रत्युत्तरदायकः ॥७६॥ काव्यं विचार्य मे योऽपि कथयित्वा यथार्थकम्। सुखी करोति मे जीवं लोके स दुर्लभो जनः ॥७७॥ ममापि जीवनोपायः श्लोकार्थेन भविष्यति। अतो धर्मिष्टमर्त्येन कथनीयं च तत्त्वया ॥७८॥ संति वै बहवो मर्त्याः स्वकीयोदरपूरकाः। परोपकृतिनो ये हि विरलास्ते धरातले ॥७९॥ गुरुर्मे वृषग्राही ध्यानी सर्वार्थसाधकः। स च मां प्रति नो वक्ति स्वपरकार्यतत्परः ॥८०॥

रहे हैं और इसप्रकार अपना और दूसरोंका उपकार करनेमें लग रहे हैं इसलिये वे इस समय मुझे कुछ बतला नहीं रहे हैं ॥ ८० ॥ इसी कारण इस काव्यका अर्थ समझनेके लिये मैं आपके पास आया हूं इसलिये आप मेरा उपकार करनेके लिये इस काव्यका यथार्थ अर्थ कहिये ॥ ८१ ॥ इस प्रकार उस बूढ़ेकी बात सुनकर पांचसौ शिष्य और दोनों भाइयोंके द्वारा प्रेरणा किया हुआ गौतम शुभ वचन कहने लगा ॥ ८२ ॥ 'कि हे वृद्ध ! क्या तू नहीं जानता है कि इस पृथ्वीपर समस्त शास्त्रोंके अर्थ करनेमें पारङ्गत और अनेक शिष्योंका प्रतिपालन करनेवाला मैं प्रसिद्ध हूं। मैं तुम्हारे काव्यके अर्थको अवश्य बतलाऊंगा परन्तु तुम अपने काव्यका बड़ा अभिमान करते हो बताओ तो सही कि यदि मैं उस काव्यका अर्थ बतला दूंगा तो तुम मुझे क्या दोगे ? ॥८३-८४॥ इसके उत्तरमें उस बूढ़े इन्द्रने कहा कि हे ब्राह्मण ! यदि आप मेरे काव्यका अर्थ बतला देंगे तो मै सब लोगोंके सामने आपका शिष्य हो जाऊंगा ॥ ८५ ॥ यदि उस काव्यका अर्थ

तेनाहं च समायातः सत्काव्यार्थं तवांतिके। अतस्त्वं ब्रूहि याथार्थ्यं मदुपकारहेतवे ॥ ८१ ॥ वृद्धवाचं समाकर्ण्य गौतमो वचनं जगौ। पंचशतकशिष्येण भ्रातृभ्यां प्रेरितः शुभम्॥८२॥ रे वृद्ध ! त्वं न जानासि विश्रुतोऽस्मिन् महीतले। विश्वशास्त्रार्थपारीणः शिष्याणां प्रतिपालकः ॥८३॥ अहो चेत्तव काव्यार्थं तुभ्यं ब्रवीमि निश्चितम्। अहंकारिन् तदा मह्यं किमु वस्तु ददासि हि ॥ ८४ ॥ तेनोक्तं यदि भो विप्र ! काव्यार्थं कथयस्यहो। पुरतो विश्वलोकानां तव शिष्यो भवाम्यहम्

आपसे न बना तो आप बहुतसा अभिमान करनेवाले इन सब विद्यार्थियोंके साथ और अपने दोनों भाइयोंके साथ मेरे गुरुके शिष्य हो जाना ॥८६॥ बूढेकी बात सुनकर गौतमने कहा कि हां! यह बात ठीक है, अब इस बातको बदलना मत। सत्य बातको सूचित करनेवाले ये सब लोग इस बातके साक्षी (गवाही) हैं ॥ ८७ ॥ इसप्रकार वह बूढा इन्द्र और गौतम दोनों ही एक दूसरेकी प्रतिज्ञामें बंध गये। सो ठीक ही है–अपने अपने कार्यका अभिमान करनेवाले ऐसे कौनसे मनुष्य हैं जो अकृत्य (न करनेयोग्य कार्य) को भी न कर डालते हों। भावार्थ–ऐसे मनुष्य न करनेयोग्य कार्योंको भी कर डालते हैं ॥ ८८ ॥ तदनन्तर उस सौधर्म इन्द्रने गौतमका मान भंग करनेके लिये आगमके अर्थको सूचित करनेवाला और बहुत बड़े अर्थसे भरा हुआ काव्य पढ़ा ॥ ८९ ॥ वह काव्य यह था " धर्मद्वयं त्रिविधकालसमग्रकर्म, षड्द्रव्यकायसहिताः समयैश्च लेश्याः। तत्त्वानि संयमगती सहिता

॥८५॥ नोचेत्ततो मदीयस्य गुरोः शिष्यो भविष्यसि। सद्भ्रातृभ्यामिमैः छात्रैः सार्द्धं गर्वभरावहैः ॥८६॥ गौतमेन वचः प्रोक्तं सत्यमेतन्नचान्यथा। साक्षिणो विश्वलोका हि संति सत्यार्थसूचकाः ॥८७॥ प्रतिज्ञातत्परौ तौ द्वावभूतां वृद्धगौतमौ। कार्याभिमानिनौ मर्त्यावकृत्यं कुरुतो न किम् ॥८८॥ अथ शक्रेण सत्काव्यं पठितं भूरिविस्तृतम्। गौतममानभंगार्थमागमस्यार्थसूचकम् ॥८९॥ धर्मद्वयं त्रिविधकालसमग्रकर्म, षड्द्रव्यकायसहिताः समयैश्च लेश्याः। तत्त्वानि संयमगती सहिता पदार्थैः, रंगप्रवेदमनिशं वद चास्तिकायम् ॥ ९० ॥ इति

पदार्थैरंगप्रवेदमनिशं वद चास्तिकायम्।" धर्मके दो भेद कौन कौन हैं, तीन प्रकारका काल कौन कौनसा है, कर्म सब कितने हैं? छह द्रव्य कौन कौन हैं, उनमें काय सहित कौन कौन द्रव्य हैं, काल किसको कहते हैं, लेश्या कितनी और कौन कौन हैं? तत्त्व कितने और कौन कौन हैं? संयम कितने और कौन कौन हैं, गति कितनी और कौन कौन हैं? पदार्थ कितने और कौन कौन हैं? श्रुतज्ञानके अङ्ग कितने और कौन कौन हैं? अनुयोग कितने और कौन कौन हैं और अस्तिकाय कितने और कौन कौन हैं? इन सबको आप बतलाइये॥ ९०॥ इसप्रकार इन्द्रके द्वारा पढ़ा हुआ काव्य सुनकर गौतम कुछ खेदखिन्न हुआ और मनमें विचार करने लगा कि मैं इस काव्यका क्या अर्थ बतलाऊँ?॥९१॥ अथवा इस बूढ़े ब्राह्मणके साथ बातचीत करनेसे कोई लाभ नहीं इसके गुरुके साथ वादविवाद करना चाहिये। इस प्रकार विचार कर वह इन्द्रसे कहने लगा सो ठीक ही है क्योंकि अपने अभिमानको भला कौन छोड़ देता है॥९२॥ गौतमने इन्द्रसे कहा कि चलरे ब्राह्मण, तू अपने गुरुके पास चल, वहांपर तेरे कहनेका निश्चय किया जायगा। इसप्रकार कहकर वे दोनों ही विद्वान सब लोगोंको साथ लेकर चल दिये

शक्रवचः श्रुत्वा विखिन्नो भूय गौतमः। चित्ते विचारयामास काव्यार्थं कथयामि किम्॥९१॥ द्विजस्य गुरुणा सार्द्धं वादं करोम्यनेन किम्। इति चिंत्य जगौ शक्रं गर्वं कोऽपि हि मुंचति॥ ९२॥ गच्छ वो गुरुसान्निध्यं तव कृत्वेति निश्चयम्। जग्मतुस्तौ सुविद्वांसौ

॥ ९३ ॥ गौतमने मार्गमें विचार किया कि जब मुझसे इस ब्राह्मणका ही उत्तर नहीं दिया गया है तो फिर इसका गुरु तो बड़ा भारी विद्वान् होगा उसका उत्तर किसप्रकार दिया जायगा। (जब यही वशमें नहीं होसका है तो फिर इसका गुरु किसप्रकार वश किया जायगा) ॥ ९४ ॥ इसप्रकार वह सौधर्म इंद्र गौतम ब्राह्मणको समवसरणमें लेजाकर बहुत ही प्रसन्न हुआ सो ठीक ही है क्योंकि अपने कार्यकी सिद्धि होजानेपर कौनसा मनुष्य संतुष्ट नहीं होता है अर्थात् सभी संतुष्ट होते हैं ॥ ९५ ॥ जिसने अपनी शोभासे तीनों लोकोंमें आश्चर्य उत्पन्न कर रक्खा है ऐसे मानस्तंभको देख-कर गौतमने अपना सब अभिमान छोड़ दिया ॥ ९६ ॥ वह मनमें विचार करने लगा कि जिस गुरुकी पृथ्वीभरमें आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली इतनी विभूति है वह क्या किसीसे जीता जा सकता है ? कभी नहीं ॥ ९७ ॥ तदनंतर भगवान वीर-नाथके दर्शन कर वह गौतम उनकी स्तुति करने लगा। वह कहने लगा कि हे प्रभो ! आप कामरूपी योद्धाको जीतनेवाले

विश्वजनसमावृतौ ॥९३॥ चिंतितं तेन मार्गे वै द्विजोऽसाध्योऽभव-द्यदा। तदा गुरुर्महान्नस्य कथं साध्यो भविष्यति ॥९४॥ समवसरणे नीत्वा वृषा वै हर्षितोऽभवत्। कार्ये सिद्धि समायाते को न तुष्यति मानवः ॥९५॥ मानस्तंभं तमालोक्य मानं तत्याज गौतमः। निज-प्रशोभया येन विस्मितं भुवनत्रयम् ॥ ९६ ॥ इति विचिंतितं तेन महीविस्मयकारिका। यस्य गुरोरियं भूतिः स किं केनापि जीयते ॥९७॥ ततो वीरं तमालोक्य शुभां स्तुति चकार सः। कामसुभट-

हैं, भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देनेवाले हैं, अनेक मुनिराजोंका समुदाय आपकी पूजा करता है, आप तीनो लोकोंको तारनेवाले हैं, कर्मरूपी शत्रुको नाश करनेमें चतुर हैं और तीनों लोकोंके इंद्र आपकी सेवा करते हैं। इसप्रकार स्तुति कर गौतमने भगवानके चरणकमलोंको नमस्कार किया और फिर मुक्तिरूपी स्त्रीकी इच्छा रखनेवाला वह गौतम इंद्रियोंके विषयोंसे विरक्त हुआ ॥ ९८-१०० ॥ इसके बाद ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए पांचसौ शिष्योंके साथ और अपने दोनो भाइयोके साथ गौतमने जैनेश्वरी दीक्षा धारण की ॥ १०१ ॥ सो ठीक ही है जो संसारके भयसे भयभीत हैं, मोक्षरूपी लक्ष्मीकी इच्छा रखते हैं और मोक्षकी प्राप्ति जिनके समीप है ऐसे लोग कभी देर नहीं किया करते हैं ॥१०२॥ श्रीवीरनाथ भगवानके समवसरणमें चारों ज्ञानोंसे सुशोभित ऐसे इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति आदि ग्यारह गणधर हुए थे ॥१०३॥ जिन्होंने पहले भवमें लब्धिविधान नामका

जेतस्त्वं भव्यजीवप्रबोधकः ॥९८॥ मुनींद्रगणपूज्यस्त्वं त्वं लोकत्रयतारकः । कर्मारिध्वंसने दक्षस्त्रिभुवनेंद्रसेवितः ॥ ९९ ॥ इति स्तुतिं विधायासौ ननाम तत्क्रमौ पुनः । विषयेभ्यो विरक्तोऽभून्मुक्तिप्रियप्रवांच्छकः ॥ १००॥ ततो जैनेश्वरीं दीक्षां भ्रातृभ्यां जग्रहे सह । शिष्यैः पंचशतैः सार्द्धं ब्राह्मणकुलसंभवैः ॥ १०१ ॥ येषां सिद्धिः समासन्ना ते विलंबं न कुर्वते । संसारभयसंत्रस्ताः शिवलक्ष्मीस्पृहान्विताः ॥ १०२ ॥ इंद्राग्निवायुभूताद्याः शुभाः एकादशाभवन् । गणिनो वीरनाथस्य चतुर्ज्ञानविराजिताः ॥१०३॥ यैश्चरितं व्रतं पूर्वं

व्रत किया था वे उस पुण्यके प्रतापसे शीघ्र ही गणधर पदपर पहुंच गये ॥१०४॥ अन्य पुरुष भी जो इस व्रतको करते हैं उन्हें भी संसाररूपी समुद्रसे पारकर देनेवाली ऐसी ही विभूतियां प्राप्त होती हैं ॥१०५॥ तदनन्तर भगवान् वीरनाथकी दिव्यध्वनि खिरने लगी। वह दिव्यध्वनि भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करती थी और मोहरूपी अन्धकारका नाश करती थी ॥१०६॥ भगवान् वीरनाथने जीव, अजीव आदि सात तत्त्व, छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय और जीवोंके भेद आदि लोकाकाशमें जितने पदार्थ थे सबका स्वरूप बतलाया ॥१०७॥ समस्त परिग्रहोंका त्याग करदेनेवाले मुनिराज गौतमने पहले किये हुए पुण्यकर्मके उदयसे भगवानके समस्त उपदेशको ग्रहण कर लिया ॥ १०८ ॥ इस जैनधर्मके प्रभावसे सज्जन पुरुषोंकी संगति प्राप्त होती है, अच्छे कल्याण, मधुर वचन, अच्छी बुद्धि और सर्वोत्तम विभूतियां प्राप्त होती हैं ॥१०९॥

लब्धिविधाननामकम्। ने तत्सुकृतमाहात्म्याद्बभूवुर्गणिनो द्रुतम्॥ १०४॥ व्रतं येऽन्येपि कुर्वंति तेषां लब्धिर्भविष्यति। एतादृशी कथं नो हि संसारार्णवतारिका ॥१०५॥ ततो वीरस्य सद्वक्त्राच्चिरगात्सत्सरस्वती। भव्यपद्मविकासंती मोहतमः प्रणासिनी ॥ १०६ ॥ जीवादिसप्ततत्त्वं च द्रव्यं पंचास्तिकायकम्। जीवभेदं जगौ वीरः पदार्थं लोकसंस्थितम् ॥ १०७ ॥ निखिलं तस्य वाक्यं स जग्राह गौतमो मुनिः। पूर्वपुण्यविपाकेन विश्वत्यक्तपरिग्रहः ॥ १०८ ॥ साधूनां संगतिः श्रेयान् सुवचनं सुबुद्धिता। प्रकटविभवो लोके जायते जैनधर्मतः ॥ १०९ ॥ विनयान्वितपुत्रैश्च प्रसेवितक्रमांबुजाः। पूर्णचंद्रतुषाराभ-

जैनधर्मके ही प्रभावसे विनयवान् पुत्र चरणकमलोंकी सेवा करते हैं, जैनधर्मके ही प्रभावसे चंद्रमा और वरफके समान स्वच्छ और चारों दिशाओंमें फैलानेवाली कीर्ति प्राप्त होती है, धर्मके ही प्रभावसे वड़ी भारी विभूति प्राप्त होती है, धर्मके ही प्रभावसे अनेक सुंदर स्त्रियां प्राप्त होती हैं और धर्मके ही प्रभावसे सुरेंद्र, नरेंद्र और नागेंद्र पद प्राप्त होते हैं ॥११०-१११॥

तदनंतर मुनि, देव, मनुष्य आदि सब भव्यजीवोंको प्रसन्न करते हुए राजा श्रेणिक मधुरवाणीसे कहने लगे कि हे भगवन् ! हे वीर प्रभो ! जिस धर्मसे स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त होते हैं उस धर्मको मैं आपके मुखसे विस्तारके साथ सुनना चाहता हूं ॥११२-११३॥ इसके उत्तरमें वे भगवान अपनी दिव्यध्वनिके द्वारा कहने लगे कि हे राजन् ! तू मन लगाकर सुन। मैं अब मुनि और गृहस्थ दोनोंके धारण करने योग्य धर्मका स्वरूप कहता हूं ॥ ११४ ॥ संसाररूपी समुद्रमें डूबते हुए भव्यजीवोंको निकालकर जो उत्तम पदमें धारण कर दे उसको धर्म कहते हैं। धर्मका यही स्वरूप

कीर्तिपूर्णदिगंतराः ॥११०॥ भूरिसंपत्तिसंपन्नाः कामिनीवृंदसेविताः। सुरासुरनराधीशा जायंते धर्मिणः सदा ॥१११॥ मुनींद्रदेवमर्त्यादीन् भव्यौघान् मोदयन् द्रुतम्। अथ श्रेणिकभूपालो जगाद मधुरां गिरम् ॥११२॥ वीर! श्रीभगवन् येन स्वर्मुक्तिसुखमाप्यते। तं धर्मं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तवमुखात् ॥११३॥ निजमनः समाधाय मुनिगृहस्थगोचरम्। इति वचोऽवदत्स्वामी शृणु वृषं महीपते ॥११४॥ मज्जतो भवपाथोधौ भव्यौघान्नुच्छ्रिते पदे। धारयतीति यो धर्मः

अनादि कालसे जिनेंद्रदेव कहते चले आये हैं ॥ ११५ ॥ जीवोंके लिये अहिंसा धर्म सबसे उत्तम धर्म है। इसी अहिंसा धर्मके प्रभावसे प्राणियोंको चक्रवर्तीके सुख प्राप्त होते हैं ॥ ११६ ॥ इसलिये संसारके समस्त जीवोंपर दया करनी चाहिये। यह दया ही अपार सुख देनेवाली है और दुःखरूपी वृक्षोंको काट डालनेके लिये कुठारके समान है ॥११७॥ जूआ मांस आदि सातों व्यसनरूपी अग्निको बुझानेके लिये यह दया ही मेघकी धारा है, यह दया ही स्वर्गको चढ़नेके लिये नसेनी है और दया ही मोक्षरूपी संपत्तिको देनेवाली है ॥११८॥ जो लोग धर्मसाधन करनेके लिये यज्ञमें प्राणियोंकी हिंसा करते हैं वे काले सर्पके मुंहसे अमृतका समूह निकालना चाहते हैं ॥११९॥ यदि जलमें पत्थर तिरने लग जाय, यदि अग्नि ठंडी होजाय तो भी हिंसा करनेसे धर्मकी प्राप्ति कभी नहीं हो सकती ॥१२०॥ जो भील लोग धर्म समझकर बड़े बड़े जंगलोंमें अग्नि लगा देते हैं वे विष खाकर जीवित

प्रोक्तोसौ श्रीजिनोत्तमैः ॥११५॥ अहिंसात्परमो धर्मो जायते देहिनां सदा। प्रपद्यते क्षणाद्येन मानुषैश्चक्रिजं सुखम् ॥११६॥ अतो दया प्रकर्तव्या जीवेषु निखिलेष्वपि। सुखसंदोहकर्त्री वै दुःखद्रुमकुठारिका ॥११७॥ सप्तव्यसनसप्तार्चिः प्रशमनघनालिका। स्वर्गारोहणनिःश्रेणिर्मुक्तिसंपद्विधायिका ॥११८॥ यज्ञे प्राणिवधं कुर्युर्ये सुवृषाप्तहेतवे। वांच्छंति ते सुधावृंदं कृष्णभुजंगवक्त्रतः ॥ ११९ ॥ जले तरंति पाषाणा यद्यग्निः शीततां व्रजेत्। तदपि जायते धर्मो हिंसनान्न कदाचन ॥१२०॥ धर्मबुध्या महारण्ये ये किराता दवानलम्। ददंति

रहना चाहते हैं ॥१२१॥ जो लोलुपी मनुष्य जीवोंको मारकर मांस खाते हैं वे महा दुःख देनेवाली नरक गतिमें ही उत्पन्न होते हैं ॥१२२॥ जो लोग थोड़ेसे सुखके लिये जीवोंकी हिंसा करते हैं वे जीव मेरुपर्वतके समान महादुःखोंको सदा भोगते रहते हैं ॥१२३॥ इस संसारमें न तो छाछसे घी निकलता है, न विना सूर्यके दिन होता है और न लेप कर लेने मात्रसे मनुष्योंकी भूख मिटती है उसीप्रकार हिंसा करनेसे भी कभी सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ १२४ ॥ प्राणियोंपर दया करनेवाले मनुष्य युद्धमें भी निर्भय रहते हैं, निर्जन वनोंमें भी निर्भय रहते हैं, समुद्र नदी और पर्वतोंपर भी निर्भय रहते हैं, वे सब सङ्कटोंमें निर्भय रहते हैं ॥१२५॥ जो जीव जीवोंकी हिंसा करते हैं उनकी आयु थोड़ी ही होती है, वे पेटमें ही मर जाते हैं या उत्पन्न होनेके समय मर जाते हैं, किसी शस्त्रसे मर जाते हैं, समुद्रमें पड़कर मर जाते हैं या किसी वनमें जाकर मर जाते हैं ॥ १२६ ॥ इसी प्रकार झूठ

कालकूटात्तेऽभिलषंति स्वजीवितम् ॥ १२१ ॥ जीवाभिघातकं कृत्वा मांसं खादंति लोलुपाः । तेऽधोगतिं प्रपद्यंते भूरिदुःखप्रदायिनीम् ॥१२२॥ अत्यल्पसुखसंप्राप्त्यै कुर्वंति जीवहिंसनम् । दुःखं मेरुनिभं मर्त्याः भुंजंति ते निरंतरम् ॥ १२३ ॥ न तक्राज्जायते सर्पिर्न दिनं सूर्यवर्जितम् । क्षुन्निवृत्तिर्न चालेपात् सुखप्राप्तिर्न हिंसनात् ॥१२४॥ प्राणिनां रक्षणाज्जीवा भवति निर्भयारणे। कांतारे दुर्गमे सिंधौ नद्यां पर्वतसंकटे ॥१२५॥ योनिजन्मनि गर्भस्थे शस्त्रैः सिंधौ महावने। अल्पायुषः प्रम्रियंते जन्मिनो जंतुहिंसका. ॥१२६॥ मृषावचनतो नृणां

बोलनेसे भी भारी पाप लगता है और ऐसे पापकर्मोंका बंध होता है जिनके उदयसे सदा नरकादिके ही दुःख प्राप्त होते रहते हैं ॥१२७॥ संसारमें यशरूपी वन अनेक प्रकारके आनंद देनेवाला है और अनेक प्रकारके उत्तम फल देनेवाला है। वह यशरूपी वन असत्यभाषणरूपी अग्निसे बहुत ही शीघ्र जल जाता है ॥ १२८ ॥ यह असत्यभाषण सदा अविश्वासका घर है, अनेक विपत्तियोंको देनेवाला है, महापुरुषोंके द्वारा निंदनीय है और मोक्षमार्गको बंद कर देनेवाला है ॥१२९॥ यह असत्यभाषण अनेक प्रकारके पाप उत्पन्न करनेवाला है और असत्यभाषणसे ही राजाके द्वारा मृत्युका दंड प्राप्त होता है इसलिये आत्मज्ञानसे सुशोभित होनेवाले विद्वान पुरुषोंको यह असत्यभाषण कभी नहीं करना चाहिये ॥१३०॥ देवोंका आराधन करनेवाले जो मनुष्य सदा सच बोलते हैं वे इस संसारमें ही अनेक प्रकारकी शुभ संपत्तिसे विभूषित होते हैं ॥ १३१ ॥ सत्यभाषणके प्रसादसे विष भी अमृत हो जाता है, शत्रु भी परम मित्र हो जाते हैं और सर्प भी

महत्पापं प्रजायते । दुःखं प्रलभ्यते येन नरकादिसमुद्भवम् ॥१२७॥ असत्यदहनस्तोमैर्भस्मीभवेद्यशोवनम् । भूरिप्रमोदसंमुख्यनानासत्फल-दायकम् ॥ १२८ ॥ अविश्वासगृहं नित्यं विपत्तीनां प्रदायकम् । महद्भिः पुरुषैर्निंद्यं मुक्तिद्वारकपाटम् ॥ १२९ ॥ असत्यतः प्रवध्यंते नरा नृपैरघप्रदात। अतस्तन्न प्रवक्तव्यं विद्वद्भिर्ज्ञानभास्वरैः ॥१३०॥ ये सत्यवाक् प्रजल्पंते सुराराधनका नराः । जायंत इह ते लोके भूरिसंपत्प्रदाः शुभाः ॥ १३१ ॥ विषं सुधासमं नित्यं शत्रुः परम-

मालाके रूपमें परिणत हो जाता है ॥१३२॥ जो मूर्ख मनुष्य असत्यभाषणसे ही सद्धर्मकी प्राप्ति चाहते हैं वे विना ही अंकुरोंके सब प्रकारके धान्य उत्पन्न होनेकी शोभाको चाहते हैं ॥ १३३ ॥ बुद्धिमान् पुरुषोंको हिंसा और झूठके समान चोरीका भी त्याग कर देना चाहिये क्योंकि चोरी करनेसे भी दूसरोंको सदा दुःख पहुंचता रहता है। यह चोरी पुण्यरूपी पर्वतको चूर करनेके लिये वज्रके समान है और आपत्तिरूपी लताओंको बढ़ानेवाली है ॥ १३४ ॥ चोरी करनेसे नरककी प्राप्ति होती है, वहांपर छेदन, तापन आदि अनेक प्रकारके दुःख प्राप्त होते हैं। वह नरक दुःखोंका गढा ही है और वहांके नारकी परस्पर एक दूसरेके साथ सदा शत्रुता रखते हैं ॥ १३५ ॥ चोरी करनेवालोंकी सब लोग निंदा करते हैं, राजा भी उन्हें प्राणदंडकी आज्ञा देता है तथा और भी अनेक प्रकारके दुःख उन्हें भोगने पड़ते हैं ॥ १३६ ॥ जो पुरुष चोरी नहीं करता है उसे अनंत सुख देनेवाली और जन्म-मरणको दूर करनेवाली मोक्षरूपी स्त्री

मित्रताम् । सर्पोपि माल्यतां याति सत्यवचःप्रसादतः ॥ १३२ ॥ असत्यवाक्यतो मर्त्या येऽभिलषति सद्वृषम् । समस्तसस्यसंपत्तिर्वालिशास्ते विनांकुरात् ॥ १३३ ॥ स्तेयं बुधैः प्रहर्तव्यं परपीडाकरं सदा । सुकृतगिरिदंभोली व्यापल्लताप्रवर्द्धकम् ॥ १३४ ॥ लभते नरकं स्तेयाच्छेदनतापनप्रदम् । अनेकदुःखगर्ताढ्यं वैरिसंवर्द्धमानसम् ॥१३५॥ जायंते स्तेयतो लोके विश्वजनैः प्रणिंदिता । नरा नृपतिसंवध्या दुःखनिकरभाजकाः ॥१३६॥ अदत्तं यो न गृह्णाति सिद्धि-

स्वयं स्वीकार कर लेती है ॥ १३७ ॥ चोरीका त्याग कर देनेसे सब प्रकारकी विभूतियां प्राप्त होती हैं, सुंदर स्त्रियां प्राप्त होती हैं, अच्छी उत्तम गति मिलती है, निर्मल कीर्ति प्राप्त होती और सदा धर्मकी वृद्धि होती है ॥ १३८ ॥ जो मूर्ख चोरी करते हुए भी सुख देनेवालीं बहुतसी विभूतियां प्राप्त करना चाहते हैं वे अग्निसे सुंदर कमलोंके वनको उत्पन्न करना चाहते हैं ॥१३९॥ यदि भोजन करनेसे अजीर्ण दूर होजाय, विना सूर्य उदय हुए दिन निकल आवे और वालूको पेलनेसे तेल निकल आवे तो चोरी करनेसे भी धर्मकी प्राप्ति होजाय। भावार्थ— जैसे ये बातें सब असंभव हैं उसी प्रकार चोरी करनेसे धर्मकी प्राप्ति होना भी असंभव है ॥१४०॥ शीलव्रत पालन करनेसे सदा चारित्रकी वृद्धि होती रहती है, नरकादिक दुर्गतियोंके मार्ग बंद होजाते हैं और व्रतोंकी रक्षा होती है। यह शीलव्रत अनेक गुणरूपी वनको बढ़ानेके लिये मेघकी धाराके समान है ॥१४१॥ यह शीलव्रत मोक्षरूपी स्त्रीको देनेवाला है और सबसे उत्तम है। जो पुरुष ऐसे इस शीलव्रतका पालन नहीं

कांता वृणोति तम् । निखिलसुखसंदात्री पुनरागमवारिका ॥१३७॥ समृद्धी रुचिरा योषित्सुगतिः शुभ्रकीर्तयः । धर्मवृद्धिः प्रजायंते नृणामस्तेयतः सदा ॥ १३८ ॥ तस्करकर्मतो मूढा सुखदा भूरिसंपदः । इच्छंति शोभनं ते हि पद्मवनं धनंजयात् ॥१३९॥ अजीर्णनिवृत्तिर्भपात्सूर्यहीनं दिनं यदि । वालुकामथनात्तैलं भवेत्तत्कर्मतो वृषः ॥१४०॥ चारित्रवर्द्धनं नित्यं दुर्गतिद्वाःकपाटकम् । गुणौघवनजीमूतं सुशीलं व्रतरक्षणम ॥१४१॥ नो पालयति यः शीलं मुक्तिकांताप्रदं

करना है वह तीनों लोकोंमें अपने यशको नष्ट करता है ॥१४२॥ ब्रह्मचर्यका पालन न करनेसे समस्त संपदाएं नष्ट होजाती हैं, सब प्रकारकी आपत्तियां आजाती हैं और अनेक प्राणियोंकी हिंसा होती है ॥ १४३ ॥ जो मनुष्य इस शुभ शीलव्रतको पालन करता है वह मोक्षका स्वामी होता है। यह शीलव्रत पापरूपी कीचड़को धोनेके लिये मेघकी धाराके समान है और कुलके समस्त कलंकोंको नाश कर देनेवाला है ॥१४४॥ जो मनुष्य शीलव्रत पालन करता है वह स्वर्गमें जाता है और वहांपर सुंदर विलासोंको धारण करनेवाली अनेक देवियां उसकी सेवा करती हैं॥ १४५ ॥ इस शीलव्रतके माहात्म्यसे अग्नि बरफ होजाती है, शत्रु मित्र होजाते हैं और सिंह मृगके समान होजाते हैं ॥ १४६ ॥ जिसप्रकार विना लवणके भोजन व्यर्थ है (स्वादिष्ट नहीं होता) उसी प्रकार विना शील पालन किये गुणोंको बढ़ानेवाले समस्त व्रत व्यर्थ होजाते हैं ॥१४७॥ जिसप्रकार घीके विना भोजन

चरम्। सो यशोभाजको नित्यं भवेऽत्त्रैलोक्यमध्यके ॥१४२॥ निःशेपसंपदां हर्तृ मंदिरं सकलापदाम्। हिंसनं प्राणिवर्गाणामस्त्यब्रह्मव्रतं सदा ॥ १४३ ॥ पालयति शुभ शीलं यः स मुक्तिवरो भवेत्। पापपंकांबुदं श्लाघ्यं कुलकलंकनाशनम् ॥ १४४ ॥ शीलव्रतान्वितो यस्तु लोके स भज्यते दिवि । सुरसीमतिनीवृंदैश्चारुविभ्रमधारणैः ॥१४५॥ सुशीलव्रतमाहात्म्यादग्निस्तुषारतां व्रजेत्। अरातिर्मित्रतां चापि सिंहादिर्मृगतुल्यताम् ॥ १४६ ॥ सुव्रतानि समस्तानि गुणदानानि वै वृथा। विना शीलेन जायंते लेपानिर्लवणेन वा ॥१४७॥

शोभा नहीं देता, ज्ञानके विना तपस्वी शोभा नहीं देता और पतिके विना सुंदर स्त्री शोभा नहीं देती उसी प्रकार विना शील पालन किये मनुष्य भी शोभा नहीं देता ॥ १४८ ॥ जो मनुष्य शील पालन करते हैं उनके विघ्न भी उत्सवका रूप धारण कर लेते हैं। शीलव्रतको पालन करनेवाले सेठ सुदर्शनकी पूजा अनेक देवोंने मिलकर की थी ॥ १४९ ॥ परिग्रह पापोंका घर है, परिणामोंमें कलुपता उत्पन्न करनेवाला है और नीति तथा दयाको नाश करनेवाला है। जो इसे धारण करने हैं उनके परिणाम कभी अच्छे नहीं होसकते ॥१५०॥ यह परिग्रह एक प्रकारकी नदीका पूर है। यह पूर क्या क्या अनर्थ नहीं करता है अर्थात संसारमें जितने अनर्थ होते हैं वे सब परिग्रहसे ही होते हैं। यह पूर धर्मरूपी वृक्षोंको उखाड़ फेकता है और लोभरूपी समुद्रको बढ़ा देता है ॥१५१॥ यह परिग्रहरूपी पूर मनरूपी हंसोंको भय उत्पन्न करता है, मर्यादारूपी किनारेको तोड़ देता है, रागरूपी मछलियोंसे भर जाता है और तृष्णारूपी तरंगोंसे

घृतं विना यथा भोज्यं विना ज्ञानेन तापसः। भर्त्रा विना शुभा नारी शीलेनर्ते तथा नरः ॥१४८॥ विघ्नोप्युत्सवतां याति शीलव्रतयुतस्य नुः। पूजितस्य सुरस्तोमैः श्रेष्ठिसुदर्शनस्य वा ॥१४९॥ परिग्रहमघागारं ते गृह्णंति दुराशयाः। कालुष्योत्पादकं नित्यं नीतिदयाविनाशकम् ॥ १५० ॥ परिग्रहनदीपूरः किं न करोत्यनर्थकम्। पातको धर्मवृक्षाणां लोभसागरवर्द्धकः ॥१५१॥ भयदो चित्तहंसानां मर्यादाकूलभंजकः। रागमत्स्यसमायुक्तस्तृष्णातरंगसंकुलः ॥ १५२ ॥

लहर लेता रहता है ॥१५२॥ यह परिग्रह क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायोंको उत्पन्न करनेवाला है, मार्दव (कोमलता) रूपी मेघको उड़ानेके लिये वायुके समान है और नयरूपी कमलोंको नाश करनेके लिये तुषारके समान है। ऐसे इस परिग्रहकी भला कौन इच्छा करेगा ॥ १५३ ॥ यह परिग्रह व्यसनोंका घर है। सब पापोंकी खानि है और शुभ ध्यानको नाश करनेवाला है ऐसे इस परिग्रहको कौन बुद्धिमान् पुरुष ग्रहण कर सकता है ॥ १५४ ॥ जिसप्रकार अग्नि ईंधनसे तृप्त नहीं होती, समुद्र जलसे तृप्त नहीं होता और देव भोगोंसे तृप्त नहीं होते उसी प्रकार यह मनुष्य अपार धनसे भी तृप्त नहीं होता है ॥ १५५ ॥ जो मनुष्य इस परिग्रहसे रहित हैं वे ही इस संसारमें सर्वोत्तम गिने जाते हैं। वे ही पुरुष चतुरताके साथ धर्मरूपी वृक्षको उत्पन्न करते हैं और वे ही पुरुष इस जैनधर्मका प्रकाश करते हैं ॥ १५६ ॥ इस-प्रकार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांचों व्रतोंको मुनिराज पूर्ण रीतिसे पालन करते हैं और घरमें रहनेवाले गृहस्थ एक देश वा अणुरूपसे पालन

इच्छेत्परिग्रहं को ना क्रोधमानादिकारकम्। मार्दवजलमुग्वातं नय-पद्मतुषारकम् ॥१५३॥ केन परिग्रहो ग्राह्यो व्यसननिलयः सदा। खनिः समस्तपापानां शुभध्याननप्रणाशकः ॥१५४॥ नो तृप्यति यथा वह्निरिंधनैरंबुधिर्जलैः। देवगणो यथा भोगैस्तथा बहुधनैर्नरः ॥१५५॥ ये हि परिग्रहैर्हीना उत्तमास्ते प्रकीर्तिताः। धर्मवृक्षार्जने दक्षा जिनमार्ग-प्रकाशकाः ॥ १५६ ॥ पंचव्रतानि चैतानि संपूर्णानि मुनीश्वराः।

करते हैं ॥ १५७ ॥ जो मुनिराज शरीरसे भी मोह नहीं करते, जो हिंसा आदि पांचों पापोंसे सदा विरक्त रहते हैं और कर्मोंको नाश करनेमें सदा तत्पर रहते हैं उन्हें शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति होजाती है ॥ १५८ ॥ जिनमें मन, वचन, कायको वश करनेकी शक्ति है और जिन्होंने इंद्रियोंके विषयोंकी सर्वथा आशा छोड़ दी है ऐसे ही महापुरुष इस संसारमें मुनि कहलाते हैं ॥ १५९ ॥ जिन्होंने धर्म पुरुषार्थको नाश करनेवाले और अनेक प्रकारके दुःख देनेवाले मनरूपी घरका (अन्तरङ्ग परिग्रहोंका) त्याग कर दिया है उन्हीं महापुरुषोंको मोक्षरूपी स्त्री स्वीकार करती है ॥१६०॥ शुभध्यानमें तत्पर रहनेवाले मुनिराज ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग इन पांचों समितियोंको सदा पालन करते रहते हैं और सदा इन्हींके अनुसार चलते रहते हैं ॥१६१॥ जिसप्रकार उदय होते हुए सूर्यकी किरणोंसे रात्रिका अंधकार सब क्षणभरमें नष्ट होजाता है उसीप्रकार अन्तरङ्ग बहिरंग दोनों प्रकारके तपश्चरणसे कर्मोंका समुदाय शीघ्र ही नष्ट हो

पालयंति गृहावासादणुमात्राणि गेहिनः ॥ १५७ ॥ येषां देहेऽपि नो वांच्छा कर्मध्वंशनकारिणाम् । हिंसादिषु विरक्तानां तेषां सिद्धिर्भवेद्द्रुतम् ॥१५८॥ मनोवचनकायानां वशीकरणशक्तयः । इंद्रियविषयानाशा यतयस्ते प्रकीर्तिताः ॥ १५९ ॥ मनोगृहेण ये मुक्ता भूरिपीडाप्रदायिना । धर्मार्थध्वंसकारेण मुक्तिवधूर्वृणोति तान् ॥१६०॥ ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गसंस्थिताः । गच्छंति मुनयो नित्यं शुभात्मध्यानतत्पराः ॥१६१॥ द्वैधेन तपसा शीघ्रं नश्यति कर्मसंचयः ।

जाता है ॥ १६२ ॥ जिस प्रकार बादलोंकी वर्षाके विना धान्योंकी अच्छी उपज नहीं होती उसीप्रकार विना उत्तम तपश्चरणके कर्मोंका नाश भी कभी नहीं होता है ॥ १६३ ॥ यह तपश्चरण अशुभकर्मरूपी पर्वतोंके समूहको नाश करनेके लिये वज्रके समान है और कामरूपी धधकती हुई अग्निको शांत करनेके लिये पानीके समान है ॥१६४॥ यह तपश्चरण इंद्रियोंके विषयोंके समूहरूपी सर्पोंको वश करनेके लिये मंत्रके समान है, समस्त विघ्नरूपी हिरणोंके समुदायको रोकनेके लिये जालके समान है और अन्धकारको नाश करनेके लिये दिनके समान है ॥ १६५ ॥ इस तपश्चरणके प्रभावसे देव मनुष्य, भवनवासी आदि देव सब सेवक बन जाते हैं और सिंह, सर्प, अग्नि, शत्रु, विपत्तियां आदि सब क्षण-भरमें दूर हो जाती हैं ॥ १६६ ॥ जिसप्रकार धान्योंके विना खेत शोभा नहीं देता, शृंगारके विना स्त्री शोभा नहीं देती और विना कमलोंके सरोवर शोभायमान नहीं होता

उद्यद्भास्करैश तमोवृंदमिव क्षणात् ॥१६२॥ सुतपसा विना हानिः कर्मणां नहि जायते। विना मेघेन सस्यानामुत्पत्तिर्न क्वचिद्भुवि ॥१६३॥ अशुभकर्मशैलौघप्रध्वंसकुलिशोपमम्। तपोऽस्ति कामसंतापिज्वलज्ज्वालाशमोदकम् ॥१६४॥ इन्द्रियविषयौघा हि वशीकरणमंत्रकं। विश्वविघ्नकुरंगौघकूटयंत्रं तमो दिनम् ॥ १६५ ॥ जायते किंकरा यस्मात्सुरासुरनरादयः। व्याघ्रव्यालानलामित्रविपदो यांति संक्षयं ॥१६६॥ सस्यहीनं यथा क्षेत्रं मंडनेन विना वधूः। अपद्मं न सरो भाति तथा मर्त्यस्तपो विना ॥ १६७ ॥ कर्मगण समाहर्त्यं

उसीप्रकार यह मनुष्य भी बिना तपश्चरणके शोभा नहीं देता ॥१६७॥ मुनिराज इस तपश्चरणके द्वारा दो तीन भवमें ही समस्त कर्मोंको नाश कर और केवलज्ञानको पाकर मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त होजाते हैं ॥१६८॥ धर्मोपदेश देनेवाले और देवेन्द्र, नरेन्द्र, नागेन्द्र आदि सबके द्वारा पूज्य ऐसे अरहंत-देव इस तपश्चरणके ही प्रभावसे होते हैं ॥१६९॥ वे भगवान् अरहन्तदेव, श्रीअरहन्तदेवके नामको स्मरण करनेमें तल्लीन रहनेवाले और जैनधर्मके अनुसार पुण्य सम्पादन करनेवाले भव्यजीवोंको इस संसाररूपी महासागरसे शीघ्र ही पारकर देते हैं ॥१७०॥ जो भूख, प्यास अठारह दोषोंसे रहित हो, रागद्वेषसे रहित हो समवसरणकी बारहों सभाका स्वामी हो और संसाररूपी समुद्रसे पार कर देनेके लिये जहाजके समान हो, वह देव कहलाता है ॥ १७१ ॥ जो बुद्धिमान् पुरुष ऐसे अर्हतदेवके चरणकमलोंकी पूजा रात दिन करते हैं उनके पाप सब क्षणभरमें ही नष्ट होजाते हैं ॥१७२॥ यह भगवान् जिनेंद्रदेवकी पूजा, रोग और पापोंको दूर करनेवाली है, शुभ

केवलज्ञानमाप्य च। तपसा योगिनो द्वित्रिभवैर्याति शिवश्रियम् ॥१६८॥ अर्हंतोऽपि प्रजायंते सुतपसः प्रभावतः। धर्मोपदेशकर्तारः सुरासुरेंद्र-संस्तुताः ॥ १६९ ॥ ते तारयंति भव्यौघान् संसारजलवारिधौ। तन्नामस्मरणे सक्तान् जैनसुकृतधारिणः ॥१७०॥ दोषमुक्तो गणाधारो रागद्वेषादिवर्जितः। भवाब्धितारणे पोतः स देवः कथितो जिनैः ॥१७१॥ तत्पदपूजनं प्राज्ञा ये कुर्वंति दिवानिशम्। तेषां प्रविलयं पंकं प्रयाति क्षणमात्रतः ॥१७२॥ हारिणी रुजपापानां शुभा संपद्वि-

है, सम्पत्तियोंको बढ़ानेवाली है, पुण्यका संचय करनेवाली है और स्वर्ग मोक्षको देनेवाली है ॥ १७३ ॥ यह भगवान् जिनेंद्रदेवकी पूजा संसाररूपी समुद्रसे पार करदेनेवाली है, अत्यन्त मनोहर है तथा यश और सौभाग्यको बढ़ानेवाली है। ऐसी भगवानकी इस पूजाको जो लोग करते हैं उनके घर इन्द्र भी आकर नृत्य करता है ॥१७४॥ भगवान् जिनेन्द्रदेवके चरणकमलोंकी सेवा करनेसे संसारमें सबसे गाढ़ मित्र होता है, आज्ञाकारी पुत्र होते हैं, हाव, भाव, विलास आदिसे सुशोभित सुन्दर स्त्री प्राप्त होती है और समस्त पृथ्वीका राज्य प्राप्त होता है ॥१७५॥ यह भगवानके चरणारविंदोंकी पूजा शत्रुओंका नाश करनेवाली है, दुर्गतिरूपी बेलको नाश करनेके लिये हथिनीके समान है, इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली कामधेनुको उत्पन्न करनेवाली है, बहुत ही मनोहर है और सब प्रकारसे शुभ करनेवाली है ॥१७६॥ जो पुरुष भगवान् जिनेंद्रदेवकी पूजा करता है वह सुमेरुपर्वतके मस्तकपर सब देव, भुवनत्रिक और इन्द्रोंके द्वारा पूजा जाता है ॥ १७७ ॥

धायिका। नाकमुक्ति ददात्येव जिनार्चा पुण्यवर्द्धिनी ॥ १७३ ॥ भवाब्धितारिणी कांतां यशसौभाग्यकारिणीम्। पूजां ये कुर्वते तेषां शक्रो नृत्यति तद्गृहे ॥१७४॥ वह्वीः प्रीतिः सुपुत्राश्च वधूर्विभ्रमधारिणी। राज्य निःशेषमेदिन्या स्युस्तच्चरणसेवनात् ॥१७५॥ विपक्षदलनी चार्वी दुर्गतिलतिकाद्विपी। प्रसूति कामधेनूना तदर्चा शुभकारिणी ॥ १७६ ॥ तत्सेवा कुरुते यस्तु त्रिदशेंद्रै स पूज्यते। सुरासुरौघसयुक्तैः कनत्काचनमस्तके ॥१७७॥ अर्हद्भ्यो नम इत्युच्चै-

जो मनुष्य "अर्हद्भ्योनमः" "भगवान अर्हतदेवके लिये नमस्कार हो" इसप्रकार ऊंचे शब्दोंसे उच्चारण करते हैं वे मनुष्य सबसे उत्तम गिने जाते हैं, प्रशंसनीय माने जाते हैं, यशस्वी होते हैं और इस भवसागरसे पार होजाते हैं॥१७८॥ परमात्माकी स्तुति करनेसे जो पुण्यका समुदाय उत्पन्न होता है उसका वर्णन करनेके लिये केवली भगवानके सिवाय और कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥ १७९ ॥ जो मनुष्य परमात्माकी निंदा करते हैं वे आठों कर्म और क्रूरजीवोंसे भरे हुए इस संसाररूपी वनमें पाप और दुःखोंसे अत्यन्त दुःखी होकर सदा परिभ्रमण किया करते हैं ॥१८०॥ नीच मनुष्य, रागद्वेष आदि दोषोंसे भरपूर और लोभरूपी पिशाचसे जकड़े हुए यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच आदि कुदेवोंकी सेवा किया करते हैं ॥ १८१ ॥ मिथ्याशास्त्रोंसे ठगे हुए मनुष्य, पुत्र वा धन आदिकी इच्छा करके बड़, पीपल वा कूआ आदिकी पूजा किया करते हैं अथवा कुलदेवियोंकी पूजा किया करते हैं ॥ १८२ ॥ जो मुनिराज

रुच्चरंति नरोत्तमाः । ये ते श्लाघ्या यशोभाजस्तरंति भवसागरम् ॥ १७८ ॥ परमात्मस्तुतेर्जातं यत्सुकृतकदंबकम् । तद्वक्तुं कः समर्थोऽस्ति नरः केवलिना विना ॥१७९॥ कर्माष्टक्रूरजीवाढ्ये किल्विषक्लेशपूरिताः । प्रभ्रमंते भवारण्ये तन्निंदया नराः सदा ॥ १८० ॥ यक्षभूतपिशाचादीन् रागादिदोषसंयुतान् । देवान् लोभग्रहग्रस्तान् मन्वते मानवाऽधमाः ॥१८१॥ वटपिप्पलकूपादीन् सेवंते कुलदेविकाः । कुशास्त्रवंचिताः मर्त्याः पुत्रादिधनमिच्छया ॥१८२॥ सम्यग्दर्शनसंशुद्धाः

सम्यग्दर्शनसे अत्यन्त शुद्ध हैं, सम्यक्चारित्रसे सुशोभित हैं और अपने आत्माको तथा अन्य सब जीवोंको तारनेके लिये सदा तत्पर रहते है वे मुनिराज ही विद्वानोंके द्वारा गुरु माने जाते हैं ॥१८३॥ जिन गुरुओंसे मिथ्याज्ञानका नाश होता है और जो धर्म, अधर्मका उपदेश देनेवाले हैं, वे ही गुरु भव्य जीवोंको सेवन करने योग्य है ॥ १८४ ॥ इस नरकरूपी गढ़ेमें पड़े हुए जीवोंको गुरुके विना माता, पिता, भाई, बंधु आदि कोई भी नहीं निकाल सकता ॥ १८५ ॥ जो अनेक प्रकारके आरम्भ करते हैं, जो मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्रसे दूषित हैं और जिनका हृदय कामसे व्याकुल रहता है, ऐसे पाखण्डी कभी गुरु नहीं माने जासकते ॥१८६॥ जो क्रोध आदि कषायोंसे भरपूर हैं, जो क्रूर हैं, जिनका हृदय मिथ्याशास्त्रोंमे आसक्त रहता है और जो संसाररूपी महासागरमें स्वयं डूब रहे हैं, वे दूसरे लोगोंको किस तरह तार सकते हैं ॥ १८७ ॥ जो लोग भगवान् जिनेन्द्रदेवकी वाणीको नहीं सुनते हैं, वे देव, अदेव, धर्म, अधर्म, गुरु,

---

सच्चारित्रविभूषिताः। स्वपरतारणे शक्ताः गुरवस्ते मता बुधैः ॥१८३॥ कुबोधनाशनं येभ्यो भवति भव्यदेहिभिः। त एव गुरवः सेव्याः प्रोक्तारो वृषपापयो ॥१८४॥ नरककुहरे जंतून् निपततो गुरोर्विना। न रक्षितुमलं केचित् मातृपित्रादिबांधवाः ॥१८५॥ बह्वारंभसमायुक्ताः मिथ्यादृग्ज्ञानदूषिताः। कामाकुलितचेतस्काः गुरवस्ते कथं मताः ।१८६। क्रोधादिपूरिताः क्रूराः कुशास्त्रासक्तचेतसः। ये ब्रुडंति भवाब्धौ ते तारयंति परान् कथम् ॥ १८७ ॥ देवादेवं वृषाधर्मं गुरुं चाप्यगुरुं

कुगुरु और हित, अहित आदि कुछ भी नहीं जानते हैं ॥१८८॥ जो लोग अन्यमतके समान ही जैनधर्मको समझते हैं वे लोहेके समान मणिको समझते हैं, पानीके समान अग्निको समझते हैं और अंधकारको दिनके समान समझते हैं ॥१८९॥ जिस पुरुषने अपने कानोंसे भगवान सर्वज्ञदेवके कहे हुए वचन नहीं सुने हैं, उसके जन्मको मुनिराज इस संसारमें व्यर्थ ही समझते हैं ॥ १९० ॥ जिसप्रकार शूकर आदि पशुओंका जन्म व्यर्थ समझा जाता है उसी प्रकार जिस पुरुषने अपने हृदयमें सुख देनेवाले भगवान जिनेंद्रदेवके वचन धारण नहीं किये, उसका जन्म भी व्यर्थ ही समझना चाहिये॥ १९१ ॥ जिस पुरुषने मोक्षके सुख देनेवाली भगवान जिनेंद्रदेवकी वाणी क्षणभर भी उच्चारण नहीं की उसकी जीभ विधाताने व्यर्थ ही बनाई समझो ॥ १९२ ॥ जिसमें तीनों लोकोंकी स्थितिका वर्णन हो, सात तत्त्व, नौ पदार्थोंका वर्णन हो, पांचों महाव्रतोंका वर्णन हो और धर्म, अधर्मका फल बतलाया गया हो वही विद्वानोंके द्वारा जिनवाणी बतलाई जाती है

तथा। हिताहितं न जानंति जिनवाग्वर्जिता नराः॥१८८॥ लोहसमं मणिं वारि वह्निवद्दिनवत्तमः। परमतनिभं ये ते मन्वते जिनदर्शनम् ॥ १८९ ॥ कर्णयोर्नश्रुतं येन सर्वज्ञास्योद्भवः वचः। वदंति मुनयो लोके तस्य जन्म निरर्थकम्॥१९०॥ येनापि न धृतं चित्ते जिनवचः सुखास्पदम्। वृथा जन्म गतं तस्य शूकरादिपशोर्यथा ॥ १९१ ॥ क्षणं नोच्चरिता येन जिनवाणी शिवप्रदा। मुधैव निर्मिता तस्य रसना विश्वकर्मणा ॥१९२॥ त्रैलोक्यस्थितितत्त्वार्थसर्वमहाव्रतान्वि-

अर्थात् उसीको जिनवाणी कहते हैं ॥ १९३ ॥ जिसप्रकार सूर्यके उदय हुए विना संसारके पदार्थ दिखाई नहीं देते उसी प्रकार भगवान जिनेंद्रदेवके वचनोंके विना कभी ज्ञान नहीं हो सकता ॥१९४॥ इसप्रकार कहे हुए देव, शास्त्र, गुरुका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है। यह सम्यग्दर्शन मोक्षमार्गके लिये पाथेय (टोसा-मार्गमें खाने योग्य पदार्थ) है और नरकादि दुर्गतियोंके द्वार बन्द करनेके लिये मजबूत अर्गल (दरवाजेके भीतर किवाड़ोंके पीछे लगी हुई मोटी लकड़ी) है ॥१९५॥ बुद्धिमान् पुरुष बोधि शब्दसे सम्यग्दर्शनरूपी रत्नका ही ग्रहण करते हैं। यह सम्यग्दर्शनरूपी रत्न सूर्यके बिंबके समान अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश करनेवाला है और मिथ्या-नयोंका क्षय करनेवाला है ॥ १९६ ॥ जिसप्रकार ज्योतिके विना नेत्र शोभायमान नहीं होते, घीके विना भोजन शोभा-यमान नहीं होता और रात्रि चंद्रमाके विना शोभायमान नहीं होती उसीप्रकार विना सम्यग्दर्शनके व्रत भी शोभाय-मान नहीं होते ॥ १९७ ॥ जिस प्रकार देवोंमें इन्द्र श्रेष्ठ है,

---

तम् । धर्माधर्मफलं यत्र जिनवचो बुधैः स्मृतम् ॥१९३॥ जिनवचो विना बोधो न भवति कदाचन । सूर्योदयं विना लोके यथा पदार्थ-दर्शनम् ॥ १९४ ॥ एतेषु निश्चयो यत्र तत्सम्यक्त्वमुदीरितम् पाथेयं मुक्तिमार्गस्य दुर्गतिद्वारदृढार्गलम् ॥ १९५ ॥ बोधिद्रव्येण सम्यक्त्वरत्नं गृह्णन्ति सद्धियः । अहंस्तमो रवेःबिंबं दुर्नयक्षयकारकम् ॥ १९६ ॥ ज्योतिर्विना यथा नेत्रमघृतं भोजनं यथा । न शोभते निशाऽसोमा सम्यक्त्वेन विना व्रतम् ॥ १९७ ॥ शक्रः श्रेष्ठोऽस्ति

समस्त मनुष्योंमें चक्रवर्ती श्रेष्ठ है और समुद्रोंमें क्षीरसागर श्रेष्ठ है उसी प्रकार व्रतोंमें सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है ॥ १९८ ॥ जो मनुष्य सम्यग्दर्शनरूपी रत्नसे सुशोभित है वह चाहे भूखा ही हो (दरिद्री हो) तथापि उसे असन्त धनी समझना चाहिये। यदि सम्यग्दर्शनरूपी धनसे रहित राजा भी हो तथापि उसे निर्धन ही समझना चाहिये ॥ १९९ ॥ इस सम्यग्दर्शनके प्रभावसे मनुष्योंको राज्य-सम्पदा प्राप्त होती है, भोग उपभोगकी बहुतसी सामग्री प्राप्त होती है, उनके रोगादिक सब दुःख नष्ट हो जाते हैं, उनका हृदय सदा धर्ममें तल्लीन रहता है, सब लोग उनकी सेवा करते हैं, उनकी आयु पूर्ण होती है, आज्ञाकारी पुत्र होते हैं, हाथी, घोड़े, बैल आदि सब प्रकारकी सवारियां मिलती हैं, वे असंत धनी होते हैं, बड़े ही विद्वान् होते हैं, वे अपने तेजसे सूर्यको भी जीतते हैं, समस्त संसारमें उनकी कीर्ति फैल जाती है, वे अपने रूपसे कामदेवको भी लज्जित करते हैं, अनेक स्त्रियां उनकी सेवा करती हैं, इंद्र, चक्रवर्ती आदिके उत्तम पद उन्हें प्राप्त होते हैं,

---

देवेषु चक्री यथाखिले जने। क्षीरांबुधिः समुद्रेषु सम्यक्त्व च तथा व्रते ॥१९८॥ बुभुक्षितोऽस्ति वस्वाढ्यः सम्यक्त्वरत्नसंयुतः। नृपोपि दुर्विधःप्रोक्तो दर्शनधनवर्जितः ॥१९९॥ राज्यसंपत्तिसंयुक्ताः प्रचुरभोगधारिणः। रोगक्लेशविनिर्मुक्ता धर्मसंसक्तमानसाः ॥ २०० ॥ निखिलजनसंसेव्या दीर्घायुषः सुपुत्रिणः। दंतिवृषतुरंगाढ्या धनवंतः सुकोविदाः ॥ २०१ ॥ तेजसा जितमार्तंडा विष्टपव्याप्तकीर्तयः। रूपनिर्जितकंदर्पा कामिनीवृन्दसेविताः ॥२०२॥ इंद्रचक्रिपदारूढा

वे निधि और रत्नोंके स्वामी होते हैं, अत्यंत मनोहर होते है और चारों प्रकारके देव इन्हें नमस्कार करते हैं ॥२००-२०३॥ इस सम्यग्दर्शनके प्रभावसे मनुष्य तपश्चरणरूपी तलवारसे कर्मरूपी शत्रुओंके समूहको नाशकर, दो तीन भवमें ही मुक्त होजाते हैं ॥२०४॥ जहांपर इन देव, शास्त्र, गुरुकी निंदा की जाती है उसे मिथ्यादर्शन कहते हैं। इस मिथ्यादर्शनके प्रभावसे मनुष्योंको नरकादि कुयोनियोंमे पड़ना पड़ता है ॥ २०५ ॥ इस मिथ्यादर्शनके प्रभावसे जीव काने होते है, कुबड़े होते हैं, टेढ़े होने हैं, लंगड़े होते हैं, नकटे होते हैं, बौने होते हैं, बहरे होते हैं, गूंगे होते हैं, कोढ़ आदि अनेक रोगोंसे दुखी होते हैं, थोड़ी आयु पाते हैं, उनसे कोई स्नेह नहीं करता, वे पापी होते हैं, दरिद्री होते हैं, उन्हें बुरी स्त्री मिलती है, उनके पुत्र कुपुत्र होते हैं, वे दीन और दूसरोंके सेवक होते हैं और संसारमें सदा उनकी अपकीर्ति फैलती रहती है। इस मिथ्यादर्शनके ही प्रभावसे भूत, पिशाच, यक्ष, राक्षस आदि नीच व्यंतर देव होते है, कौवा बिल्ली, सूअर

रत्ननिधिसमन्विताः। सुरासुरनताः कांताः स्युः सम्यक्त्वयुताः नराः ॥२०३॥ तपःखड्गेन संहत्य कर्मसपत्नसंचयम्। द्विःत्रिभवैः शिवं यांति दर्शनव्रततो नराः ॥ २०४ ॥ एतेषां गर्हणा यत्र तन्मिथ्यादर्शनं मतम्। पतति प्राणिनस्तस्मान्नरकादिकुयोनिषु ॥ २०५ ॥ काणाः कुब्जास्तथा वक्राः पंगवो गतनाशिकाः। वामना वधिरा मूकाः कुष्टादिरोगसंयुताः ॥२०६॥ अल्पायुषो गतस्नेहाः पापाढ्या धनवर्जिताः। कुस्त्रियः कुसुता दीनाः परभृत्या अकीर्तयः ॥ २०७ ॥

आदि नीच जानवर होते हैं, क्रूर होते हैं और एकेंद्रिय वा निगोदमें उत्पन्न होते हैं ॥२०७-२०८॥ जो मनुष्य जिनालय (जिनमंदिर) बनवाते हैं वे मनुष्य इस पृथ्वीपर पूज्य और धन्य माने जाते हैं, सब मनुष्योंमें उत्तम गिने जाते हैं, सुंदर होते हैं और उनकी निर्मल कीर्ति समस्त संसारमें फैल जाती है ॥ २०९ ॥ खेत जोतना, कुएसे बहुतसा जल निकालना, जिसमें घोड़ा, बैल आदि जोतने पड़ें ऐसे रथ, गाड़ी आदि बनाना, घर बनाना, कूआ बनाना आदि हिंसाके आरंभ सब अधम पुरुष ही करते हैं ॥ २१० ॥ जो मनुष्य प्राणियोंकी हिंसाके दोषसे जिनालय बनवाना, भगवानकी पूजा करना आदि पुण्यकार्योंका निषेध करते हैं वे मनुष्य मूर्ख हैं और मरकर निगोदमें निवास करते हैं ॥ २११ ॥ जिसप्रकार विषकी छोटीसी बूंदसे महासागर दूषित नहीं होता उसीप्रकार मनुष्यको पुण्यकार्योंके करनेमें कोई दोष नहीं लगता ॥२१२॥ यदि कोई मनुष्य खेती आदि हिंसाके

व्यंतरा भूतयक्षाद्याः काकमार्जारशूकराः। एकेंद्रियादयः क्रूराः स्युर्मिथ्यात्वाच्छरीरिणः ॥ २०८ ॥ विदधते जिनागारान् ये ते पूज्याः महीतले। धन्या नरोत्तमाः कांता विशदकीर्तिधारिणः ॥ २०९ ॥ क्षेत्रोत्कर्षजलाकर्षरथादिवृषवाहनम् । गृहकूपाद्यमेतेषामारंभं कुर्वतेऽधमाः ॥ २१० ॥ जिनपूजा गृहारंभं प्राणिहिंसनदोषतः। ये वर्जयंति ते मूढा नित्येतरनिगोदिनः ॥ २११ ॥ पुण्यकृतो मनुष्यस्य नारंभो दोषभाग्भवेत्। विषकणो महासिंधोर्न किंचिद्दूषको यथा ॥२१२॥ क्षेत्रादिकं कृतः पुंस आरंभो दोषभाग्भवेत्। प्रचुरपयसो-

काम करता है तो उसे दोष अवश्य लगता है क्योंकि दूध चाहे कितना ही हो तथापि थोड़ीसी कांजी ही उसे बिगाड़ देती है ॥ २१३ ॥ जिसप्रकार सूर्यके उदय होनेसे रात्रिका अन्धकार सब नष्ट हो जाता है उसीप्रकार जो मनुष्य मन, वचन, कायकी शुद्धतापूर्वक तीनों प्रकारके पात्रोंको दान देता है उसके पापसमूह सब नष्ट होजाते है ॥२१४॥ पात्रोंको दान देनेसे परिणाम शांत होते हैं, आगमकी वृद्धि होती है, चारित्रकी वृद्धि होती है, सब तरहके कल्याण होते हैं, पुण्यकी प्राप्ति होती है और ज्ञानविनय उत्पन्न होता है ॥ २१५ ॥ पात्रोंको दान देनेसे रत्नत्रयादि गुणोंमें प्रेम होता है, लक्ष्मी वा धनकी प्रसिद्धि होती है. सब प्रकारसे आत्माका कल्याण होता है संसारमें सुख प्राप्त होता है और अनुक्रमसे स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥२१६॥ दान देनेसे ज्ञान बढ़ता है, कीर्ति बढ़ती है, सौभाग्य, बल, आयु, बुद्धि, कांति आदि सब गुण बढ़ते हैं, उत्तम स्त्रियां प्राप्त होती हैं और उत्तम सुपुत्रोंकी वृद्धि होती है ॥ २१७ ॥ जिस प्रकार गाय, भैंस आदि दूध देनेवाले पशुओंको घास खिलानेसे दूध उत्पन्न

ल्पीयो दोषाय कांजिकं यथा ॥२१३॥ दानं त्रिविधपात्रेभ्यो ददते यो विशुद्धितः । तेषां नश्यति पापौघं सूर्यान्निशातमो यथा ॥२१४॥ प्रशमागमचारित्रवर्द्धनं शुभदायकम् । सुकृतोत्पादनं दानं ज्ञानविनयकारकम् ॥२१५॥ गुणप्रीतिरमाख्यातिहितसंसृतसौख्यकम् । क्रमात्स्वर्गं च निर्वाणं जायंते पात्रदानतः ॥२१६॥ ज्ञानसुकीर्तिसौभाग्यःबलायुर्बुद्धिकांतयः । वरयोषित्सुपुत्राश्च वर्द्धंते दानतो ध्रुवम् ॥२१७॥

होता है उसी प्रकार सुपात्रोंको दान देनेसे चक्रवर्ती, इंद्र, नागेंद्र आदिके अपार सुख प्राप्त होते हैं ॥२१८॥ जो दान दीन दुखी पुरुषोंको दयापूर्वक दिया जाता है वह भी भगवान जिनेंद्रदेवने प्रशंसनीय कहा है और उससे भी मनुष्यपर्यायकी प्राप्ति होती है ॥ २१९ ॥ मित्र, शत्रु, राजा, दास, वैद्य, ज्योतिषी, भाट आदि लोगोंको जो कार्यके बदले दान दिया जाता है उसमे कोई पुण्य नहीं होता ॥२२०॥ जो कोढ़ी हैं, जिनके पेटमें दर्द है, शूल है, खांसी है, दमा है ऐसे रोगियोंको यथायोग्य रीतिसे औषधदान देना चाहिये ॥२२१॥ औषधदान देनेसे प्राणियोंको सुवर्णके समान सुंदर शरीर प्राप्त होता है, वे अपने रूपसे कामदेवको भी लज्जित करते है और सदा सब रोगोंसे दूर रहते हैं ॥ २२२ ॥ इसीप्रकार जो मनुष्य एकेंद्रिय आदि जीवोंको अभयदान देता है उसकी सेवा उत्तम स्त्रियां रात दिन करती रहती हैं ॥ २२३ ॥ इस

दत्तं दानं सुपात्रेभ्यो भूयिष्ठसुखदं भवेत । चक्रिनागेंद्रशक्राणां गोमहिष्यादिदुग्धवत् ॥२१८॥ दीनेभ्यो दीयते दान तच्च दयानिरूपणम् । श्लाघ्य जिनेश्वरैः प्रोक्तं नरभवादिदायकम् ॥२१९॥ मित्रारिभृपदासेयवैद्यदैवज्ञचारणाः । एभ्यो यद्दीयते दानं कार्यार्थं न तु पुण्यभाक् ॥ २२० ॥ कुष्टोदरव्यथाशूलस्वासकासादिरोगिणः । स्युस्तेभ्यो भेषजं दानं प्रदातव्यं यथोचितम् ॥२२१॥ लभंते प्राणिनस्तस्माच्छरीरं कनकोपमम् । रूपनिर्जितकंदर्प सर्वरोगविवर्जितम् ॥२२२॥ एकेंद्रियादिजीवेभ्योऽभय दानं प्रयच्छति । योऽसौ सीमंतिनीवृंदैः संश्रियते दिवानिशम् ॥ २२३ ॥ रणांगणे महारण्ये गिरौ

अभयदानके प्रभावसे युद्धके मैदानमें, गहन वनमें, पर्वतपर, नदियोंमें, समुद्रोंमे और सिंह, सर्प आदि घातक जीवोंमें भी सदा निर्भय रहता है ॥२२४॥ जो श्रीसर्वज्ञदेवके वदनारविंदसे प्रगट हुआ हो, जिसमें अहिंसा आदि व्रतोंका वर्णन हो और शिष्योंको धर्मकी शिक्षा देनेवाला हो, वह आर्हतमतमें शास्त्र कहलाता है ॥ २२५ ॥ जो मनुष्य ज्ञान बढ़ानेवाले शास्त्रोंको लिखा लिखाकर पात्रोंको देता है वह सब शास्त्रोंका पारगामी होजाता है ॥ २२६ ॥ अनेक प्रकारके अनर्थ करनेमें तत्पर रहनेवाले जो मनुष्य शस्त्र, लोहा, रस्सी, गाय, भैंस, ऊंट, घोडा, पृथ्वी, सोना, चांदी, सोनेकी वनी हुई गाय और स्त्रियां आदि पाप उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंको दान देते हैं वे महासागरके समान अनेक दुःखोंसे भरी हुई नरकादिक दुर्गतियोंमें पड़ते हैं ॥ २२७-२२८ ॥ शास्त्रदानके प्रभावसे जीव इन्द्र होते है। वहां वे भगवान तीर्थंकर परमदेवके कल्याणकोंमें लीन रहते हैं, अनेक देवियां उनकी सेवा करती हैं और

सरिति सागरे। सर्पादौ निर्भया जीवा जायंतेऽभयदानत ॥२२४॥ सर्वज्ञवक्त्रसजातमहिंसादिव्रतान्वितम्। शिष्यसद्धर्मदं यत्तच्छास्त्रं प्रोक्तं दिगंबरैः ॥ २२५ ॥ पात्रेभ्यो ददते शास्त्रं लेखयित्वा नरोत्तमाः। पटुत्वकारकं नित्यं ते स्युः सुशास्त्रपारगाः ॥ २२६ ॥ शस्त्रं लोहं तथा रज्जुर्गोमहिषीमयाहयः। भूमिकनकरूप्याणि स्वर्णनिर्मितगौः स्त्रियः ॥२२७॥ दुःखसागरपूर्णेषु महानर्थरताः सदा। एषां कुर्वंति ये दानं ते पतंति कुयोनिषु ॥ २२८ ॥ जिनकल्याणसरक्ता देवांगनौघसेविताः। नाकेशाः शास्त्रदानात्ते स्युः सागरोपमायुषः ॥२२९॥

सागरोंकी उनकी आयु होती है ॥२२९॥ वहांसे आकर वे मनुष्यभव पाते हैं। मनुष्यभवमें भी स्त्रियोंके सुख भोगते हैं, बड़े धनी होते हैं, यशस्वी और सौभाग्यशाली होते हैं, भगवान जिनेन्द्रदेवकी सेवामें लीन रहते हैं, पात्रदानमें अपना मन लगाते हैं, अपनी कांतिसे सूर्यको भी लज्जित करते हैं, सदा मधुरभाषण करते हैं, देव लोग भी उनके अनेक उत्सव मनाया करते हैं, दया आदि अनेक व्रतोंको धारण करते हैं, सब मनुष्योंमें उत्तम होते हैं, अंतमें संसार, शरीर भोगोंसे विरक्त होकर जिनदीक्षा धारण करते हैं, मुनि होकर भी वे सदा शास्त्रोंके अभ्यास करनेमें तल्लीन रहते हैं और परोपकार करनेमें तत्पर रहते हैं। फिर घोर तपश्चरण कर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, अनेक देशोंमें परिभ्रमण कर भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देते हैं और फिर चौदहवें गुणस्थानमें पहुंचकर मुक्त हो जाते हैं ॥ २३०-२३४ ॥ इन ऊपर लिखे व्रतोंके समान व्रत धारण करनेवाले श्रावकोंको रात्रि

मनुष्यत्वं पुनः प्राप्य भुंजते रमणीसुखम्। भूरिद्रविणसंयुक्ता यशः-सौभाग्यभागिनः ॥२३०॥ जिनसेवासमासक्ताः पात्रदानसुमानसाः। कांतितर्जितमार्तंडाः संततं मृदुभाषिणः ॥२३१॥ देवैः कृतमहोत्साहा दयादिव्रतिनो वराः। संसारभोगनिर्विण्णाः जिनदीक्षासमाश्रिताः ॥२३२॥ शास्त्राभ्यसनसंसक्ताः परोपकृतितत्पराः। केवलज्ञानिनस्ते स्युः कृत्वा सुदुस्सहं तपः ॥२३३॥ नानादेशान् परिभ्रम्य संबोध्य भव्यसंचयान्। चतुर्दशगुणस्थानं प्राप्य ते यांति निर्वृतिम् ॥२३४॥ निशाहारः परित्याज्यः श्रावकैर्व्रतधारिभिः। हिंसांगोऽहोलतामूलं

भोजनका भी परित्याग कर देना चाहिये क्योंकि रात्रिभोजन भी हिंसाका एक अंग, पापरूपी वेलकी जड़ है और स्वर्गादिक उत्तम गतियोंका नाश करनेवाला है ॥ २३५ ॥ रात्रिके समय जीवोंका संचार अधिक होता है इसलिये भोजनमें ऐसे छोटे छोटे कीड़े मिल जाते हैं जो नेत्रोंसे देखे भी नहीं जा सकते इसलिये धर्मबुद्धिको धारण करनेवाला ऐसा कौन पुरुष है जो ऐसा निंद्य रात्रिभोजन करे ॥ २३६ ॥ रात्रि-भोजन करनेके पापसे ये जीव सिंह, उल्लू, बिल्ली, कौआ, कुत्ते, गीध और मांसभक्षी भील आदि नीच योनियोंमे उत्पन्न होते है ॥२३७॥ जो शास्त्रोंको जाननेवाले विद्वान् पुरुष रात्रिमें चारों प्रकारके भोजनका त्याग कर देते हैं उन्हें एक महीनेमें पंद्रह दिनके उपवास करनेका फल प्राप्त होता है ॥ २३८ ॥ इसप्रकार मुनि और श्रावकोंके भेदसे वतलाये हुए दोनों प्रकारके धर्मोंको जो रात दिन धारण करते हैं वे इंद्र, चक्रवर्ती आदि उत्तम पदोंका उपभोग कर अवश्य ही मोक्षके अनुपम सुखको प्राप्त करते हैं ॥२३९॥ इसप्रकार भगवान महावीर-

---

सद्गतिक्षयकारक. ॥२३५॥ लोचनविषयैर्हीनं कृमिकीटादिसंकुलम् । निशायामशनं केन क्रियते धर्मबुद्धिना ॥२३६॥ सिंहोलूकाखुभुक्काकलोकशुनकगृध्रकाः । मासाशिनः प्रजायंते पुलिंदा निशिभोजनात् ॥२३७॥ त्यजंति चतुराहारं निशि ये शास्त्रकोविदाः। मासेन जायते तेषां फलं पक्षोपवासभाक् ॥२३८॥ इति द्विविधधर्मं ये प्रकुर्वन्ते दिवानिशम् । ते चक्र्यादिपदं भुक्त्वा मोक्षं यास्यंति निश्चितम् ॥२३९॥ तदा श्रेणिकभूपाद्याः मानवा जगृहुर्व्रतम् । केचिच्च श्रावका

स्वामीके उपदेशको सुनकर श्रेणिक आदि कितने ही राजा-ओंने और कितने ही मनुष्योंने व्रत धारण किये। कितने ही मनुष्योंने श्रावकोंके व्रत धारण कर लिये और कितने ही मनुष्योंने दीक्षा धारण कर ली ॥२४०॥ तदनन्तर संसार-रूपी समुद्रसे पार करदेनेके लिये जहाजके समान भगवान् गौतम गणधर श्रीमहावीरस्वामीके उपदेशानुसार भव्य-जीवोंको उपदेश देने लगे ॥ २४१ ॥ तदनन्तर वे मुनिराज गौतमस्वामी आठों कर्मरूपी शत्रुओंको नाश करनेके लिये, कल्याण करनेवाला, कामरूपी अग्निको शांत करनेके लिये जलके समान ऐसा उत्तम तपश्चरण करने लगे ॥ २४२ ॥ तपश्चरण करते करते किसी एक दिन वे गौतम मुनिराज एकांत प्रासुक स्थानमें विराजमान हुए। उस समय वे निश्चल ध्यानमें लीन थे और कर्मोंके नाश करनेका उद्योग कर रहे थे ॥२४३॥ प्रथम ही उन्होंने अधःकरण, अपूर्वकरण, अनि-वृत्तिकरण इन तीनों करणोंके द्वारा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व ये तीन दर्शन मोहनीयकी प्रकृ-तियां और अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय इसप्रकार सम्यग्दर्शनको घात करनेवाली सातों प्रकृ-

---

जाताः केचिच्च प्रव्रजिता द्रुतम् ॥ २४० ॥ अथ श्रीवीरवाक्येन बोधयामास मानवान् । स गौतमो गणाधीशो भवाब्धितारपोतकः ॥२४१॥ ततो योगी करोतिस्म श्रेयस्करं तपः शुभम् । कर्माष्टशत्रु-नाशाय कामाग्निशमनोदकम् ॥ २४२ ॥ कदाचित्प्रासुके देशे तस्थौ रहसि गौतमः । ध्यानाचलसमारूढः कर्मक्षयकृतोद्यमः ॥ २४३ ॥

तियोंका नाश किया अर्थात् इनको नाश कर वे क्षपकश्रेणीमें आरूढ़ हुए ॥२४४॥ फिर वे मुनिराज अपने ध्यानके बलसे तिर्यंच आयु, नरकायु और देवायुको नाशकर शेष कर्मोंको नाश करनेके लिये नौवें गुणस्थानमें जा विराजमान हुए ॥२४५॥ वहांपर उन्होंने स्थावर नामकर्म, एकेंद्रिय जाति, द्वींद्रिय जाति, तेइंद्रिय जाति, चौइंद्रिय जाति, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, साधारण आतप, उद्योत, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि और सूक्ष्म नामकर्म ये सोलह प्रकृतियां नौवें गुणस्थानके पहले अंशमें नष्ट कीं। फिर अप्रत्याख्यानावरण, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ इन आठ कषायोंको दूसरे अंशमें नष्ट किया, फिर नपुंसकलिंग, स्त्रीलिंग, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुल्लिंग, संज्वलन, क्रोध, मान, माया ये सब प्रकृतियां नष्ट कीं। संज्वलन, लोभ-प्रकृति, सूक्ष्मसांपराय नामके दशवें गुणस्थानमें नष्ट की। निद्रा, प्रचला बारहवें गुणस्थानके उपांत्य समयमें नष्ट कीं।

दर्शनमोहनीयस्य त्रिःप्रकृतीर्ननाश सः। चतुष्कं च कषायस्य करणत्रययोगतः ॥२४४॥ तिर्यग्नारकदेवायुर्जित्वा ध्यानबलान्मुनिः। नवमे च गुणस्थाने रुरोह क्षपणोद्यतः ॥२४५॥ स्थावरं च चतुर्जातीः सतिर्यग्नरकद्विकम्। साधारणातपोद्योतास्त्रिनिद्राः सूक्ष्मनामकम् ॥ २४६ ॥ षोडशप्रकृतीस्तत्र संहत्य प्रथमांशके। द्वितीयांशे स चिक्षेप कषायमध्यमाष्टकम् ॥ २४७ ॥ क्रमाच्चिक्षेप षण्ढत्वं स्त्रीत्वं हास्यादिषष्ठकम्। नृत्वं क्रोधं मुनेर्मानं मायां सज्वलनं तथा॥२४८॥

इसी बारहवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें पांचों ज्ञानावरण, शेषकी चारों दर्शनावरण और पांचों अन्तराय कर्म नष्ट किये ॥ २४८-२४९ ॥ इसप्रकार तिरेसठ प्रकृतियोंको नष्ट कर वे गौतम मुनिराज केवलज्ञानको पाकर तेरहवें गुणस्थानमें जा विराजमान हुए। वहांपर उन्हें अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य ये चारों अनन्तचतुष्टय प्राप्त हुए ॥२५०॥ इसी समय देवोंने गंधकुटीकी रचना की, उसमें वे केवली भगवान विराजमान हुए और इन्द्रादिक सब देव उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार करने लगे ॥२५१॥ सब मुनिराज, गणधर और राजाओंने बड़ी भक्तिसे श्रीगौतमस्वामीकी पूजा की, उन्हें नमस्कार किया और फिर वे सब अपने अपने योग्य स्थानपर बैठ गये ॥२५२॥ जिन गौतमस्वामीने अलोक सहित तीनों लोकोंको देखा है, जिन्होंने विषयोंका समुदाय सब नष्ट कर दिया है, जिन्होंने कामदेवको लीलापूर्वक नाश कर डाला है और जो ब्राह्मणवंशको सुशोभित करनेके लिये मणिके समान हैं ऐसे वे केवली भगवान श्रीगौतम-

---

लोभं संज्वलनं सूक्ष्मे संहत्य द्वादशे गुणे। निद्रायुग्म तथा विघ्नं सर्वावरणमाक्षिपत ॥२४९॥ क्रमेण केवलज्ञानं प्राप्य त्रयोदशं गुणम्। रुरोह गौतमो योग्यनंतज्ञानादिसंयुतः ॥ २५० ॥ देवनिर्मापितायां वै गंधकुट्यां प्रसंस्थितम्। भक्त्या केवलिनं नेमुः शक्राद्या निर्जरास्ततः ॥ २५१ ॥ अर्चयित्वा महाभक्त्या प्रणम्य स्वामिनं जिनम्। मुनीन्द्राः गणिनो भूपा यथास्थानमुपाविशन् ॥ २५२ ॥ दृष्टं येन जगत्त्रयं हि तरसा सालोकमुन्मीलितो, येनाहो विषयव्रजो रतिप-

स्वामी तुम लोगोंको शुभ और मोक्ष प्रदान करनेवाला भव्य-ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान सदा देते रहें।

इसप्रकार मंडलाचार्य श्रीधर्मचंद्रविरचित श्रीगौतमस्वामी चरित्रमें श्रीगौतमस्वामीके केवलज्ञानकी उत्पत्तिको वर्णन करनेवाला यह चौथा अधिकार समाप्त हुआ।

अथ पांचवां अधिकार।

तदनन्तर परवादीरूपी हाथियोंके लिये सिंहके समान वे भगवान गौतमस्वामी भव्यजीवोंको आत्मज्ञान उत्पन्न करनेवाली उत्तम सरस्वतीको प्रगट करने लगे अर्थात् उनकी दिव्यध्वनि खिरने लगी ॥ १ ॥ दिव्यध्वनिमें प्रगट हुआ कि श्रीजिनेन्द्रदेवने जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व निरूपण किये हैं ॥ २ ॥ जो अंतरंग और बहिरङ्ग प्राणोंसे पहले भवोंमें जीता था, अब भी जीता है और आगे भी जीवेगा उसे जीव कहते हैं।

तिर्ध्वंसाद्धली हेलया। येन ब्राह्मणवंशमंडनमणिर्मुक्तिप्रद वः शुभं, सोऽय गौतमकेवली प्रकुरुतां भव्यप्रबोधं सदा ॥२९३॥

इति श्रीगौतमस्वामिचरिते श्रीगौतमकेवलज्ञानोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽधिकारः।

अथाऽसौ गौतमो योगी जगौ सरस्वतीं वराम्। परवादीभपंचास्यो भव्यजीवप्रबोधिनीम् ॥ १ ॥ जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरास्तथा। मोक्षश्च सप्ततत्त्वानि प्रोक्तानि श्रीजिनेश्वरैः ॥ २ ॥ पूर्वभवांतरे

यह जीव अनादिकालसे स्वयं सिद्ध है ॥ ३ ॥ यह जीव भव्य, अभव्यके भेदसे दो प्रकारका है, अथवा संसारी और सिद्धके भेदसे दो प्रकारका है, अथवा सेनी असेनीके भेदसे दो प्रकारका है अथवा त्रस और स्थावरके भेदसे दो प्रकारका है ॥ ४ ॥ इनमेंसे पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पांच स्थावरोंके भेद हैं और दोइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौइंद्रिय, पंचेंद्रिय, ये चार त्रसोंके भेद हैं ॥५॥ स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, और कर्ण ये पांच इंद्रियां हैं तथा स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द ये उन इंद्रियोंके विषय हैं ॥६॥ योनियां तीन प्रकारकी हैं, शंखावर्त, पद्मपत्र और वंशपत्र। इनमेंसे शंखावर्त योनिमें कभी गर्भ नहीं रहता यह बात निश्चित है ॥७॥ पद्मपत्र योनिसे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र आदि पदवीधर और साधारण पुरुष उत्पन्न होते हैं तथा वंशपत्र योनिसे साधारण मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं ॥८॥ जीवोंके जन्म तीन प्रकारसे

जीवद्यो जीविष्यति जीवति । बहिरभ्यंतरैः प्राणैर्जीवः सोऽनादिसिद्धकः ॥ ३ ॥ भव्याभव्यैर्द्विधा जीवः सिद्धाः संसारिणः पुनः । समनस्कामनस्काश्च त्रसस्थावरिणस्तथा ॥ ४ ॥ पंचधा स्थावरास्तत्र पृथ्वीजलाग्निवायवः । वनस्पतिस्तथा ज्ञेयास्त्रसाश्च द्वींद्रियादयः ॥५॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रेंद्रियाणि च । स्पर्शरसौ तथा गंधो वर्णः शब्दस्तदर्थकाः ॥६॥ शंखकुमुदवंशानामावर्तभेदतस्त्रिधा । योन्यस्तत्र चाद्यायां गर्भो नास्ति विनिश्चितम् ॥७॥ पद्मयोनौ जिनाश्चक्रिकेशवाः प्रतिशत्रवः । हलिनोऽपि प्रजायंते शेषायां विश्वमानवाः॥८॥

होते हैं, संमूर्च्छन गर्भ और उपपाद तथा उनकी योनियां सचित्त, अचित्त, सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण, शीतोष्ण, संवृत, विवृत, संवृतविवृत ये नौ प्रकारकी हैं ॥ ९ ॥ जिन जीवोंके ऊपर उत्पन्न होते समय जरा आती है, जो अंडेसे उत्पन्न होते हैं और जिनके ऊपर जरा नहीं आती और उत्पन्न होते ही भगने लग जाते हैं वे जरायुज, अंडज और पोत तीनों प्रकारके जीव गर्भसे उत्पन्न होते हैं तथा देव, नारकी उपपादसे उत्पन्न होते हैं और बाकीके सब जीव संमूर्च्छन उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥ ऊपर योनियोंके जो नौ भेद बतलाये हैं वे जिनागममें संक्षेपसे बतलाये हैं। यदि वे भेद विस्तारके साथ कहे जांय तो चौरासीलाख होते हैं ॥ ११ ॥ नित्य-निगोद, इतर निगोद, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्नि-कायिक और वायुकायिक इनकी सात सात लाख योनियां हैं इनमें जीव सदा परिभ्रमण किया करते हैं ॥ १२ ॥ वनस्पतिकायिक जीवोंकी दसलाख योनियां हैं। दो इंद्रिय, ते इंद्रिय चौ इंद्रिय इनकी दो दो लाख योनियां हैं। इनमें ये जीव

प्रसम्मूर्च्छनगर्भोपपादात्तेषा जनिस्त्रिधा । सचित्तशीतसंवृत्ता योनयो मिश्रसेतराः ॥९॥ जराद्यंडजपोतानां गर्भस्तथौपपादिकः । अमरनारकाणां च शेषाः सम्मूर्च्छिनो मताः ॥१०॥ योनयो नवधाः प्रोक्ताः सक्षेपतो जिनागमे । विस्तरेण तथा ज्ञेयाः चतुरशीतिलक्षिकाः ॥११॥ नित्येतरनिगोदेषु चतुः स्थावरकेषु च । द्विचत्वारिंशल्लक्षासु जीवो भ्राम्यति नित्यशः ॥ १२ ॥ दशलक्षाः हरित्काये षट् विकलेंद्रियेषु च। जन्ममरणदुःखानि तत्र भुंक्ते निरंतरम् ॥ १३ ॥ असुरोक्तांग-

सदा जन्ममरणके दुःख भोगा करते हैं ॥ १३ ॥ नारकियोंकी चार लाख योनियां हैं, ये परस्पर एक दूसरेको दुःख दिया करते हैं, क्षेत्रसंबंधी शीत और उष्णताके दुःख भोगा करते हैं, मानसिक व शारीरिक दुःख भोगा करते हैं और असुर कुमारदेवोंके द्वारा दिये हुए दुःख भोगा करते हैं। इसप्रकार पांच प्रकारके दुःख नारकी सदा भोगा करते हैं ॥ १४ ॥ तिर्यंचोंकी चार लाख योनियां हैं ये तिर्यंच भी वांधना, मारना, छेदना, भूख, प्यास, बोझाढोना, आदि अनेक प्रकारके दुःख भोगते हुए इन योनियोंमें परिभ्रमण किया करते हैं ॥ १५ ॥ मनुष्योंकी चौदह लाख योनियां हैं। इन योनियोंमें परिभ्रमण करते हुए मनुष्य भी इष्टवियोग और अनिष्टसंयोगसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके दुःख भोगा करते हैं। ॥ १६ ॥ इसीप्रकार देवोंकी चार लाख योनियां हैं इनमें परिभ्रमण करते हुए देव भी मानसिक दुःख भोगा करते हैं। हे राजन्! इस संसारमें कहीं भी सुख नहीं है ॥ १७ ॥ गर्भसे उत्पन्न हुए स्त्री पुरुष, स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुंसकलिंग तीनों लिंगोंको धारण करनेवाले होते हैं, देव और भोगभूमियां स्त्रीलिंग

हृत्क्षेत्रजातं परस्पराहतम्। दुःखं पंचविधं भुंक्ते चतुर्लक्षासु नारके ॥१४॥ तिर्यग्गतौ चतुर्लक्षे दुःखं भुंक्ते निरंतरम्। वधबंधनछेदोत्थं क्षुत्तृषाभारधारणम् ॥१५॥ इष्टवियोगतो जातं दुःखमनिष्टयोगतः। स चतुर्दशलक्षासु लभते मानुषे भवे ॥१६॥ देवगतौ चतुर्लक्षे दुःखं मानससंभवम्। स महीनाथ! कुत्रापि नास्ति शातं च संसृतौ ॥१७॥ गर्भजा नरतिर्यंचस्त्रिवेदगाश्च कल्पजाः। भोगभूमिसमुद्भूताः प्रभवंति

और पुल्लिंग दो ही लिगोंको धारण करनेवाले होते हैं ॥१८॥ एकेंद्रिय, दो इंद्रिय, ते इंद्रिय, चौइंद्रिय, सम्मूर्च्छनपंचेंद्रिय और नारकी ये सब नपुंसकलिग ही होते हैं ऐसा श्री-सर्वज्ञदेवने कहा है ॥ १९ ॥ एकेंद्रिय, दोइंद्रिय, ते इंद्रिय, चौ इंद्रिय इनके अनेक संस्थान होते हैं और सदा दुःखी रहनेवाले नारकियोंके हुंडक संस्थान होता है ॥ २० ॥ देव और भोगभूमियोंके समचतुरस्र संस्थान होता है और वाकी मनुष्य व तिर्यंचोंके छहों संस्थान होते हैं॥२१॥ उत्कृष्ट स्थिति (सबसे अधिक आयु) देव नारकियोंकी तीस सागर है, व्यन्तर व ज्योतिषियोंकी एक पल्य है, भवनवासियोंकी एक सागर है ॥२२॥ प्रत्येकवनस्पतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति दश हजार वर्ष है और सूक्ष्म वनस्पतियोंकी (साधारणवनस्प-तियोंकी) अन्तर्मुहूर्त है ॥२३॥ पृथ्वीकायिक जीवोंकी वाईस हजार वर्ष है, जलकायिक जीवोंकी सात हजार वर्ष है, वायुकायिक जीवोंकी तीन हजार वर्ष है और अग्निकायिक

द्विवेदगाः ॥ १८ ॥ एकाक्षा हुंडसस्थाना विकलाक्षा नपुंसकाः । सम्मूर्च्छजाश्च पचाक्षाः श्रीसर्वज्ञेन भाषिताः ॥१९॥ एकाक्षा विक-लाक्षाश्च बहुसंस्थानधारिणः । नारका हुंडसंस्थाना ज्ञातव्या दुःखिताः सदा ॥२०॥ समेन चतुरस्रेण संस्थानेन युताः सुराः । भोगभूजाश्च तिर्यंच षट्संस्थानभृतो नराः ॥ २१ ॥ स्थितिर्नारकदेवानां त्रयस्त्रि-शत्पराब्धयः । व्यतरज्योतिषां पल्यं वार्द्धिर्भवनवासिनाम् ॥ २२ ॥ समा दशसहस्राणि सत्प्रत्येकवनस्पतेः । परा स्थितिश्च सूक्ष्माणामंत-र्मुहूर्तं इष्यते ॥२३॥ द्वाविंशतिसहस्राणि सप्त च भूमिवारिणाम् ।

जीवोंकी तीन दिनकी उत्कृष्ट स्थिति है ॥ २४ ॥ द्वींद्रिय जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति बारह वर्ष है और तेइंद्रिय जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति श्रीजिनागममें उनंचास दिनकी बतलाई है ॥२५॥ चतुरिंद्रिय जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति छह महीनेकी है और पंचेंद्रिय जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यकी है तथा इन्हींकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्तकी है ॥ २६ ॥ जिनागममें द्रव्य छह बतलाये हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल। इनमेंसे धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये चार द्रव्य अजीव भी हैं और काय (बहुप्रदेशी) भी हैं ॥२७॥ इन छहों द्रव्योंमेंसे पुद्गलद्रव्य रूपी है और बाकी सब अरूपी हैं तथा सभी द्रव्य नित्य हैं। जीव और पुद्गल दो द्रव्य क्रियावाले हैं और बाकी चार द्रव्य क्रिया रहित हैं ॥२८॥ धर्म, अधर्म और एक जीवके असंख्यात प्रदेश हैं, पुद्गलोंमें संख्यात, असंख्यात और अनंत तीनों प्रकारके प्रदेश हैं, आकाशके अनंत प्रदेश हैं और कालका एक एक प्रदेश है ॥ २९ ॥ दीपकके प्रकाशके समान जीवोंके प्रदेशोंमें भी

पवनानां परा त्रीणि स्थितिर्वन्हेर्दिनत्रयम् ॥ २४ ॥ द्वादशवत्सराः प्रोक्ता द्वींद्रिये च परा स्थितिः। त्र्यक्षे चैकोनपंचाशद्दिनानि श्रीजिनागमे ॥२५॥ चतुरक्षे च षण्मासा उत्कृष्टायुःस्थितिर्मता। पंचाक्षे त्रीणि पल्यानि जघन्यांतर्मुहूर्तिका ॥२६॥ अजीवकायका धर्माधर्माकाशानि पुद्गलाः। जीवाः द्रव्याणि कालश्च षट् प्रोक्तानि जिनागमे॥२७॥ अरूपाणि च नित्यानि रूपिणः पुद्गलास्तथा। निष्क्रियाणि च चत्वारि क्रियिणौ जीवपुद्गलौ ॥ २८ ॥ धर्माधर्मैकजीवानामसंख्येयाः

संकोच होने और फैलनेकी शक्ति है। इसीलिये वह छोटे वड़े शरीरमें जाकर शरीरके आकारका होजाता है। शरीर, वचन, मन और श्वासोच्छ्वास पुद्गलके उपकार हैं। पुद्गल इनके द्वारा जीवोंका उपकार करता है ॥ ३० ॥ जिसप्रकार मछलियोंके चलनेमें जल सहायक होता है उसी प्रकार जीव तथा पुद्गलोंके चललेनेमें धर्मद्रव्य सहायक होता है तथा जिस-प्रकार पथिकोंके ठहरनेके लिये छाया सहायक होती है उसी प्रकार जीव व पुद्गलोंके ठहरनेमें अधर्म द्रव्य सहायक होता है ॥३१॥ द्रव्योंके परिवर्तन होनेमें जो कारण है उसको काल कहते हैं। वह क्रिया, परिणमन, परत्वापरत्व (छोटा वड़ापन) इनसे जाना जाता है। अर्थात् क्रिया (हवा बादलोंका चलना) परिणमन (रूपांतर होना) और परत्वापरत्व (१९ वर्षका वड़ा १० वर्षका छोटा) यह कालका उपकार है। सब द्रव्योंको अवकाश देना आकाशद्रव्यका उपकार है ॥ ३२ ॥ द्रव्यका लक्षण सत् है। जो प्रतिक्षण उत्पन्न होता हो, नष्ट होता हो और ज्योंका त्यों वना रहता हो उसे सत् कहते हैं।

प्रदेशकाः। पुद्गलानां त्रयोऽनंताः स्वस्य कालस्य चैककः ॥ २९ ॥ प्रसंहारविसर्पाभ्यां प्रदेशानां प्रदीपवत्। जीवः शरीरवाक्चित्तप्राणा-पानाश्च पुद्गले ॥ ३० ॥ धर्माधर्मौ गतिस्थित्योर्जीवपुद्गलयोर्मतौ। जलछाये यथा मत्स्यपांथयोः सहकारिणौ ॥३१॥ द्रव्यप्रवर्तनारूप-परत्वापरत्वेन च। अनुमेयश्च कालोऽयमाकाशं चावगाहनम् ॥३२॥ गुणपर्ययवद्ध्रौव्योत्पादव्ययुतं च सत्। तद्द्रव्यलक्षणं शुद्धं श्रीस-र्वज्ञेन भाषितम् ॥३३॥ शरीरवाङ्मनःकर्म योगौ यौ च शुभाशुभौ।

अथवा जिसमें गुण हों और पर्यायें हों उसको द्रव्य कहते हैं। संसारमें जितने पदार्थ हैं उन सबकी पर्यायें वदलती रहती हैं। पर्यायोंका वदलना ही उत्पाद व्यय है तथा द्रव्यमें गुण सदा बने रहते हैं इसलिये गुणोंकी अपेक्षासे द्रव्यमें ध्रौव्यपना रहता है। इसप्रकार जिसमें गुण पर्याय हों अथवा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य हों उसको द्रव्य कहते हैं ऐसा श्रीसर्वज्ञदेवने कहा है ॥ ३३ ॥ मन, वचन, शरीरकी क्रियाको योग कहते हैं। वह योग शुभ और अशुभके भेदसे दो प्रकारका है। शुभयोग अर्थात् मन, वचन, कायकी शुभ क्रियाओंको पुण्य कहते हैं और अशुभ-योग वा अशुभ क्रियाओंको पाप कहते हैं ॥३४॥ मिथ्यात्व, अविरत, योग और कषायोंसे जो कर्म आते हैं उसे आस्रव कहते हैं। इनमेंसे मिथ्यात्व पांच प्रकारका है, अविरत वारह प्रकारका है, योग पंद्रह प्रकारका है और कषायके पच्चीस भेद हैं ॥३५॥ एकांत, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान ये पांच मिथ्यात्वके भेद कहलाते हैं ॥ ३६ ॥ छह प्रकारके जीवोंकी रक्षा न करना और पांचों इंद्रिय तथा मनको वशमें न करना, इंद्रियोंके विषयोंमें लगे रहना, इसप्रकार असंयमके

पुण्यपापास्रवौ ज्ञेयौ तौ सर्वज्ञेन भाषितौ ॥३४॥ मिथ्यात्वाविरतेर्योगात्कषायादास्रवो भवेत्। पंचद्वादशतद्भेदाः सप्ताष्टौ पंचविंशतिः॥३५॥ एकांतो विपरीतश्च विनयः संशयस्तथा। अज्ञानं चेति मिथ्यात्वं पंचविधं प्रकीर्तितम् ॥ ३६ ॥ षड्जीवकायपंचाक्षमनोविषयभेदतः। असंयमो जिनाधीशैः संप्रोक्तो द्वादशो विधः ॥३७॥ सत्यासत्योभयानां

वा अविरतके बारह भेद श्रीसर्वज्ञदेवने कहे हैं ॥ ३७ ॥ सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग ये चार मनोयोगके भेद हैं, सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग, अनुभयवचनयोग ये चार वचनयोगके भेद हैं ॥३८॥ औदारिक काययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिककाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग और कार्माणकाययोग ये सात काययोगके भेद हैं ॥ ३९ ॥ कषायके दो. भेद हैं। कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय। इनमेंसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान माया, लोभ ये सोलह भेद कषायवेदनीयके हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग ये नौ नोकषायवेदनीयके भेद हैं। इसप्रकार सब मिलकर पच्चीस भेद कषायके हैं ॥ ४०–४२ ॥ जिसप्रकार समुद्रमें पड़ी हुई नावमें

चानुभयस्यापि भेदतः। चतुर्विधो मनोयोगो वचोयोगस्तथैव च ॥ ३८ ॥ औदारिकं च सन्मिश्रं वैक्रियिकं च मिश्रकम्। आहारकं द्विकं कार्मकाययोगाश्च सप्तधा ॥३९॥ क्रोधादिमानमायानां लोभस्य च कषायकः। अनताद्यनुबंध्यप्रत्याख्यानभेदतोऽष्टधा ॥४०॥ प्रत्याख्यानात्तथा सूक्ष्मादष्टविधाः प्रकीर्तिताः। कषायवेदनीयस्य भेदाः षोडशधा मताः ॥४१॥ हास्यरतिजुगुप्साश्चारतिशोकभयस्त्रियः। नृषंडौ नोकषायस्य भेदा नवविधाः मताः ॥ ४२ ॥ नावि छिद्रैर्यथा वार्धौ

छिद्र होजानेसे उसमें पानी भर जाता है उसीप्रकार मिथ्यात्व, अविरत आदिके द्वारा जीवोंके सदा कर्मोंका आस्रव होता रहता है ॥ ४३ ॥ इस जीवके साथ अनादिकालसे अनन्त कर्मोंका सम्बन्ध चला आरहा है। उन्हीं कर्मोंके उदयसे इस जीवके राग द्वेषरूप भाव होते हैं ॥४४॥ जिसप्रकार घीसे चिकने हुए वर्तनमें उड़ती हुई धूलि जम जाती है उसीप्रकार रागद्वेष रूप परिणामोंसे नये अनन्त पुद्गल आकर इस जीवके साथ मिल जाते हैं। भावार्थ-रागद्वेष परिणामोंकी उत्पत्ति कर्मोंके उदयसे होती है तथा कर्मोंका बंध रागद्वेष परिणामोंसे होता है। पहले बंधे हुए कर्मोंके उदयसे रागद्वेष होते हैं और उनसे फिर नये कर्मोंका वन्ध होता है इसप्रकार कर्म व आत्माका सम्बन्ध अनादिकालसे है ॥४५॥ प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश ये बंधके चार भेद जिनागममें कहे हैं ॥ ४६ ॥ उनमेंसे प्रकृति बंधके आठ भेद हैं, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, और अन्तराय। जिसप्रकार किसी प्रतिमाके ऊपर पड़ा

भवेच्च सलिलास्रवः। मिथ्यात्वादेस्तथा जीवे कर्मास्रवो भवेन्निशम् ॥ ४३ ॥ अस्त्यनादिश्च संबंधो जीवस्य भूरिकर्मणा। रागद्वेषमयो भावस्तस्योदयेन जायते ॥४४॥ मिलंति तेन जीवे हि परे च बहुपुद्गलाः। घृतपात्रे घृताभ्यक्ते निविडरेणुवृंदवत् ॥ ४५ ॥ प्रकृतेश्च स्थितेश्चाप्यनुभागाच्चप्रदेशतः। बंधश्चतुर्विधो ज्ञेयो जिनसूत्रानुसारतः ॥४६॥ आवृणोतीति यज्ज्ञानं तज्ज्ञानावरणं मतम्। देवमुखं यथा वस्त्रं पंचविधं जिनागमे ॥ ४७ ॥ दर्शनावरणं प्रोक्तं दर्शनमावृणोति

हुआ वस्त्र उस प्रतिमाको ढक लेता है उसीप्रकार जो ज्ञानको ढक ले उसे ज्ञानावरण कर्म कहते हैं। उसके पांच भेद हैं। मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण–मनःपर्यय ज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण ॥४७॥ जिसप्रकार दरवाजे पर रहनेवाला द्वारपाल राजाके दर्शन नहीं होने देता उसी प्रकार आत्माके दर्शन गुणको रोकनेवाले (ढकनेवाले) कर्मको दर्शनावरण करते हैं। वह नौ प्रकारका है। चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि ॥४८॥ जिसप्रकार शहत लपेटी तलवारकी धार चाटनेसे सुख दुःख दोनों होते हैं उसीप्रकार जो सुख दुख दोनोंका अनुभव करावे उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। उसके दो भेद हैं–सातावेदनीय, असातावेदनीय ॥ ४९ ॥ जिसप्रकार मद्य वा धतूरा मनुष्यको मोहित कर देता है उसीप्रकार जो आत्माको मोहित कर देवे–स्वरूपको भुला देवे उसको मोहनीय कर्म कहते हैं। उसके अट्ठाइस भेद हैं। अनन्तानुबन्धी, क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण, क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुंसकलिंग, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व,

---

यत्। नवविधं नृपद्वारे द्वाःस्थितो नृपदर्शनम् ॥४८॥ वेदयति सुखं दुःखं वेदनीयं मतं च तत्। मधुलिप्तासितुल्यं हि द्विविधं श्रीजिनागमे ॥ ४९ ॥ आत्मानं मोहयत्येव मोहनीयं प्रकीर्तितम्। अष्टा-

सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व ।। ५० ।। जिसप्रकार सांकलमें बंधा हुआ मनुष्य वहीं रुका रहता है उसीप्रकार जो इस जीवको मनुष्य, तिर्यंच आदिके शरीरमें रोक रक्खे उसे आयुकर्म कहते हैं। यह जीव आयुकर्मके उदयसे मनुष्यादि भव धारण करता है। यह आयुकर्म चार प्रकारका है। मनुष्यायु, तिर्यगायु, देवायु, नरकायु ।। ५१ ।। जिसप्रकार चित्रकार अनेक प्रकारके चित्र बनाता है उसी प्रकार जो अनेक प्रकारके शरीरकी रचना करता है उसे नामकर्म कहते हैं। उसके तिरानवे भेद हैं। देव, मनुष्य, तिर्यंच, नरक ये चार गतियां, एकेंद्रिय, दोइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौइंद्रिय, पंचेंद्रिय ये पांच जाति, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण पांच शरीर, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, आंगोपांग, निर्माण औदारिक, वैक्रियिक, आहारक तैजस, कार्मण पांच बन्धन, ये ही औदारिक आदि पांच संघात, समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, स्वातिक, कुब्जक, वामन, हुंडक ये छह संस्थान, वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच- कीलक असंप्राप्तसृपाटिक ये छह संहनन, स्पर्श आठ, रस पांच, गन्ध दो, वर्ण पांच, नरक, तिर्यग, मनुष्य, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, विहायोगति दो, प्रत्येक, साधारण, त्रस, स्थावर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर,

विंशतिरेतः सप्तधत्तूरवन्नरम् ।।५०।। आत्मानं भवमेत्यायुर्यत्तच्चतुर्विधं स मु भवधारणसामर्थ्यं शृंखलास्थ नरोपमम् ।।५१।। नानाविधां रचनां करोति नाम तन्मतम्। चित्रकारो यथा चित्रं

शुभ, अशुभ, सूक्ष्म, स्थूल, पर्याप्ति, अपर्याप्ति, स्थिर, अस्थिर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तीर्थंकर ॥९२॥ जिसप्रकार कुंभार छोटे बड़े सब प्रकारके वर्तन वनाता है उसीप्रकार जो ऊंच और नीच गोत्रमें उत्पन्न करे उसे गोत्र-कर्म कहते हैं उसके दो भेद हैं। ऊंचगोत्र, नीचगोत्र ॥ ९३ ॥ जिसप्रकार राजाके दिये हुए धनको खजांची रोक देता है उसी प्रकार जो दान, लाभ आदि लब्धियोंमें विघ्न करे उसे अंतराय कहते हैं। उसके पांच भेद है। दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय ॥९४॥ आगमको जाननेवाले विद्वानोंने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अंतराय कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरकी वतलाई है ॥ ९५ ॥ मोहनीयकर्मकी सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागर, नाम, गोत्रकी वीस कोड़ाकोड़ी सागर और आयुकर्मकी तेतीस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है ॥ ९६ ॥ इन कर्मोंकी जघन्य स्थिति वेदनीयकी वारह मुहूर्त है, नाम व गोत्रकी आठ मुहूर्त है और शेष कर्मोंकी अंतमुहूर्त है ॥९७॥

त्रिनवतिप्रभेदकम् ॥९२॥ नीचोच्चजनने दक्षं गोत्रकर्म द्विधा मतम्। कुंभकारो यथा कुंभस्थाल्यादिकं करोति वै ॥ ९३ ॥ भूपतिना धनं दत्तं भांडागारी नरो यथा। निवारयति सल्लब्धीस्तथांतरायपंचकम् ॥९४॥ आदित्रिकांतरायाणां कोटीकोट्यः परा स्थितिः। त्रिंशद्र-त्नाकराणां वै प्रोक्ता आगमकोविदैः ॥ ९५ ॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य विंशतिर्नामगोत्रयोः। त्रयस्त्रिंशत्पयोराशिरायुषो हि परा स्थितिः ॥ ९६ ॥ मुहूर्ता द्वादश प्रोक्ता वेद्यस्य नामगोत्रयोः। अपराष्टौ च

यह जीव अपने शुभ परिणामोंसे पुण्य उत्पन्न करता है और अशुभ परिणामोंसे पाप उत्पन्न करता है। शुभ आयु, शुभ नाम, शुभ गोत्र और सातावेदनीय पुण्य हैं और वाकीके अशुभ आयु, अशुभ नाम, अशुभ गोत्र, असातावेदनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय पाप हैं ॥ ५८ ॥ पाप प्रकृतियोंका परिपाक नींबू कांजी, विष और हलाहलके समान है तथा पुण्यरूप प्रकृतियोंका परिपाक गुड़, खांड, मिश्री और अमृतके समान है ॥ ५९ ॥ ज्ञान तथा दर्शनमें दोष लगाना, उत्तम ज्ञानको अज्ञान बतलाना अथवा ज्ञानका घात करना, ज्ञानके कार्योंमें विघ्न डालना, ज्ञानकी प्रशंसा नहीं करना, ज्ञानको छिपाना किसीको नहीं बतलाना, ज्ञानियोंके साथ ईर्ष्या करना तथा और भी ज्ञानके विरुद्ध कार्य करना आदि कार्योंसे ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मोंका बंध होता है ॥ ६० ॥ समस्त जीवोंपर दया करना, व्रतियोंपर विशेष दया करना, दान देना, रागपूर्वक संयम पालन करना, गुरुसे नम्र रहना, क्षमा धारण करना आदि कार्योंसे सातावेदनीयकर्मका बंध होता है ॥ ६१ ॥ दुःख,

---

शेषाणां स्थितिरंतर्मुहूर्तिका ॥ ५७ ॥ पुण्यपापे भजेज्जन्तुः परिणामैः शुभाशुभैः। शुभायुर्नामगोत्राणि सातं पुण्यमघं परम् ॥ ५८ ॥ अप्रशस्ता मता निंवुकांजिविषहलाहलैः। समा प्रशस्तका तुल्या गुडखंडसितामृतैः ॥ ५९ ॥ तत्प्रदोषोपघातांतरायासादननिह्नवैः। मात्सर्यप्रत्यनीकैश्च वध्नात्यावरणद्विकम् ॥६०॥ भूतकंपाव्रतादानसरागसंयमादिभिः। जीवो वध्नाति सद्वेद्यं गुरुनम्रः क्षमायुतः ॥ ६१ ॥

शोक, वध, रोना, बहुत अधिक करुणाजनक रोना और संताप करना, ये सब स्वयं करना, दूसरोंसे कराना अथवा स्वयं भी करना और दूसरोंसे भी कराना इन कार्योंसे असाता वेदनीय कर्मका आस्रव होता है ॥ ६२ ॥ अरहंत भगवानकी निंदा करना, सिद्ध भगवानकी निंदा करना, तपश्चरणकी निंदा करना, संघकी निंदा करना, गुरुकी निंदा करना, शास्त्रोंकी निंदा करना और धर्मकी निंदा करना आदि कार्योंसे दर्शनमोहनीय कर्मका बंध होता है ॥ ६३ ॥ कषायोंके उदयसे जो ऐसे तीव्र परिणाम होते हैं जो द्वेषसे भरपूर होते है और चारित्र गुणके घातक होते है उससे सकल विकल दोनों प्रकारके चारित्रमोहनीयका बंध होता है ॥ ६४॥ रौद्रभावोंको धारण करनेवाला, अनेक प्रकारके पाप उत्पन्न करनेवाला, तीव्र लोभको धारण करनेवाला, शीलव्रतोंसे रहित और महा आरंभ करनेवाला मिथ्यादृष्टि नरक आयुका बंध करता है ॥ ६५ ॥ अपने मनकी बातको छिपानेवाला, शीलरहित, शल्योंसे भरपूर और जिनमार्गका विरोध करनेवाला मायाचारी जीव तिर्यंच आयुका बंध करता है ॥६६॥

दुःखशोकवधाक्रंदपरिदेवनतापनैः । असद्वेद्यस्य बंधः स्यादात्मपरोभयस्थितैः ॥ ६२ ॥ अर्हत्सिद्धतपःसंघगुरुसश्रुतधर्मणां । अपवादेन बध्नाति जीवो दर्शनमोहकम् ॥ ६३ ॥ प्रकषायोदयात्तीव्रपरिणामो द्विषैर्युतः । द्विचारित्रं स बध्नीयाच्चारित्रगुणघातकः ॥६४॥ मिथ्यादृष्टिर्महारंभो निःशीलस्तीव्रलोभकः । नरकायुः स बध्नाति रौद्रभावोऽघकारकः ॥ ६५ ॥ गुप्तमनाश्च मायावी निःशीलः शल्यसंयुतः ।

जो शील संयमसे रहित है परंतु मध्यमगुणोंको धारण करनेवाला है तथा जो दानी और मंदकषायी है वह मनुष्य आयुका बंध करता है ॥ ६७ ॥ देशव्रती, महाव्रती, अकामनिर्जराको करनेवाला सम्यग्दृष्टी और बालतप करनेवाला जीव देवायुका बंध करता है ॥ ६८ ॥ जिसके मन, वचन, काय कुटिल हैं और जो महा अभिमानी है वह ऐसा मायाचारी जीव अशुभ नामकर्मका बंध करता है तथा इनसे विपरीत काम करनेवाला अर्थात् मन वचन कायको सरल रखनेवाला, माया और अभिमान न करनेवाला जीव शुभनामकर्मका बंध करता है ॥ ६९ ॥ दूसरेके उत्तम गुणोंका ढकना, बुरे गुणोंको प्रगट करना, दूसरोंकी निंदा करना तथा अपनी प्रशंसा करना आदि कार्योंसे नीच गोत्रका बंध होता है और अच्छे गुणोंको प्रगट करना, बुरे गुणोंको ढकना, अपनी निंदा करना, दूसरोंकी प्रशंसा करना आदि कार्योंसे ऊंच गोत्रका बंध होता है ॥ ७० ॥ जो हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापकार्योंमें लीन रहता है और भगवान अरहंतदेवकी पूजा

स्तिर्यगायुः स बध्नाति जिनमार्गविरोधकः ॥ ६६ ॥ शीलसंयमसंहीनो मध्यमगुणसंयुतः । स बध्नाति मनुष्यायुर्दानी तनुकषायकः ॥६७॥ देवायुष्कं स बध्नीयाद्देशव्रतमहाव्रतैः । अकामनिर्जरैः सम्यग्दृष्टी बालतपोयुतः ॥६८॥ मनोवाक्कायसंवक्रो मायावी गर्वसंकुलः । स बध्नात्यशुभं नाम शुभं तद्विपरीतकः ॥६९॥ प्रसदसद्गुणाच्छादोद्भावने तद्विपर्यये । परात्मगर्हणं शंसे नीचस्योच्चस्य बंधके ॥ ७० ॥ प्राणिहिंसादिसंरक्तो जिनेज्याविघ्नकारकः । अर्जयत्यंतरायं स वांच्छितं येन

प्रतिष्ठा आदि कार्योंमें विघ्न करनेवाला है वह अंतरायकर्मका बंध करता है। उस अंतरायकर्मके उदयसे वह जीव फिर अपने इष्ट पदार्थोंको प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ७१ ॥ गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्रसे आश्रव रुक जाता है और महा संवर होता है ॥ ७२ ॥ जिसप्रकार समुद्रमें पड़ी हुई नावका छिद्र बंद कर देनेसे वह नाव फिर डूबती नहीं अपने इष्ट स्थानपर पहुंच जाती है उसीप्रकार यह आत्मा भी संवरके होनेपर फिर संसारमें कभी नहीं डूबता, फिर वह अपने मोक्षरूप इष्ट स्थानको अवश्य पहुंच जाता है ॥ ७३ ॥ बारह प्रकारके तपश्चरणसे, धर्मध्यानरूपी उत्तम बलसे और रत्नत्रयरूपी वन्हिसे यह जीव कर्मोंकी निर्जरा करता है ॥ ७४ ॥ वह निर्जरा दो प्रकारकी है, सविपाक और अविपाक। सविपाक निर्जरा रोग आदिके द्वारा फल देकर कर्मोंके झड़ जानेसे होती है तथा जिसप्रकार घासमें रखकर आमको जल्दी पका लेते हैं उसीप्रकार तप और ध्यानके द्वारा विना फल दिये जो कर्म नष्ट होजाते हैं उसे अविपाक निर्जरा कहते हैं ॥७५॥ समस्त

नो लभेत् ॥७१॥ गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षाचारित्रधारणैः। परीषहजयैः रोध आस्रवाणा स सवरः ॥ ७२ ॥ नो ब्रुडत्यत्र संसारे संवरे सति चेतनः। स्वेष्टं पदं प्रयातीव सिंधौ नौछिद्रबंधने ॥७३॥ तपोभिर्द्वादशैर्जन्तुर्धर्म्यध्यानादिसद्बलैः। कर्मणां निर्जरां कुर्याद्रत्नत्रयादिवह्निना ॥ ७४ ॥ सविपाकाविपाकेन सा द्विधा रुजादिभिः। साध्यापरा तपोध्यानैः कालैस्तृणै रसालवत् ॥७५॥ विश्वकर्मक्षयान्मोक्षस्तत एरंड-

कर्मोंके क्षय होनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। मुक्त होनेपर यह जीव एरण्डके बीजके समान ऊपरको गमन करता है और जहां तक धर्मास्तिकाय है वहांतक अर्थात लोकाकाशके अन्ततक ऊपरको जाता है। आगे धर्मास्तिकाय न होनेसे वहीं जाकर ठहर जाता है ॥ ७६ ॥

अथानन्तर—इसप्रकार सातों तत्त्वोंका स्वरूप सुनकर राजा श्रेणिक अपने दोनों हाथ जोड़कर मस्तकपर रखकर सज्जन पुरुषोंको पार करदेनेके लिये जहाजके समान ऐसे गौतमस्वामीसे प्रार्थना करने लगे ॥ ७७ ॥ वे कहने लगे कि हे प्रभो ! आप संदेहरूपी अन्धकारको दूर करनेकेलिये सूर्यके समान हैं इसलिये मैं आपके श्रीमुखसे अनुक्रमसे छहों कालोंका निर्णय, भोगभूमिका स्वरूप, कुलकरोंकी स्थिति, तीर्थंकरोंकी उत्पत्ति, उनके उत्पन्न होनेके मध्यका समय, उनके शरीरकी ऊँचाई, शरीरके चिह्न, जन्मके नगर, माता-पिताओंके नाम, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनाराय रुद्र, नारद, कामदेव आदि महापुरुषोंके नाम, नरक, स्वर्गोंमें

बीजवत् । आलोकांताद्व्रजेदूर्ध्वं धर्मास्तितत्त्वभावतः ॥ ७६ ॥ अथ श्रेणिकभूमीशो जगाद स्वामिनं प्रति । सज्जनतारणे पोतं शिरोन्यस्त-करांजलिः ॥७७॥ संशयतिमिरादित्य श्रोतुमिच्छामि वो मुखात् । षट्कालनिर्णयं सार्द्धं भोगभूमिस्वरूपकैः ॥७८॥ स्थितिं कुलकराणां वै तीर्थंकरसमुद्भवम् । स्थित्यंतरालदेहोच्चलक्ष्मपुरादिसंयुतम् ॥७९॥ तन्मातृपितृसच्चक्रिकेशवप्रतिकेशवान् । रुद्रनारदकंदर्पास्तेषां नामानि वै क्रमात् ॥८०॥ ततो नरकनाकेषु नारकदेवसंस्थितिम् । लेश्योच्चमि-

नारकी और देवोंकी स्थिति, उनकी लेश्या ऊंचाई आदि सब बातें सुनना चाहता हूं। हे प्रभो! आप इन सब बातोंको बतलाइये ॥ ७८-८१ ॥ इस प्रश्नको सुनकर भगवान श्रीगौतमस्वामी कहने लगे कि हे राजन्! तू मनको स्थिर कर सुन, संसारको सुख देनेवाले ये सब विषय मैं कहता हूं ॥ ८२ ॥ एक कल्पकाल बीस कोड़ाकोडी सागारका होता है, उसमें दस कोड़ाकोड़ी सागरका अवसर्पिणी काल और दस कोड़ाकोड़ी सागरका उत्सर्पिणी काल होता है। इन दोनों कालोंमेंसे प्रत्येकके छह छह भाग होते हैं ॥ ८३ ॥ विद्वानोंने अवसर्पिणी कालके छह भागोंके नाम ये बतलाये हैं। पहिला सुषमासुषमा, दूसरा सुषमा, तीसरा सुषमादुःषमा, चौथा दुःषमासुषमा, पांचवा दुःषमा और छठा दुःषमादुःषमा ॥८४-८५॥ उत्सर्पिणी कालके भाग इससे उलटे हैं, अर्थात् पहला दुःषमादुःषमा, दूसरा दुःषमा, तीसरा दुःषमासुषमा, चौथा सुषमादुःषमा, पांचवां सुषमा और छठा सुषमासुषमा। इनमेंसे सुषमासुषमा काल चार कोड़ाकोड़ी सागरका है,

---

तिसंयुक्तामित्यादिकं वद प्रभो ॥ ८१ ॥ अथावदज्जगत्स्वामी वचो विश्वसुखाकरम्। स्थिरीकृत्य मनो भूप! शृणु सर्वं गदाम्यहम् ॥८२॥ कोटीकोट्यो दशाब्धीनां प्रत्येकमवसर्पिणी। उत्सर्पिणी च कालाः षट् प्रत्येकमनयोर्मताः ॥ ८३ ॥ सुषमासुषमाद्या स्याद्द्वितीया सुषमा समा। सुषमादुःषमा प्रोक्ता तृतीया ज्ञानकोविदैः ॥८४॥ दुःषमा-सुषमा तुर्या दुःषमा पंचमी मता। दुःषमादुःषमा षष्ठ्यवसर्पिण्यां च षट् समाः ॥ ८५ ॥ उत्सर्पिण्यां च ता एव प्रतिलोमं मता जिनैः।

दूसरा सुषमा काल तीन कोड़ाकोड़ी सागरका है, तीसरा सुषमादुःषमा काल दो कोड़ाकोड़ी सागरका है, चौथा दुःषमा-सुषमा काल ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी साग-रका है, पांचवां दुःषमा काल इक्कईस हजार वर्षका है और छठा दुःषमादुःषमा भी इकईस हजार वर्षका है ऐसा आगमको जाननेवाले आचार्योंने कहा है ॥८६-८८॥ इनमें पहलेके तीन कालोंमें भोगोपभोगकी सामग्री कल्पवृक्षोंसे प्राप्त होती है इसीलिये चतुर पुरुष इन तीनों कालोंको भोगभूमि कहते हैं ॥ ८९ ॥ इनमेंसे पहले कालके जीवोंकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्यकी होती है, दूसरे कालके जीवोंकी आयु दो पल्यकी और तीसरे कालके जीवोंकी आयु एक पल्यकी होती है। यह आयु देवकुरु आदि उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमिके समान ही समझनी चाहिये ॥९०॥ वहांके मनुष्य जुगलिया होते हैं। पहले कालके प्रारम्भमें वहांके मनुष्य छह हजार धनुष, दूसरे कालके प्रारम्भमें चार हजार धनुष और तीसरे कालके प्रारम्भमें दो हजार धनुष, ऊंचे होते हैं ॥९१॥

कोटीकोट्यः समुद्राणां चतस्रः प्रथमे मताः ॥ ८६ ॥ द्वितीये ताः प्रमास्तिस्रो द्वे च प्रोक्ते तृतीयके। एका तुर्ये द्विचत्वारिंशत्सहस्रा-ब्दवर्जिता ॥ ८७ ॥ प्रमा पंचमकालस्यैकविंशतिसहस्रिका। ता एव षष्ठमस्यापि प्रोक्ता चागमसूरिभिः ॥ ८८ ॥ आद्येषु त्रिषु कालेषु ददंति कल्पपादपाः। भोगं तेन मता चेयं भोगभूमिर्विचक्षणैः ॥८९॥ आयुराद्यत्रये काले त्रीणि द्वे एककं मतम्। क्रमात् पल्यानि वै देवकुर्वादिभोगभूमिवत् ॥ ९० ॥ युग्मधर्मयुता भूत्वा तेषामादौ च

भोगभूमिमें उत्पन्न हुए स्त्री पुरुषोंके शरीरका रंग पहले कालमें उदय होते हुए सूर्यके समान, दूसरे कालमें पूर्ण चन्द्रमाकी प्रभाके समान और तीसरे कालमें नीलवर्णका होता है ॥ ९२ ॥ वहांके स्त्री पुरुष पहले कालमें चौथे दिन वेरके समान भोजन लेते हैं, दूसरे कालमें तीसरे दिन बहेड़ेके समान और तीसरे कालमें दूसरे दिन आंवलेके समान भोजन लेते हैं ॥९३॥ तीनों कालोंमें वस्त्रांग, दीपांग, गृहांग, ज्योतिरंग, मालांग, भूषणांग, भोजनांग, भाजनांग, वाद्यांग और मद्यांग जातिके कल्पवृक्ष सदा सुशोभित रहते हैं ॥९४॥ तीनों कालोंके स्त्री पुरुष, स्त्री पुरुषोंके सुलक्षणोंसे सुशोभित रहते हैं और क्रीडा किया करते हैं तथा वे कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुए आहारसे सदा तृप्त रहते हैं। वहांके तिर्यंच भी ऐसे ही होते हैं और सब अनेक कलाओंसे सुशोभित होते हैं ॥९५॥ जो मनुष्य तीनों प्रकारके उत्तम पात्रोंको सुख देनेवाला शुभ दान देते हैं वे भोगभूमिमें उत्पन्न होकर इन्द्रके समान सुख भोगते हैं ॥९६॥ जिसप्रकार किसी अच्छे क्षेत्रमें वोया हुआ

मानवाः । षट्चतुर्द्विसहस्राणि चापानि तुगविग्रहा. ॥९१॥ उद्यद्भास्करवर्णाभा पूर्णेंदुसदृशप्रभाः । नीलवर्णाः क्रमात्तेषु त्रिषु योषिन्नरा मताः ॥९२॥ क्रमाद् वदरमात्रं च विभीतकाम्लिका समम् । स्त्रीनरा भोजनं कुर्युश्चतुस्त्रिद्विदिनैस्त्रिषु ॥९३॥ वस्त्रदीपगृहज्योतिर्माल्यभूषांगभोजनै. । भाजनतुर्यमद्यांगैः कल्पवृक्षैरभास्त्रिषु ॥९४॥ स्त्रीपुंसलक्षणैर्युक्ता रमंते त्रिषु ताः प्रजाः । तृप्ताः कल्पद्रुमाहारैस्तिर्यंचोऽपि कलान्विताः ॥९५॥ मानुषस्त्रिविधे पात्रे दानं दत्त्वा शुभाकरम् ।

बीज बहुतसे फ़लोंको फलता है उसीप्रकार पात्रोंको दिया हुआ थोड़ासा भी शुभदान अनेकगुणा होकर फल देता है ॥ ९७ ॥ जिसप्रकार ऊसर भूमिमें बोया हुआ बहुतसा बीज भी मूल समेत नष्ट होजाता है उसीप्रकार अपात्रको दिया हुआ दान भी व्यर्थ ही जाता है ॥ ९८ ॥ इस अवसर्पिणी कालके अंतमें जब पल्यका आठवां भाग बाकी था और जब कल्पवृक्ष नष्ट हो रहे थे उस समय कुलकर उत्पन्न हुए थे ॥९९॥ उनमेंसे पहलेका नाम प्रतिश्रुति था, दूसरेका नाम सन्मति, तीसरेका क्षेमंकर, चौथेका क्षेमंधर, पांचवेंका सीमंकर, छठेका सीमंधर, सातवेंका विमलवाहन, आठवेंका चक्षुष्मान्, नौवेंका यशस्वान्, दशवेंका अभिचंद्र, ग्यारहवेंका चंद्राभ, बारहवेंका मरुदेव, तेरहवेंका प्रसेनजित और चौदहवें कुलकरका नाम नाभिराय था। इनमेंसे सुख देनेवाले नाभिरायकी आयु एक करोड़ पूर्व थी और उन्होंने बालक उत्पन्न होते

भोगभूमौ समुत्पत्य सुखं भुंक्ते सुरेंद्रवत् ॥९६॥ सुक्षेत्रे क्षिप्तसद्बीजं यथा भूरितरं व्रजेत्। दत्तं पात्रे शुभं दानमल्पं बहुगुणं तथा ॥९७॥ ऊषरक्षेत्रनिक्षिप्तं बीजं भूरितरं यथा। नश्यति मूलतो दानमपात्रे निष्फलं तथा ॥ ९८ ॥ अथ तृतीयकालस्य शेषे पल्याष्टभागके। स्थिते कुलकरोत्पत्तिः क्षीयमाणे तरौ क्रमात् ॥९९॥ प्रतिश्रुतिरमूदाद्यो द्वितीयः सन्मतिस्तथा। क्षेमंकरस्तृतीयश्च क्षेमंधरः चतुर्थकः ॥१००॥ सीमंकरस्तथा ज्ञेयः सीमंधरस्तु षष्ठमः। विमलवाहनो नामच्चक्षुष्मानष्टमो मतः ॥ १०१ ॥ यशस्वी नवमः प्रोक्तोऽभिचंद्रो दशमस्तथा। चंद्राभो मरुदेवश्च प्रसेनजितसंज्ञकः ॥१०२॥ नाभिः

समय नाभि काटनेकी विधि बतलाई थी ॥१००–१०३॥ ये सब कुलकर अपने अपने नामके अनुसार गुणोंको धारण करनेवाले थे तथा ये सब एक एक पुत्रको उत्पन्न कर और प्रजाको सद्‌बुद्धि देकर स्वर्गको सिधारे थे ॥१०४॥ जिससमय तीसरेकालमें तीन वर्ष साड़ेआठ महीने अधिक चौरासी-लाख पूर्व बाकी रहे थे उससमय युगलियाधर्मको दूर करने-वाले मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान इन तीनों ज्ञानोसे सुशो-भित, समस्त प्रजाके स्वामी और तीनों लोकोंके इंद्रोंके द्वारा पूज्य ऐसे श्रीवृषभदेव तीर्थंकर उत्पन्न हुए थे ॥१०५–१०६॥ श्रीवृषभदेव, अजितनाथ, शंभवनाथ, अभिनंदन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतलनाथ, श्रेयांस-नाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमि-नाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान ये चौवीस तीर्थंकर चौथे कालमें उत्पन्न हुए हैं। ये सब तीर्थंकर कामदेवको भी जीतनेवाले

कुलकरो जातः सः चतुर्दशमः क्रमात्। पूर्वकोटिस्थितिर्नाभिच्छेदकृत् सुखदायकः ॥ १०३ ॥ एकैकं पुत्रमुत्पाद्य विश्वे कुलकरा गताः। स्वर्गं दत्वा प्रजाबुद्धिं स्वनामगुणधारकाः ॥१०४॥ चतुरशीतिलक्षाणां पूर्वे तस्यावसंस्थिते। शेषे त्र्यब्दाष्टमासार्द्धमाससमा युते तदा ॥१०५॥ तीर्थेशो वृषभो जातो युग्मधर्मनिवारकः। ज्ञानत्रयी प्रजाधीशस्त्रिभु-वनेंद्रपूजितः ॥१०६॥ वृषभोऽजितसंज्ञश्च शंभवश्चाभिनंदनः। सुमतिः पद्मदीप्तिश्च सुपार्श्वश्चंद्रनायकः ॥ १०७ ॥ पुष्पदंताभिधः स्वामी शीतलस्तीर्थकारकः। श्रेयान् श्रीवासुपूज्यश्च विमलोऽनन्तजिज्जिनः

थे और भव्य जीवोंको संसारसागरसे पार करदेनेके लिये जहाजके समान थे ॥१०७-११०॥ जब तीसरे कालमें तीन वर्ष साड़ेआठ महीने बाकी रहे थे तब श्रीवृषभदेव मोक्ष पधारे थे और जब चौथे कालमें तीन वर्ष साड़ेआठ महीने बाकी रहे थे तब श्रीमहावीरस्वामी मोक्ष पधारे थे ॥१११॥ श्रीवृषभदेवकी आयु चौरासीलाख पूर्व थी, श्रीअजितनाथकी बहत्तर लाख पूर्व, श्रीशंभवनाथकी साठलाख पूर्व, श्रीअभिनंदननाथकी पचासलाख पूर्व, श्रीसुमतिनाथकी चालीसलाख पूर्व, श्रीपद्मप्रभुकी तीसलाख पूर्व, श्रीसुपार्श्वनाथकी वीसलाख पूर्व, श्रीचंद्रप्रभकी दशलाख पूर्व, श्रीपुष्पदंतकी दो लाख पूर्व, श्रीशीतलनाथकी एकलाख पूर्व, श्रीश्रेयांसनाथकी चौरासी लाख वर्ष, श्री वासुपूज्यकी बहत्तरलाख वर्ष, श्रीविमलनाथकी साठलाख वर्ष, श्रीअनंतनाथकी तीसलाख वर्ष, श्रीधर्मनाथकी दशलाख वर्ष, श्रीशांतिनाथकी एक लाख वर्ष, श्रीकुंथुनाथकी पिचानवे

॥१०८॥ धर्मः शांतिस्तथा कुंथुररश्च मल्लिनायकः। सुव्रतेशो नमिर्नेमिः श्रीपार्श्वो वर्द्धमानकः ॥१०९॥ तीर्थंकराश्चतुर्विंशाश्चतुर्थसमये शुभाः। जाता मदनजेतारो भव्यतारणपोतकाः ॥११०॥ त्र्यब्दसार्द्धाष्टमासस्थे तृतीयतुर्यकालयोः। शेषे वृषभसन्मत्योर्मुक्तिरभूच्च शास्वती ॥ १११ ॥ चतुरशीति लक्षाणां पूर्वमायुर्वृषेशिनः। ततो द्वासप्ततिः षष्ठिः पंचाशच्च क्रमान्मतम् ॥ ११२ ॥ चत्वारिंशत्तथा त्रिंशद्विंशतिश्च दश द्विकम्। एकं ततोऽब्द लक्षा वै अशीतिश्चतुरुत्तरा ॥११३॥ द्वासप्ततिस्तथा षष्ठिस्त्रिंशद्दश तथैकको। ततो वर्ष-

हजार वर्ष, श्रीअरनाथकी चौरासीहजार वर्ष, श्रीमल्लि-नाथकी पचपन हजार वर्ष, श्रीमुनिसुव्रतनाथकी तीस हजार वर्ष, श्रीनमिनाथकी दश हजार वर्ष, श्रीनेमिनाथकी एक हजार वर्ष, श्रीपार्श्वनाथकी सौ वर्ष और श्रीवर्द्धमानकी बहत्तर वर्षकी आयु थी ॥११२–११५॥ श्रीवृषभदेवके मोक्ष जानेके बाद पचास लाख करोड़ सागर बीत जानेपर श्री-अजितनाथ उत्पन्न हुए थे ॥ ११६ ॥ अजितनाथके मोक्ष जानेके बाद तीस लाख करोड़ सागर बीत जानेपर श्रीशंभ-वनाथ उत्पन्न हुए थे, इनके मोक्ष जानेके बाद दश लाख करोड़ सागर बीत जानेपर श्री अभिनन्दननाथ उत्पन्न हुए थे, इनके मोक्ष जाने बाद नौ लाख करोड़ सागर बीत जानेपर श्रीसुमतिनाथ उत्पन्न हुए थे, इनके सिद्ध होनेपर नव्वे हजार करोड़ सागर बीत जानेपर श्री पद्मप्रभ उत्पन्न हुए थे ॥ ११७ ॥ इनके मोक्ष जाने बाद नौहजार करोड़ सागर बीत जानेपर श्रीसुपार्श्वनाथ हुए थे, इनके बाद नौ सौ करोड़ सागर बीत जानेपर श्रीचन्द्रप्रभ हुए थे फिर नव्वे करोड़ सागर बीत जानेपर श्रीपुष्पदंत हुए थे और

सहस्राणि सपंचनवतिः क्रमात् ॥११४॥ चतुरशीतिकं पंच पचाश-त्रिंशकं दशम् । सहस्रैकं शतं प्रोक्तं श्रीवीरायुर्द्विसप्ततिः ॥ ११५ ॥ पंचाशल्लक्षकोटीनां समुद्रेषु गतेषु च । सिद्धिं प्राप्ते वृषाधीशेऽजित-नाथोद्भवोऽभवत् ॥११६॥ त्रिंशच्च शंभवोत्पत्तिर्दशाभिनंदनो नव । सुमतिः पद्मकांतिश्च सनवतिसहस्रके ॥११७॥ सुपार्श्वो नव चंद्रेशो नव शतानि वै मता । नवतिः पुष्पदंतश्च कोट्यो नव च शीतलः-

नौ करोड़ सागर वीतनेपर श्रीशीतलनाथ उत्पन्न हुए थे॥११८॥ इनके मोक्ष जानेके वाद सौ सागर छ्यासठ लाख छव्वीस हजार वर्ष कम एक करोड़ सागर वीत जानेपर श्रीश्रेयांसनाथ हुए थे ॥११९॥ श्री श्रेयांसनाथके वाद चौअन सागर वीत जानेपर श्रीवासुपूज्य हुए थे, इनके वाद तीस सागर वीत जानेपर विमलनाथ हुए थे। इनके वाद नौ सागर वीत जानेपर श्रीअनन्तनाथ हुए थे। इनके मोक्ष जानेके वाद चार सागर वीत जानेपर श्रीधर्मनाथ हुए थे ॥१२०॥ इनके वाद पौन पल्य कम तीन सागर वीत जानेपर श्रीशांतिनाथ हुए थे। इनके वाद आधा पल्य वीत जानेपर श्रीकुंथुनाथ हुए थे, इनके वाद एकहजार करोड़ वर्ष कम चौथाई पल्य वीत जानेपर श्रीअरनाथ हुए थे। इनके वाद एकहजार करोड़ वर्ष वीत जानेपर श्रीमल्लिनाथ हुए। इनके वाद चौअन लाख वर्ष वीत जानेपर श्रीमुनिसुव्रत हुए। इनके वाद छह लाख वर्ष वीत जानेपर श्रीनमिनाथ हुए थे, इनके वाद पांच लाख वर्ष वीत जानेपर श्रीनेमिनाथ हुए थे। इनके वाद त्र्यासी

॥११८॥ शतोने चैक कोट्यश्च षट्षष्ठिलक्षवत्सरैः। षड्विंशतिसहस्रोने श्रेयोनाथोऽभवत्ततः ॥ ११९ ॥ चतुःपंचाशदब्धौ च वासुपूज्यजिनोऽभवत्। त्रिंशत्सु विमलोऽनंतो नव धर्मश्चतुर्षु च ॥१२०॥ त्रयः शांतिस्त्रिपादोनाः पल्यस्य कुंथुरर्द्धके। एककोटीसहस्राद्वैर्हीनेऽर पाद पल्यगे ॥ १२१ ॥ एककोटीसहस्राद्वे मल्लीशो मुनिसुव्रतः। चतुःपंचाशल्लक्षाब्दे षट् नमिः पंच नेमिकः ॥ १२२ ॥ त्र्यशीतिषु सहस्रेषु सार्द्धसप्तशतेषु च। श्रीपार्श्वो द्विशते सार्द्धे वीरोत्पत्तिः

हजार सातसौ पचास वर्ष वीत जानेपर श्रीपार्श्वनाथ हुए थे इनके वाद ढाईसौ वर्ष वीत जानेपर श्रीवर्द्धमानस्वामी हुए थे ॥ १२१-१२३ ॥ श्रीवृषभदेवके शरीरकी उंचाई पांचसौ धनुष थी, श्रीअजितनाथकी चारसौ पचास धनुष, श्रीशंभवनाथकी चारसौ धनुप, श्रीअभिनंदननाथकी तीनसौ पचास धनुष, श्रीमुमतिनाथकी तीनसौ धनुष, श्रीपद्मप्रभकी दोसौपचास धनुष, श्रीसुपार्श्वनाथकी दोसौ धनुप, श्रीचंद्रप्रभकी एकसौ पचास धनुष, श्रीपुष्पदंतकी सौ धनुष, श्रीशीतलनाथकी नव्वे धनुष, श्रीश्रेयांसनाथकी अस्सी धनुप, श्रीवासुपूज्यकी सत्तरि धनुष, श्रीविमलनाथकी साठ धनुष, श्रीअनंतनाथकी पचास धनुष, श्रीधर्मनाथकी पैतालीस धनुप, श्रीशांतिनाथकी चालीस धनुष, श्री कुंथुनाथकी पैंतीस धनुष, श्रीअरनाथकी तीस धनुप, श्रीमल्लिनाथकी पच्चीस धनुष, श्रीमुनिसुव्रतनाथकी वीस धनुष श्रीनमिनाथकी पंद्रह धनुष, श्रीनेमिनाथकी दश धनुष, श्रीपार्श्वनाथकी नौ हाथ और श्रीवर्द्धमानके शरीरकी उंचाई सात हाथ थी ॥१२४-१२७॥ इन चौवीस तीर्थंकरोंमेंसे चन्द्रप्रभ और पुष्पदंत श्वेत वर्णके

क्रमान्मता ॥१२३॥ मान वृषभदेहस्य धनुः पंचशतानि वै। कथितं सार्द्धचत्वारि चत्वारि च यथाक्रमम् ॥१२४॥ सार्द्धत्रीणि तथा त्रीणि सार्द्ध द्वे च तथा द्विकः। सार्द्धमेकं क्रमाच्चैकं नवतिक त्वशीतिकम् ॥१२५॥ सप्ततिः षष्ठिः पंचाशत्पचचत्वारिंशत्क्रमात्। चत्वारिंशत्तथा पचत्रिंशत्रिंशत्क्रमेण च ॥ १२६ ॥ सपंचविंशतिर्विंशः पंचदश दश क्रमात्। नवहस्तं बुधैः सप्त जिनदेहप्रमं मतम् ॥१२७॥

थे, श्रीपद्मप्रभ और श्रीवासुपूज्य लाल वर्णके थे, श्रीनेमिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ श्यामवर्णके थे तथा सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ हरित वर्णके थे और शेषके सोलह तीर्थंकरोंका शरीर तपाये हुए सोनेके समान था ॥१२८–१२९॥ बैल, हाथी, घोड़ा, बंदर, चकवा, कमल, स्वस्तिक (सांथिया) चंद्रमा, मगर, वृक्ष, गेंडा, भैंसा, शूकर, सेही, वज्र, हिरण, बकरा, मछली, घड़ा, कछवा, नीलकमल, शंख, सर्प और सिंह ये अनुक्रमसे चौवीसों तीर्थंकरोंके चिह्न हैं ॥१३०–१३१॥ अयोध्या, अयोध्या, अयोध्या, अयोध्या, अयोध्या, कौशांबी, काशी, चंद्रपुर, काकंदी, भद्रपुर, सिंहपुर, चंपापुर, कंपिला, अयोध्या, रत्नपुर, हस्तिनापुर, हस्तिनापुर, हस्तिनापुर, मिथिला, राजगृह, मिथिला, सौरीपुर, वाणारसी, कुंडपुर ये अनुक्रमसे चौवीसों तीर्थंकरोंकी जन्मपुरियोंके नाम हैं ॥१३२–१३४॥ श्रीवासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान

चंद्राभपुष्पदंतेशौ श्वेतवर्णौ प्रकीर्तितौ। पद्माभद्वादशौ रक्तौ श्यामलौ नेमिसुव्रतौ ॥१२८॥ सुपार्श्वनाथपार्श्वौ द्वौ हरिद्वर्णौ च षोडशः तीर्थंकरा बुधैर्ज्ञेयाः संतप्तकनकप्रभाः ॥१२९॥ वृषो हस्ती हयः कीः कोकः सरोजस्वस्तिकौ। चंद्रमा मकरो वृक्षो गंड सैरिभशूकरौ ॥१३०॥ श्येनो वज्रं कुरंगो जो मत्स्यः कुम्भश्च कच्छपः। उत्पलं शंखनागेन्द्रौ सिंहो जिनांकका इमे ॥१३१॥ अयोध्यानगरी पंच जिनानामादितो मता। वत्सा काशींदुपुश्चेति, काकंदी भद्रिका तथा ॥१३२॥ सिंहनादपुरं चंपा कंपिला च विनीतिका। रत्नपुरं त्रयाणां वै हस्तिपूर्मिथिला तथा ॥१३३॥ कुशाग्रं मिथिला सौरी बाणारसी

ये पांच तीर्थंकर कुमार अवस्थामें ही दीक्षित हुए थे अर्थात् ये बालब्रह्मचारी थे तथा बाकीके तीर्थंकर राज्य करके दीक्षित हुए थे॥ १३५ ॥ श्रीवृषभदेव, वासुपूज्य और नेमिनाथ ये तीन तीर्थंकर पद्मासनसे मोक्ष गये हैं और बाकीके इकईस तीर्थंकर खड्गासनसे मोक्ष गये हैं॥ १३६ ॥ श्री वृषभदेव चौदह दिनतक योग निरोधकर मोक्ष पधारे थे, श्रीवर्द्धमान दो दिनतक योग निरोधकर मोक्ष पधारे थे और बाकीके बाईस तीर्थंकर एक एक महीने तक योग निरोधकर (ध्यानरूप तपश्चरण करके) मोक्ष पधारे थे ॥१३७॥ श्रीवृषभदेव, कैलास पर्वतसे मोक्ष पधारे थे, श्रीवासुपूज्य चंपापुरसे मोक्ष पधारे थे, श्री नेमिनाथ गिरनार पर्वतसे मोक्ष पधारे थे, श्री वर्द्धमानस्वामी पावापुरसे मोक्ष पधारे थे और बाकीके बीस तीर्थंकर भव्यजीवोंको धर्मोपदेश देकर मनोहर सम्मेदशिखरसे मोक्ष पधारे थे॥ १३८—१३९ ॥ श्रीनाभिराज, जितामित्र, जितारि, संवरराय, मेघप्रभ, धरणस्वामी,

---

च कुंडपू। जन्मपुर्यः इमा ज्ञेयाः भो श्रेणिक! त्वया क्रमात् ॥१३४॥ मल्लीशपार्श्वनेमीशसन्मतिवासुपूज्यकाः। कुमारा दीक्षिता एते परे भूत्वा क्षितीश्वराः ॥१३५॥ पल्यकासनतो मुक्तिर्वृषभवासुपूज्ययोः। नेमेस्तथैकविंशानां कायोत्सर्गैर्जिनैर्मता ॥ १३६ ॥ वृषश्चतुर्दशाहानि वीरो दिनद्वयं तथा। शेष मास तपोध्यानं कृत्वा मुक्ति गता द्रुतम् ॥१३७॥ कैलाशे वृषभस्वामी चपाया वासुपूज्यकः। ऊर्जयंतगिरौ नेमिः पावायां वर्द्धमानकः ॥ १३८ ॥ सम्मेदशिखरे कांते विंशतिस्तीर्थंकारकाः। मुक्तिपदसमापन्नाः भव्यजीवप्रबोधकाः ॥ १३९ ॥

सुप्रतिष्ठ, महासेन, सुग्रीव, दृढरथ, विष्णुराय, वसुपूज्य, कृत-वर्मा, सिंहसेन, भानुराय, विश्वसेन, सूर्यप्रभ, सुदर्शन, कुंभराय, सुमित्रनाथ, विजयरथ, समुद्रविजय, अश्वसेन, सिद्धार्थ ये चौवीस अनुक्रमसे तीर्थंकरोंके पिताओंके नाम हैं ॥ १४०-१४२ ॥ श्रीमरुदेवी, विजयादेवी, सुसेनादेवी, सिद्धार्थादेवी, मंगलादेवी, सुसीमादेवी, पृथिवीदेवी, सुलक्ष्मणादेवी, रामादेवी, सुनन्दादेवी, विमलादेवी, विजयादेवी, श्यामादेवी, सुकीर्तिदेवी, (सर्वयशादेवी), सुव्रतादेवी, ऐरादेवी, रमादेवी (श्रीमतीदेवी), सुमित्रादेवी, ब्राह्मीदेवी, पद्मावतीदेवी, विजयादेवी, शिवादेवी, वामादेवी, त्रिशलादेवी ये चौवीस तीर्थंकरोंकी माताओंके नाम हैं। ये सब अनुक्रमसे मोक्ष पधारेंगी ऐसा श्रीसर्वज्ञदेवने कहा है ॥ १४३-१४५ ॥ भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, सुभूम, महापद्म, हरिषेण, जय,

---

नाभिराजा जितामित्रो जितारिः सवरस्तथा। मेघाभो धरणस्वामी-सुप्रतिष्ठो महाचमूः ॥ १४० ॥ सुग्रीवो दृढरथश्च विष्णुश्च वसु-पूज्यकः। कृतवर्मा सिंहसेनो भानुश्च विश्वसेनकः ॥ १४१ ॥ सूर्यः सुदर्शनः कुंभः सुमित्रो विजयः क्रमात्। अब्धिजयोऽश्वसेनश्च सिद्धार्थो जिनपितृकाः ॥ १४२ ॥ मरुदेवी विजया च सेना सिद्धार्थमंगले। सुसीमा पृथिवी चापि सुलक्ष्मणाथ रामिका ॥ १४३ ॥ सुनंदा विमला चेति जया श्यामा सुकीर्तिका। सुव्रतैरा रमा मित्रा ब्राह्मी पद्मावती तथा ॥ १४४ ॥ विजयाऽपि शिवा वामा त्रिशला जिनमातरः। इमा निर्वाणगामिन्यः क्रमेण कोविदैर्मताः ॥ १४५ ॥ प्रथमो भरत-श्चक्री सगरो मघवाभिधः। सनत्कुमारशांती च कुंथुररः सुभूमकः

ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्तियोंके नाम हैं ॥ १४६–१४७ ॥ ये सब चक्रवर्ती भरतक्षेत्रके छहों खंडोंके स्वामी होते हैं, नौनिधि और चौदहरत्नोंके स्वामी होते हैं तथा अनेक देव और अनेक राजा उनके चरणकमलोंकी सेवा करते हैं ॥ १४८ ॥ पांडुक, माणव, काल, नैःसर्प, शंख, पिंगल, सर्वरत्न, महाकाल और पद्म ये चक्रवर्तियोंके यहां रहनेवालीं नौ निधियोंके नाम हैं ॥ १४९ ॥ चक्र, तलवार, काकिणी, दंड, छत्र, चर्म, पुरोहित, गृहपति, स्थपति, स्त्री, हाथी, मणि, सेनापति, घोड़ा ये चक्रवर्तीके यहां होनेवाले चौदह रत्नोंके नाम हैं ॥ १५० ॥ इन बारह चक्रवर्तियोंमेंसे सुभूम और ब्रह्मदत्त ये दो चक्रवर्ती मरकर सातवें नरकमें गये हैं, मघवा और सनत्कुमार ये दो चक्रवर्ती स्वर्ग गये हैं और बाकीके आठ चक्रवर्ती मोक्ष पधारे हैं ॥ १५१ ॥ इन चक्रवर्तियोंके होनेका अन्तर नीचे लिखे अनुसार है। पहला चक्रवर्ती श्रीवृषभदेवके समयमें हुआ, दूसरा चक्रवर्ती श्री-

---

॥ १४६ ॥ यथाक्रम महापद्मो हरिषेणो जयस्तथा। ब्रह्मदत्त इमे ज्ञेया द्वादश चक्रवर्तिनः ॥१४७॥ षट्खंडभरताधीशा निधिरत्नादिसंयुता.। अनेकदेवभूपालैः सेवितपदपंकजाः ॥ १४८ ॥ पांडको माणवः कालो नैःसर्पः शंखपिंगलौ। सर्वरत्नो महाकालः पद्मश्च निधयो नव ॥ १४९ ॥ चक्रासिकाकिणीदंडा. छत्रचर्मपुरोधसः। गृहेशस्थपतिस्त्रीभा मणिसेनाहया मताः ॥ १५० ॥ सुभूमब्रह्मदत्तौ द्वासप्तमनरकं गतौ। कल्पं मघवतुर्यौ द्वौ शेषाः शिवपदाश्रिताः ॥१५१॥ चक्रिणामंतरं विद्धि प्रथमो वृषशासने। द्वितीयोऽजितती-

अजितनाथके समयमें हुआ, तीसरा और चौथा ये दो चक्रवर्ती श्रीधर्मनाथ और शांतिनाथके मध्यकालमें हुए, पांचवें चक्रवर्ती शांतिनाथ थे, छटे चक्रवर्ती कुंथुनाथ थे, सातवें चक्रवर्ती अरनाथ थे, आठवां चक्रवर्ती अरनाथ और मल्लिनाथके मध्यकालमें हुआ, नौवां चक्रवर्ती मल्लिनाथ और सुव्रतनाथके मध्यकालमें हुआ, दशवां चक्रवर्ती सुव्रतनाथ और नमिनाथके मध्यकालमें हुआ, ग्यारहवां चक्रवर्ती नमिनाथ और नेमिनाथके मध्यकालमें हुआ और वारहवां चक्रवर्ती नेमिनाथ और पार्श्वनाथके मध्यकालमें हुआ ॥१५२-१५४॥ अश्वग्रीव, तारक, मेरु, निशुंभ, मधुकैटभ, वलि, प्रहरण (प्रल्हाद), रावण, जरासंध ये नौ नारायणोंके नाम हैं ॥१५५॥ त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, प्रतापी नरसिंह, पुंडरीक, दत्त, लक्ष्मण, कृष्ण ये नौ प्रतिनारायणोंके नाम हैं। नारायण और प्रतिनारायण दोनों ही अर्द्धचक्रवर्ती होते हैं, निदानसे उत्पन्न होते हैं और इसलिये सब नरकगामी होते हैं ॥ १५६-१५७ ॥

र्थेऽभूद् द्वौ धर्मशांतिमध्यके ॥ १५२ ॥ शांतिकुंथ्वरचक्रांकाश्चाष्टमो मल्ल्यरांतरे। मल्लिसुव्रतयोर्मध्ये नवमः परिकीर्तितः ॥१५३॥ नमिसुव्रतनाथांते दशमो नमिनेमयोः। एकादशम चक्रेशो नेमिपार्श्वांतरेऽतिम ॥१५४॥ अश्वग्रीवस्तारमेरू निशुम्भो मधुकैटभः। बलिः प्रहरणो ज्ञेयो रावणो जरासंधकः ॥१५५॥ त्रिपृष्टश्च द्विपृष्टश्च स्वयंभू पुरुषोत्तमः। नरसिंहः प्रतापाढ्यः पुंडरीकश्च दत्तकः ॥१५६॥ नारायणस्तथा कृष्णो नवार्द्धचक्रिणो मताः। अधोगाः केशवाश्चापि निदानात्प्रतिशत्रवः ॥ १५७ ॥ प्रथमो विजयोऽभिख्योऽचलः सुधर्मसुप्रभौ।

विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, स्वयंप्रभ, आनन्दी, नन्दिमित्र, रामचन्द्र और वलदेव ये नौ वलभद्रोंके नाम हैं। ये सब विना किसी निदानके होते हैं और इसीलिये जिनदीक्षा धारण करते है, मोह और कामदेवको जीतते तथा सब ऊर्ध्वगामी होते हैं। कोई स्वर्ग जाते हैं और कोई मोक्ष जाते है ॥१५८–१५९॥ पहले नारायण, प्रतिनारायण, वलभद्र श्रेयांसनाथके समयमें हुए, दूसरे प्रतिनारायण, वलभद्र, नारायण, वासुपूज्यके समयमें, तीसरे विमलनाथके समयमें, चौथे अनंतनाथके समयमें, पांचवें धर्मनाथके समयमे, छठे अरनाथके समयमें, सातवें मल्लि-नाथके समयमें, आठवें मुनिसुव्रतनाथके समयमें और नौवे प्रति-नारायण, नारायण, वलभद्र नेमिनाथके समयमें हुए हैं॥"६०॥ भीमवली, जितशत्रु, रुद्र (महादेव), विश्वानल, सुप्रतिष्ठ, अचल, पुंडरीक, अजितधर, जितनाभि, पीठ, सात्यक ये ग्यारह रुद्र वा महादेवके नाम हैं। ये ग्यारह ही महादेव ग्यारहवें गुणस्थानसे गि-रकर मरकर नरकमें ही गये हैं॥१६१–१६२॥ इनमेंसे पहला और दूसरा रुद्र श्रीवृषभदेव और अजितनाथके मध्यकालमें हुए।

स्वयंप्रभस्तथानदी नंदिमित्राभिध. क्रमात् ॥१५८॥ राम. पद्मो वलाः प्रोक्ता जिनदीक्षाप्रधारका. । मोहमदनजेतारो निर्निदानास्तथोर्ध्वगाः ॥१५९॥ एकादशमतीर्थेशपचारमल्लिशासने । सप्त कृष्णाः क्रमाद् ज्ञेयाः सुव्रतनेमयोः परौ ॥१६०॥ भीमवलिर्जितामित्रो रुद्रो विश्वान-लस्तथा । सुप्रतिष्ठोऽचलश्चेति पुंडरीको जितंधर. ॥१६१॥ जितना-भिश्च पीठाख्यः सात्यक ईश्वरा इमे। एकादशगुणस्थानान्निपत्याधोगति गताः ॥१६२॥ वृपभाजितयोः काले द्वौ रुद्रौ नवमादिषु। जिनेष्वष्टसु

तीसरा रुद्र पुष्पदंतके समयमें, चौथा शीतलनाथके समयमें, पांचवां श्रेयांसनाथके समयमें, छठा वासुपूज्यके समयमें, सातवां विमलनाथके समयमें, आठवां अनंतनाथके समयमें, नौवां धर्मनाथके समयमें, दशवां शांतिनाथके समयमें और ग्यारहवां रुद्र श्रीवर्द्धमानके समयमें हुआ है ॥१६३॥ भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र, काल, महाकाल, दुर्मुख, नरमुख, उन्मुख ये नौ नारदोंके नाम हैं। इनकी आयु नारायणोंके समान कही गई है ॥१६४-१६५॥ बाहुबलि, अमिततेज, श्रीधर, शांतभद्र, प्रसेनजित, चंद्रवर्ण, अग्निमुक्त, सनत्कुमार, वत्सराज, कनकप्रभ, मेघवर्ण, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, विजयराज, श्रीचंद्र, अनल, हनुमान, बली, सुदर्शन (वसुदेव), पद्युम्न, नागकुमार, श्रीपाल (सूक्तिमाघ), जंबूस्वामी ये चौवीस कामदेवोंके नाम हैं॥१६६-१६८ चौवीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण, नौ बलभद्र ये तिरेसट शलाकापुरुष, (मुख्यपुरुष)

विज्ञेया अष्टौ वीरेऽतिमस्तथा ॥ १६३ ॥ आद्यो भीमो महाभीमो रुद्राभिधो यथाक्रमम्। महारुद्रस्तथा कालो महाकालश्च दुर्मुखः ॥१६४॥ अष्टमो नरवक्त्रश्चोन्मुखाख्यो नव नारदाः। प्रोक्ता आयुःस्थितिस्तेषां नारायणसमा मताः ॥१६५॥ बाहुबल्यमिततेजाः श्रीधरः शांतिभद्रकः। प्रसेनेंदुश्च चन्द्रेपुरग्निमुक्ताभिधस्तथा ॥ १६६ ॥ सनत्कुमारो वत्सराट् स्वर्णाभो मेघशांतिकौ। कुंथ्वरौ विजयश्चंद्रो नलाख्यो हनुमान् बली ॥१६७॥ सुदर्शनः प्रद्युम्नश्च नागकः सूक्तिमाघकः। जंबूस्वामी चतुर्विंशाः कामदेवा इमे मताः ॥ १६८ ॥ त्रिषष्ठिपुरुषाः कामा नारदा जिनतातकौ। कुलकरास्तथा रुद्राः

कहलाते हैं तथा इन्हींमें चौवीस कामदेव, नौ नारद, चौवीस तीर्थंकरोंके पिता, चौवीस तीर्थंकरोंकी माताएं, चौदह कुलकर, ग्यारह रुद्र, ये एकसौ उनहत्तर पुरुष महापुरुष कहलाते हैं ॥१६९॥ इनमेंसे धर्मके प्रभावसे कितने ही तो मोक्षमें पहुंच चुके हैं और कितने ही शीघ्र पहुंचेंगे। हे राजन्! यह बात सर्वथा सत्य है ॥१७०॥ हे राजा श्रेणिक! इसप्रकार दुःषम-सुषमकालका स्वरूप कहा। अव पांचवें दुःषमकालका स्वरूप कहता हूं, तू सुन ॥१७१॥ जिससमय श्रीवर्द्धमानस्वामी मोक्ष पधारेंगे और सुरेंद्र, नागेंद्र, नरेंद्र सव उनका कल्याणोत्सव मनावेंगे उससमय धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति होती रहेगी ॥१७२॥ इसके कुछ दिन वाद जव केवली भगवानका धर्मोपदेश वंद होजायगा और देवोंका आना भी वंद हो जायगा उस समय मनुष्य वड़े दुष्ट होंगे और वड़े वड़े अनर्थ करनेवाले होंगे ॥१७३॥ उस समयके राजा अनीति वा अन्यायसे उत्पन्न हुई पदवियोंमें तल्लीन होंगे, तपश्चरणके भारसे सर्वथा रहित होंगे, क्रूर

शतमेकोनसप्ततिः ॥१६९॥ एषां मध्ये गता मुक्तिं केचिद्धर्मप्रभावतः। गमिष्यंति द्रुतं केचित्सत्यं जानीहि पार्थिव ॥१७०॥ दुःषमसुषमाख्यस्य स्वरूपं गदितं मया। अतो दुःषमकालस्य शृणु श्रेणिक सांप्रतम् ॥१७१॥ वर्द्धमाने गते मुक्तिं धर्मतीर्थः प्रवर्तते। सुरासुरनराधीशैः कृतकल्याणकोत्सवे ॥ १७२ ॥ सुकेवलिवृषाख्यानहीने देवागमोज्झिते। भविष्यंति नरा दुष्टा महानर्थप्रकारिण ॥१७३॥ अनीतिपदवीरक्तास्तपोभारविवर्जिताः। क्रूरा नृपाः भविष्यंति प्रजा-

होंगे और प्रजाको दुःख देनेवाले होंगे ॥ १७४ ॥ उस समयके मनुष्य अपने पहले जन्ममें उपार्जन किये हुए पाप-कर्मोंके उदयसे पापकार्योंमें तल्लीन होंगे, अनेक प्रकारके दुःखोंसे भरपूर होंगे, उनका हृदय सम्यग्दर्शनसे शून्य होगा, दूसरोंके ठगनेमें वे तत्पर रहेंगे, एकेंद्रिय आदि जीवोंकी हिंसा करनेमें वे तल्लीन रहेंगे, झूठ बोलेंगे, दूसरोंका धन हरण करलेनेमें बड़े चतुर होंगे, ब्रह्मचर्यव्रतसे सर्वथा रहित होंगे, बहुतसे परिग्रहको धारण करनेवाले होंगे, मूर्ख होंगे, कुछ लोग ही अणुव्रती होंगे, सब लोग अज्ञान और व्याधियोंसे भरपूर होंगे, उनके हृदय मिथ्यात्वसे ही भरपूर रहेंगे, वे बड़े भारी शोकसे सदा संतप्त बने रहेंगे, धर्मरूपी बेलको उखाड़ फेंकनेके लिये मदोन्मत्त हाथीके समान होंगे, कठोर वचन कहनेमें सदा तत्पर रहेंगे, गुरुके लिये वे कभी विनय नहीं करेंगे, बड़े क्रोधी होंगे, सदा धनके लोभमें चूर रहेंगे। मायाचारी, महा अभिमानी, परस्त्रियोंके लोलुपी, परो-पकारसे सर्वथा रहित, जैनधर्मके विरोधी, दूसरोंको दुःख

दुःखप्रदायिनः ॥ १७४ ॥ पापकर्मसमासक्ता नानाक्लेशप्रपूरिताः । सम्यक्त्वोज्झितचेतस्काः परवंचनतत्पराः ॥ १७५ ॥ एकेंद्रियादिजीवानां हिंसारक्ता मृषोदिताः । परस्वहरणे प्राज्ञा ब्रह्मव्रतपरिच्युताः ॥ १७६ ॥ भूरिपरिग्रहाः मूढा लेशव्रतसमन्विताः । अज्ञानव्याधिसम्पूर्णा मिथ्या-निर्भरमानसाः ॥ १७७ ॥ भूरिशोकेनसंतप्ता धर्मवल्लीमहागजाः । निष्ठुरवचनासक्ताः गुरुषु विनयोज्झिताः ॥ १७८ ॥ महाक्रोधधरा नित्यं धनलोभपरायणाः । मायाविनो महागर्वाः परसीमंतिनीरताः

देनेमें बड़ा भारी उत्साह दिखलानेवाले, परस्पर एक दूसरोंके साथ वादविवाद करनेवाले, माता पिता आदि वृद्धपुरुषोंकी आज्ञाका भंग करनेवाले, कुदानके देनेवाले, मद्य, मांस, मधुका सेवन करनेवाले, इष्टवियोगी, अनिष्टसंयोगी और कुबुद्धिको धारण करनेवाले होंगे ॥१७५–१८२॥ पापकर्मके उदयसे सात प्रकारके युद्ध सदा बने रहेंगे, धान्य बहुत थोड़ा उत्पन्न होगा, सब लोगोंको सदा भय बना रहेगा, गोवध करनेवाले यज्ञोंमें चतुर (बहुतसे पशुओंका होम करनेवाले) कुधर्मोंमें लोग सदा लीन रहेंगे, जो लोग स्वयं पतित हुए हैं वे मिथ्या उपदेश दे देकर दुष्ट मनुष्योंको और पतित करते रहेंगे ॥१८३–१८४॥ पंचमकालके प्रारंभमें शरीरकी ऊंचाई सात हाथकी होगी फिर घटते घटते अंतमें दो हाथकी रह जायगी ॥ १८५ ॥ प्रारंभमें मनुष्योंकी आयु एकसौवीस वर्षकी होगी फिर घटते घटते

॥१७९॥ अन्योपकृतिभिर्हीना जैनधर्मविरोधिनः। परपीडामहोत्कंठा. परस्परविवादिनः ॥१८०॥ मातृपित्रादिवृद्धानामाज्ञाभंजनकारिण.। कुत्सितदानकर्तारो मद्यमध्वामिषाशिनः ॥ १८१ ॥ इष्टासयोगिनोऽनिष्टयोगभाजः कुबुद्धयः। मर्त्याः प्रवर्तयिष्यति स्वपूर्वेनोविपाकतः ॥ १८२ ॥ (अष्टभिः कुलकम् ।)। सप्तेति विग्रहा योगैर्भविष्यंति कुनेहसः। अत्यल्पसस्यसंपन्नाः सर्वजनभयावहाः ॥१८३॥ गोदंडाध्वरदक्षेषु कुधर्मेषु स्वयं सदा। पतंतः पातयिष्यंति कुजनान् कूपदेशतः ॥ १८४ ॥ आदौ सप्तकरोत्सेधाः प्रपत्स्यते हि मानवाः। ततः क्रमेण हान्या तु युग्महस्तप्रमोच्छ्रिताः ॥१८५॥ विंशाधिकशताब्दाश्च पूर्वआयु नृणां मतम्। दुःषमेतः क्रमाद्धान्या विंशति-

अंतमें बीस वर्षकी रह जायगी ॥१८६॥ दुःषमदुःषम नामके छठे कालमें शरीरकी ऊँचाई एक हाथकी होगी और आयु बारह वर्षकी होगी ऐसा श्रीजिनेन्द्रदेवका कथन है ॥१८७॥ उस समयके मनुष्य सांपकी वृत्ति धारण कर महापाप उत्पन्न करते रहेंगे। न उनके पास घर होगा, न धन होगा, न कोई अन्य पदार्थ होंगे। करुणा वा दया आदि व्रतसे वे सर्वथा रहित होंगे, वे किसी प्रकारका आचरण पालन नहीं करेंगे और न उनमें विनय गुण ही होगा। वे बड़े क्रोधी होंगे और जिसप्रकार जंगलोंमें जंगली जानवर रहते हैं उसीप्रकार वे पापी गुफाओंमें रहकर ही अपना जीवन व्यतीत करेंगे ॥१८८–१८९॥ माता, पिता, भाई, बहिन आदि सम्बन्धके ज्ञानसे वे सर्वथा रहित होंगे, उनका हृदय प्रबल मोहसे सदा पीड़ित रहेगा और वे पशुके समान ही रहेंगे ॥१९०॥ धर्म, अर्थ, काम इन पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाले कारणोंसे वे सर्वथा रहित होंगे, पापकार्योंमें सदा लीन होंगे, क्रूर होंगे और वनस्पति तथा फल आदि खाकर ही जीवननिर्वाह

वर्षमात्रकम् ॥ १८६ ॥ दुःषमदुःषमे नृणां उत्सेधो हस्तमात्रकः। द्वादशाब्दमितं चायुर्जिनेन्द्रेण प्रकीर्तितम् ॥१८७॥ नरा भुजंगवृत्त्या ते गमयिष्यंत्यनेहसम् । मंदिरद्रव्यसंपत्तिकारुण्यादिव्रतच्युताः ॥१८८॥ अक्रियाः क्रोधसंयुक्ताः विनयादिगुणोज्झिताः। गुहावसतयः पापाः कांतारप्राणिनो यथा ॥१८९॥ मातृपितृस्वसृभ्रातृसंबंधज्ञानसंच्युताः। पशव इव भूयिष्ठमोहपीडितमानसाः ॥ १९० ॥ धर्मार्थकामसंदोहकारणैः परिवर्जिताः। पापकर्मरताः क्रूरा वनस्पति-

करेंगे ॥१९१॥ विवाहके संस्कारसे भी वे रहित होंगे, स्वामी सेवक भाव भी उनमें नहीं होगा, उनका शरीर कुरूप होगा और उनके सब अङ्ग कुरूप होंगे। छटे कालमें लोग सदा ऐसे ही होंगे ॥१९२॥ जिसप्रकार कृष्णपक्षमें चंद्रमाकी घटती होती रहती है और शुक्लपक्षमें वृद्धि होती रहती है उसीप्रकार इन अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालमें जीवोंकी आयु, शरीरकी ऊँचाई, प्रभाव, ऐश्वर्य आदिकी घटती बढ़ती होती रहती है ॥१९३॥ जिसप्रकार धर्म और उत्सवोंके कार्य रात्रिमें कम होजाते हैं और दिनमें बढ़ जाते हैं उसीप्रकार इन उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालमें भी धार्मिक उत्सवोंकी वृद्धि हानि होती रहती है ॥१९४॥ जिसप्रकार अवसर्पिणी कालमें अनुक्रमसे होनेवाली हानि बतलाई है उसीप्रकार हे राजा श्रेणिक! उत्सर्पिणीकालमें अनुक्रमसे वृद्धि समझनी चाहिये ॥१९५॥ इसप्रकार मुनि और श्रावकोंके भेदसे दो प्रकारका धर्म बतलाया है। इनमेंसे मुनियोंका धर्म मोक्ष देनेवाला है और श्रावकोंका धर्म स्वर्गको देनेवाला है ॥१९६॥ ये दोनों प्रकारके धर्म

फलाशिन ॥ १९१ ॥ विवाहविधिमंत्यक्ता रहिताः स्वामिदासकैः। भविष्यंति नरा नित्यं विरूपनिखिलांगकाः ॥ १९२ ॥ हानिवृद्धी यथेन्दोः स्तः श्यामावदातपक्षयोः। आयुर्वपु प्रभादीनां विज्ञातव्यौ तथैतयोः ॥ १९३ ॥ धर्ममहोत्सवादीनां हानिवृद्धी यथा मते। निशादिवसयोर्ज्ञेये तथानयोरनेहसोः ॥१९४॥ स्थितिर्यथावसर्पिण्यां क्रमेण परिकीर्तिता। तथा चोत्सर्पिणीकाले वृद्धिर्ज्ञेया महीपते ॥१९५॥ स धर्मो द्विविधः प्रोक्तो यतिश्रावकभेदतः। प्रथमो मुक्तिदः

सुख देनेवाले हैं। इनका स्वरूप तुम्हारे लिये कहा अब नरक स्वर्गका हाल बतलाते हैं। पापकर्मके उदयसे यह जीव नरक में जाता है और वहांपर पांच प्रकारके दुःख सदा भोगता रहता है ॥१९७॥ अधोलोककी सात पृथिवियोंमें सात नरक हैं उनके नाम ये हैं–धर्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी, माघवी ॥ १९८ ॥ इन सातों नरकोंमें चौरासीलाख बिले हैं और वे इस क्रमसे हैं। पहिली पृथ्वीमें तीसलाख, दूसरीमें पच्चीसलाख, तीसरीमें पंद्रहलाख, चौथीमें दश लाख, पांचवींमें तीन लाख, छठीमें पांच कम एक लाख और सातवींमें पांच॥१९९॥पहिली पृथ्वीमें रहनेवाले नारकी जीवोंके जघन्य कापोती लेश्या है, दूसरी पृथ्वीमें रहनेवाले नारकी जीवोंके मध्यम कापोती लेश्या है।तीसरी पृथ्वीके ऊपरी आधे भागमें उत्कृष्ट कापोती लेश्या है, उसी तीसरी पृथ्वीके नीचेके आधे भागमें जघन्य नील लेश्या है, चौथी पृथ्वीके नारकियोंके मध्यम नीललेश्या है, पांचवीं पृथ्वीके ऊपरी भागमें उत्कृष्ट नीललेश्या है, उसी पांचवीं पृथ्वीके नीचेके भागमें जघन्य

कांतो द्वितीयो स्वर्गदायकः ॥१९६॥ तौ धर्मौ प्रथमं प्रोक्तौ युष्मभ्यं सुखकारिणौ। किल्विषान्नरकं याति पंचधा यत्र दुःखकम् ॥१९७॥ धर्मा वंशा तथा मेघांजनारिष्टा यथाक्रमम्। मघवी माघवी ज्ञेया तत्र च सप्त मेदिनी ॥१९८॥ त्रिंशत्पंचकृतिः पंचदश दश क्रमात्त्रिका। लक्षैका चाऽपि पंचोना पंच नारकभेदकाः ॥ १९९ ॥ आद्यभूमौ च जीवानामंत्यकापोतलेश्यकाः। मध्यमा च द्वितीयायां तृतीयोऽर्द्धे तथा पराः ॥ २०० ॥ तस्यामधो परा नीला चतुर्थ्यां मध्यमा तथा।

कृष्ण लेश्या है। छठी पृथ्वीके ऊपरी भागके नारकी जीवोंके मध्यम कृष्णलेश्या है, उसी छठी पृथ्वीके नीचेके भागमें परम कृष्णलेश्या है और सातवीं पृथ्वीके नारकियोंके उत्कृष्ट कृष्णलेश्या है ॥ २०१-२०२ ॥ इन नारकियोंकी आयु इसप्रकार है-पहले नरकमें एक सागरकी, दूसरमें तीन सागरकी, तीसरेमें सात सागरकी, चौथेमें दश सागरकी, पांचवेंमें सत्रह सागरकी, छठेमें वाईस सागरकी और सातवें नरकमें तेतीस सागरकी उत्कृष्ट आयु है ॥ २०३ ॥ पहले नरकमें जघन्य आयु दश हजार वर्षकी है, दूसरेमें एक सागर, तीसरेमें तीन सागर, चौथेमें सात सागर, पांचवेंमें दश सागर, छठेमें सत्रह सागर, और सातवेंमें वाईस सागरकी जघन्य आयु है ॥ २०४ ॥ नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई सातवें नरकमें पांचसौ धनुष है तथा ऊपरके नरकोंमें अनुक्रमसे नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई आधी आधी होती गई है ॥ २०५ ॥ पहले नरकमें रहनेवाले नारकियोंका अवधिज्ञान एक योजन तक रहता है फिर प्रत्येक नरकमें आधा आधा

उत्कृष्टोपरिपंचम्यामधस्तात्कृष्णलेश्यका ॥२०१॥ षष्ठ्या च मध्यमा चोर्ध्वमधः परमकृष्णिका। सप्तम्यां कथितोत्कृष्टा कृष्णलेश्या यथाक्रमम् ॥२०२॥ ज्ञेया परा स्थितिस्तेषामेकत्रिसप्त वै दश। सप्तदश द्विविंशस्तु त्रयस्त्रिंशत्पयोधयः॥२०३॥ प्रथमायां सहस्राणि दशापरास्थितिर्मता। प्रथमादिषु योत्कृष्टा द्वितीयादिषु सापरा ॥२०४॥ धनुःपंचशतोत्सेधाः सप्तमी भुवि नारकाः। तत ऊर्ध्वोऽर्द्धके तुगैरर्धा अर्द्धा भवंति वै ॥२०५॥ प्रथमायां च सत्वानामवधिरेकयोजनम्। क्रोशार्द्ध

कोस घटता जाता है, अर्थात् दूसरेमें साड़े तीन कोस, तीस-रेमें तीन कोस, चौथेमें ढाई कोस, पांचवेंमें दो कोस, छठेमें डेढ़ कोस और सातवेंमें एक कोस तकका अवधिज्ञान होता है ॥ २०६ ॥

अब आगे देवोंका वर्णन करते हैं। देव चार प्रकारके होते हैं—भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी। इनमेंसे भवनवासियोंके दस भेद हैं, व्यन्तरोंके आठ भेद हैं, ज्योतिषियोंके पांच भेद हैं और कल्पवासियोंके बारह भेद हैं। कल्पातीत देवोंमें कोई भेद नहीं है ॥२०७॥ असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, अग्निकुमार, स्तनित-कुमार, उदधिकुमार, दिक्कुमार, विद्युत्कुमार और वातकुमार ये दश भवनवासियोंके भेद कहे जाते हैं ॥ २०८॥ किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच ये आठ व्यन्तरोंके भेद कहलाते हैं ॥२०९॥ सूर्य, चंद्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे ये पांच ज्योतिषियोंके भेद हैं। ये सब ज्योतिषी देव मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा देते हुए सदा भ्रमण किया करते हैं ॥२१०॥ सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेंद्र,

---

तदधोधश्च हीयते नरकं प्रति ॥ २०६ ॥ चतुर्णिकायका देवास्तेषां क्रमाद्दशाष्टकाः। पंच द्वादश वै भेदाः कल्पातीतास्तथापरे ॥२०७॥ असुरो हि सुपर्णाख्यो द्वीपाग्निस्तनिताब्धयः। कुमारा दिक् तडिद्वाता मता भवनवासिनः ॥ २०८ ॥ किन्नरयक्षगंधर्वकिंपुरुषमहोरगाः। पिशाचराक्षसौ भूतो व्यंतराः कथिता इमे ॥ २०९ ॥ सूर्याचंद्रमसौ चाऽपि ग्रहनक्षत्रतारकाः। ज्योतिर्देवा इमे मेरुप्रदक्षिणानिश भ्रमाः

ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत ये सोलह स्वर्ग हैं, इनके ऊपर नवग्रैवेयक हैं, फिर नौ अनुदिश हैं और उनके ऊपर विजय, वैजयंत, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि ये पांच पंचोत्तर हैं। इन देवोंमें ऊपर ऊपरके देवोंमें आयु अधिक है, प्रभाव अधिक है, सुख अधिक है, शरीरकी कांति अधिक है, लेश्याओंकी विशुद्धि अधिक है, इन्द्रियोंका विषय अधिक है और अवधिज्ञानका विषय अधिक है ॥ २११–२१४ ॥ इसी प्रकार ऊपर ऊपरके देवोंमें गति, शरीरकी ऊँचाई, परिग्रह और अभिमान घटता गया है। ग्रैवेयकसे पहले पहले अर्थात् सोलह स्वर्गतकके देव कल्पवासी कहे जाते हैं और आगेके देव कल्पातीत माने जाते हैं ॥२१५॥ इन वैमानिक देवोंके विमानोंकी संख्या चौरासी लाख सतानवे हजार तेईस है ॥ २१६ ॥ भवनवासी, व्यंतर

॥२१०॥ आद्य सौधर्म ऐशान सनत्कुमारकः क्रमात्। माहेंद्रब्रह्मकौ चाऽपि ब्रह्मोत्तरश्च लांतवः ॥२११॥ कापिष्टशुक्रकौ चैव महाशुक्र-सतारकौ। सहसारानतौ प्रोक्तौ सप्राणतारणाच्युताः ॥ २१२ ॥ नवग्रैवेयकाः प्रोक्ता नवानुदिशकास्तथा। विजयवैजयंतौ च जयतोऽ-प्यपराजितः॥२१३॥ सर्वार्थसिद्धिकस्तेषु स्थितिप्रभावसौख्यतः। द्युति-लेश्याविशुद्ध्यक्षावधिविषयतोऽधिकाः ॥२१४॥ गतिगात्राभिमानेभ्यः परिग्रहेण हीनकाः। देवाः प्रोक्ताः जिनैः कल्पाः पूर्वं ग्रैवेयकात्तथा ॥२१५॥ चतुरशीतिलक्षास्तु विमानानि सुरालये। त्रिविंशत्यधिकाः सप्तसन्नवतिसहस्रकाः ॥ २१६ ॥ ज्योतिर्भावनभौमानां तेजोलेश्या

और ज्योतिषी देवोंके कृष्ण, नील, कापोत और जघन्य पीत लेश्या है। उनकी द्रव्यलेश्या भी यही है और भावलेश्या भी यही है ॥ २१७॥ पहलेके दो स्वर्गोंमें मध्यम पीतलेश्या है, तीसरे चौथे स्वर्गमें उत्कृष्ट पीतलेश्या है और जघन्य पद्मलेश्या है। पांचवेंसे दशवें स्वर्गतक मध्यम पद्मलेश्या है। ग्यारहवें बारहवें स्वर्गमें उत्कृष्ट पद्मलेश्या है और जघन्य शुक्ललेश्या है। तेरहवें स्वर्गसे लेकर सोलहवें स्वर्गतक तथा नौ ग्रैवेयकोंमें मध्यम शुक्ललेश्या है। नव अनुदिशोंमें पांचों पंचोत्तरोंमें उत्कृष्ट शुक्ललेश्या है ॥ २१८–२२० ॥ असुर-कुमार देवोंकी उत्कृष्ट आयु एक सागर है, नागकुमार देवोंकी उत्कृष्ट आयु तीन पल्य है, सुपर्णकुमारोंकी ढाई पल्य है, द्वीपकुमारोंकी दो पल्य है और बाकीके भवनवासियोंकी उत्कृष्ट आयु डेढ़ डेढ़ पल्यकी है। इन्हीं देवोंकी जघन्य आयु दश हजार वर्षकी है ॥२२१–२२२॥ व्यंतर और ज्योतिषी

जघन्यत्र। कृष्णादित्रितयाश्चापि कथिता द्रव्यभावतः ॥ २१७ ॥ आदिस्वर्गदेवानां तेजोलेश्या च मध्यमा। सोत्कृष्टा तु परे युग्मे जघन्यपद्मलेश्यिका ॥ २१८ ॥ परे युग्मत्रये प्रोक्ता पद्मलेश्या च मध्यगा। सोत्कृष्टा चापरे द्वंद्वे शुक्ललेश्या जघन्यका ॥ २१९ ॥ ततो युग्मद्वये स्वर्गे नवग्रैवेयकेषु च। मध्यमा शुक्ललेश्या तु चतुर्दशसु [illegible] परा ॥२२०॥ असुराणां स्थितिः प्रोक्ता साधिकः सागरः परा। [illegible]पल्यिका तु नागानां सार्द्धद्वयं सुपर्णके ॥२२१॥ द्वीपानां युगलं पल्यं शेषाणां पल्यमार्द्धभाक्। दशवर्षसहस्राणि जघन्या कथिता स्थितिः ॥२२२॥ भौमानां ज्योतिषां पल्यं साधिकं तु परा स्थितिः।

देवोंकी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक एक पल्यकी है तथा व्यंतरोंकी जघन्य आयु दश हजार वर्षकी है और ज्योतिषी देवोंकी जघन्य आयु एक पल्यका आठवां भाग है ॥२२३॥ भवनवासी देवोंके शरीरकी ऊँचाई पच्चीस धनुष है, व्यंतरोंकी दश धनुष है और ज्योतिषियोंकी सत्रह धनुष है ॥ २२४ ॥ पहले दूसरे स्वर्गमें देवोकी उत्कृष्ट आयु दो सागर, तीसरे चौथेमें सात सागर, पांचवे छठेमें दश सागर, सातवें आठवेंमें चौदह सागर, नौवें दशवंमें सोलहसागर, ग्यारहवें बारहवेंमें अठारह सागर, तेरहवें चौदहवेंमें वीससागर और पद्रहवें सोलहवें स्वर्गमें बाईस सागरकी उत्कृष्ट आयु है ॥ २२५ ॥ फिर आगे एक एक सागरकी आयु बढ़ती गई है अर्थात पहले ग्रैवेयकमें तेईस सागर, दूसरेमें चौवीस, तीसरेमें पच्चीस, चौथेमें छव्वीस, पांचवेंमे सत्ताईस, छठेमे अट्ठाईस, सातवेंमें उन्तीस, आठवेंमें तीस, नौवेमे इकतीस सागरकी है। नव अनुदिशोंमे बत्तीस सागरकी उत्कृष्ट आयु है और विजयादिक पांचों पंचोत्तरोंमें तेतीस सागरकी उत्कृष्ट आयु है– ॥२२६॥ इनकी जघन्य आयु पहलेके दो स्वर्गोंमें कुछ अधिक

दशवर्षसहस्राणि पल्याष्टांशोऽवरा क्रमात् ॥ २२३ ॥ असुराणां च शेषाणां चापानि पंचविंशतिः। दशोत्तुंगः क्रमाद्भौमज्योतिषां दश सप्त च ॥ २२४ ॥ द्विसप्त दशवार्ध्यायुः स्थितिः परा चतुर्दश। षोडशाष्टादशो विंशो द्वाविंशतिश्च नाकिनाम् ॥२२५॥ नवग्रैवेयकस्थानामेकैकाधिकसागराः। द्वात्रिंशच्च त्रयस्त्रिंशन्नवसु पंचसु क्रमात्-॥ २२६ ॥ अन्यादिद्वयकल्पेषु पल्योपमं च साधिकम्। सौधर्मादिषु

एक पल्यकी है और आगेके लिये यह नियम है कि जो आयु नीचेके स्वर्गमें उत्कृष्ट है वह उससे आगेके स्वर्गमें जघन्य होजाती है। पहले दूसरेकी उत्कृष्ट आयु तीसरे चौथेमें जघन्य है, तीसरे चौथेकी उत्कृष्ट आयु पांचवें छठेमें जघन्य है। यही क्रम ऊपर तक चला गया है ॥२२७॥ पहले दूसरे स्वर्गके देवोंके शरीरकी ऊँचाई सात हाथ है, तीसरे चौथेमें छह हाथ, पांचवें छठे सातवें आठवेंमें पांच हाथ, नौवें दशवें ग्यारहवें बारहवेंमें चार हाथ, तेरहवें चौदहवेंमें साढ़े तीन हाथ, पंद्रहवें सोलहवेंमें तीन हाथ, पहले तीन ग्रैवेयकोंमें ढाई हाथ, मध्यकी तीन ग्रैवेयकोंमें दो हाथ, ऊपरकी तीन ग्रैवेयकोंमें और नौ अनुदिशोंमें डेढ़ हाथ और पांचों अनुत्तरोंमें एक हाथ उन देवोंके शरीरकी ऊँचाई है ॥२२८-२२९॥ पहले और दूसरे स्वर्गके देवोंका अवधिज्ञान पहले नरक तक है, तीसरे चौथे स्वर्गके देवोंका अवधिज्ञान दूसरे नरक तक है, पांचवें छठे सातवें आठवें स्वर्गके देवोंका अवधिज्ञान तीसरे नरकतक है, नौवें दशवें ग्यारहवें बारहवें स्वर्गके देवोंका अवधिज्ञान चौथे नरक तक है, तेरहवें चौदहवें पंद्रहवें सोलहवें स्वर्गके देवोंका अवधिज्ञान पांचवें नरकतक है, नव ग्रैवेयकके देवोंका अवधिज्ञान

योत्कृष्टा तृतीयादिषु साऽवरा ॥२२७॥ सप्त हस्तोच्छ्रिता देवा सौधर्मैशानयोस्ततः। षट् युगे पंच तुर्येषु चतुर्षु चतुरः क्रमात् ॥२२८॥ द्विके सार्द्धत्रयो युग्मे त्रयः सार्द्धद्वयं त्रिके। द्वयं एकोऽर्द्ध एकश्च चतुर्दशसु वै क्रमात् ॥ २२९ ॥ आदिद्विस्वर्गदेवानां घर्मातं विषयोऽवधेः। वंशांतं परयोश्चासावामेघायाश्चतुः परे ॥२३०॥ चतुष्टये-

छठे नरकतक है, नौ अनुदिशके देवोंका अवधिज्ञान सातवें नरकतक है और पांचों अनुत्तर विमानोंके देवोंका अवधिज्ञान लोकनाड़ी तक है। इन सब देवोंका अवधिज्ञान ऊपरकी ओर अपने अपने विमानके शिखरतक है॥ २३०–२३२॥ भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और पहले दो स्वर्गोंके देवोंके मनुष्योंके समान शरीरसे भोग होता है, तीसरे चौथे स्वर्गके देव अपनी अपनी देवियोंका स्पर्श करने मात्रसे ही तृप्त हो जाते है, पांचवेंसे आठवें स्वर्गके देव अपनी अपनी देवियोंका रूप देखकर ही तृप्त होजाते हैं, नौवेंसे लेकर बारहवें स्वर्ग-तकके देव अपनी देवियोंके शब्द सुनकर ही तृप्त होजाते हैं और तेरहवेंसे लेकर सोलहवें स्वर्गतकके देव अपने अपने मनमें अपनी अपनी देवियोंका संकल्प करने मात्रसे ही तृप्त हो जाते हैं। सोलहवें स्वर्गसे ऊपर ग्रैवेयक, अनुदिश, अनुत्तरविमानवासी देव ब्रह्मचारी हैं, उनके काम बाधा नहीं है इसलिये वे सबसे अधिक सुखी हैं ऐसा आगमके स्वामियोंने कहा है ॥ २३३–२३४ ॥ सौधर्म और ईशान स्वर्गमें ही देवियोंके उत्पन्न होनेके उपपाद स्थान है। इन देवियोंके

जनांत सपंचम्यत चतु परे। नवग्रैवेयकस्थानामाषष्ठ्या विषयोऽवधेः ॥२३१॥ नवानुदिशदेवानामासप्तम्याश्च पंचसु। लोकनाडीषु सर्वेषां स्वविमानांतमूर्द्धक. ॥२३२॥ देवानामाद्ययोः प्रोक्तं कायभोग मनुष्यवत्। स्पर्शसुखं परे द्वंद्वे रूपालोकं चतुर्षु च ॥२३३॥ शब्दश्चतुष्टये कल्पे मनोजातं चतुः परे। सद्ब्रह्मचारिणः शेषाः मता आगमकोविदैः ॥ २३४ ॥ सौधर्मैशानयोः कल्पे योषितामुपपादकः। शुद्धदेवी

विमान पहले स्वर्गमें छह लाख और दूसरेमें चार लाख हैं ॥ २३५ ॥ पहले स्वर्गमें उत्पन्न हुई देवियां दक्षिण दिशामें आरण स्वर्गतक जाती हैं और ईशान स्वर्गमें उत्पन्न हुई देवियां उत्तर दिशाकी ओर अच्युत स्वर्गतक जाती हैं ॥२३६॥ सौधर्म स्वर्गमें रहनेवाली देवियोंकी उत्कृष्ट आयु पांच पल्य है फिर वारहवें स्वर्गतक दो दो पल्य वढ़ती गई है अर्थात् दूसरे स्वर्गकी देवियोंकी उत्कृष्ट आयु सात पल्य, तीसरेमें नौ पल्य, चौथेमें ग्यारह पल्य, पांचवेंमें तेरह पल्य, छठेमें पन्द्रह पल्य, सातवेंमें सत्रह पल्य, आठवेंमें उनईस पल्य, नौवेंमें इकईस पल्य, दशवेंमें तेईस पल्य, ग्यारहवेंमें पचीस पल्य और बारहवें स्वर्गमें देवियोंकी आयु सत्ताईस पल्य है। इससे आगे सात सात पल्यकी वढ़ती गई है। अर्थात् तेरहवें स्वर्गमें चौतीस पल्य, चौदहवें स्वर्गमें इकतालीस पल्य, पंद्रहवें स्वर्गमें अड-तालीस पल्य और सोलहवें स्वर्गमें देवियोंकी आयु पचपन पल्य है। सोलहवें स्वर्गसे आगे देवियां हैं हीं नहीं ॥२३७–२३८॥ इस संसारमें जो इन्द्र चक्रवर्ती आदिके सुख प्राप्त होते हैं वह सब पुण्यका फल समझना चाहिये और नरक

विमानानि षट् चतुर्लक्षकानि च ॥२३५॥ दक्षिणाशारणांतेषु देव्यो यांत्यादिकल्पजाः। उत्तराशाच्युतांतेष्वैशानजाता निजास्पदम् ॥२३६॥ सौधर्मे पंच पल्यानि सुरस्त्रीणां परा स्थितिः। ततो यथा-क्रमं द्वे द्वे वर्द्धते द्वादशांतकम् ॥ २३७ ॥ आत्रयोदशमस्वर्गाद्वर्द्धंते सप्त सप्त च। अच्युते पंचपंचाशत्परे न संति योषितः ॥२३८॥ इंद्रचक्र्यादिसत्सौख्यं यत्तत्पुण्यफलं मतम्। नारकतिर्यगादीनां

तिर्यंचोंके दुःखोंको पापका फल समझना चाहिये ॥ २३९ ॥ हे राजा श्रेणिक! ये पुण्य पाप दोनों ही बंध हैं, इस जीवको दुःख देनेवाले हैं, पुण्य सोनेकी सांकलके समान है और पाप लोहेकी सांकलके समान है। जो जीव इन दोनोंसे रहित हो जाता है वही मुक्त होजाता है ॥ २४० ॥ अनेक देव जिन्हें नमस्कार कर रहे हैं ऐसे वे गौतमस्वामी इसप्रकार धर्मोपदेश देकर चुप होगये। तदनंतर राजा श्रेणिक उनके चरणकमलोंको नमस्कार कर अपने घरको चले गये ॥ २४१ ॥

तदनन्तर जिसप्रकार बादल घूमते फिरते हुए बरसते हैं और सबको प्रेम उत्पन्न करते हैं उसीप्रकार उन महामुनिराज श्रीगौतमस्वामीने भी अनेक देशोंमें विहार किया और सब जगह धर्मकी वृद्धि की ॥ २४२ ॥ आयुके अंतसमयमें ध्यान करते हुए वे चौदहवें गुणस्थानमें पहुंचे। अ इ उ ऋ ऌ इन पांचों ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारण करनेमें जितना समय लगता है उतना ही समय चौदहवें गुणस्थानके उपांत्य (अंतसमयसे एक समय पहले) समयमें वे बाकीके कर्मोंका नाश करने लगे ॥ २४३ ॥ देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, छह संहनन, पांच

यद्दुःखं पापजं फलम् ॥२३९॥ अतो जीवस्य तौ बंधौ स्वर्णायःश्रृंखले इव। तत्ताभ्यां रहितो जंतुर्मुक्तिं याति महीपते ॥२४०॥ इत्युक्त्वा गौतमो योगी विरराम सुरैर्नुतः। ततः तच्चरणं नत्वा श्रेणिकः स्वगृहं ययौ ॥ २४१ ॥ अथासौ भूरिदेशेषु विजहार महामुनिः। धर्मवृद्धिं प्रकुर्वाणो मेघवत्प्रीतिदायकः ॥२४२॥ प्राप्य चतुर्दशस्थानं पंचलघ्वक्षरस्थितिः। उपांतसमये शेषकर्मप्रणाशनोद्यतः ॥ २४३ ॥

शरीर, पांच बंधन, पांच संघात, पांच वर्ण, पांच रस, शुभ, अशुभ, तीन आंगोपांग, सुगंध, दुर्गंध, छह संहनन, आठ स्पर्श, निर्माण, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, उच्छ्वास, परघात, अगुरुलघु, उपघात, अपर्याप्त, अनादेय, स्थिर, अस्थिर, सुस्वर, दुःस्वर, प्रत्येक, दुर्भग, अयशस्कीर्ति, नीचगोत्र और असातावेदनीय ये बहत्तर प्रकृतियां उन्होंने उपांत्य समयमें ही अपने शुक्लध्यानरूपी तलवारसे नाश कर डालीं ॥२४४-२४७॥ जिन्हें इंद्र भी नमस्कार करता है ऐसे उन मुनिराज गौतमस्वामीने अंतिम समयमें साता वेदनीय, आदेय, पर्याप्त, त्रस, बादर, मनुष्यायु, पंचेंद्रिय जाति, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, ऊँचगोत्र, सुभग, यशस्कीर्ति ये बारह प्रकृतियां नष्ट कीं। तीर्थङ्कर प्रकृति उनके थी ही नहीं। जिन्हें तीनों लोकोंके जीव नमस्कार करते हैं और जो अनंत चतुष्टयसे सुशोभित हैं ऐसे उन गौतमस्वामीने अंतिम समयमें

देवद्विकं च संस्थानषट्कं पंचशरीरकान्। पंच बंधनसंघातवर्णरसान् शुभद्विकम् ॥ २४४ ॥ अंगोपांगत्रिका गंधौ तथा संहननानि षट्। स्पर्शाष्टकं च निर्माणं नभोगतिद्वयं पुनः ॥२४५॥ उच्छ्वासः परघातं चागुरुलघूपघातकम्। अपर्याप्तमनादेयं स्थिरसुस्वरयुग्मकम् ॥२४६॥ प्रत्येकं दुर्भगाकीर्ती नीचैः कुलानिवेद्यके। द्विसप्ततिः जघानासौ शुक्लध्यानासिना तदा ॥२४७॥ ततोंत्यसमयं प्राप्य मुनींद्रः शक्रवंदितः। तत्र सद्वेद्यकादेयं पर्याप्तं त्रसबादरे ॥ २४८ ॥ मनुष्यायुश्च पंचाक्षजाति तु मानवद्विकम्। उच्चैः कुलं च सौभाग्यं यशस्तीर्थकरं विना ॥२४९॥ स गौतमो जगद्वंद्यो द्वादशप्रकृतिक्षयम्। नीत्वा मुक्ति-

बारह प्रकृतियोंका नाशकर मुक्तिरूपी स्त्री प्राप्त की ॥२४८–२५०॥ मोक्ष प्राप्त होनेपर वे सिद्ध अवस्थामें जा विराजमान हुए। उनका विशुद्ध आतमा अंतिम शरीरसे कुछ कम आकारका है, आठों कर्मोंसे रहित है, सम्यग्दर्शन आदि आठों गुणोंमे सुशोभित है, लोक शिखरपर विराजमान है, नित्य है, उत्पाद व्यय सहित है, चिदानंदमय है, ज्ञानस्वरूप है, और सनातन है ॥ २५१–२५२ ॥

मोक्ष जानेके साथ ही इंद्रादिक देव आये। उन्होंने मायामयी शरीर बनाकर कपूर, चंदन आदि ईंधनके द्वारा भस्म किया, मोक्षकल्याणक मनाया, वह भस्म अपने माथेपर लगाई व वारवार नमस्कार किया और फिर वे सब अपने स्वर्गको चले गये ॥ २५३–२५४ ॥ इधर श्रीगौतमस्वामीके अग्निभूति और वायुभूति दोनो भाई अपने साथके पांचसौ ब्राह्मणोंके साथ घोर तपश्चरण करने लगे ॥ २५५ ॥ उन दोनों भाइयोंने घातिया कर्मोंको नाश कर केवलज्ञान प्राप्त

प्रियां वव्रेऽनंतचतुष्टयैर्युतः ॥ २५० ॥ तत्र सिद्धो विभुर्भाति किंचिदूनोंऽत्यदेहतः । सम्यक्त्वादिगुणोपेतः कर्माष्टकविवर्जितः ॥ २५१ ॥ लोकाग्रसंस्थितो नित्यमुत्पादव्ययसंयुत. । चिदानंदैकरूपश्च ज्योतिर्मयः सनातन.॥२५२॥ अथेन्द्राद्या सुरा एत्य कर्पूरचंदनेंधनैः । मायामयं विनिर्माय जुहुवुस्तस्य विग्रहम् ॥२५३॥ मुक्तिकल्याणक कृत्वा निधाय मूर्ध्नि भस्मकम् । पुनः पुनर्नमस्कृत्वा मुदा जग्मुः सुरालयम् ॥ २५४ ॥ अथ तौ भ्रातरौ यस्य वायुभूत्यग्निभूतिकौ । चक्रतुः सत्तपो घोरं पंचशतद्विजैः सह ॥२५५॥ विश्वकर्म-

किया और अनेक भव्य जीवोंको धर्मोपदेश देकर तथा अंतमें शेष कर्मोंको नाश कर मोक्ष-लक्ष्मी प्राप्त की ॥ २५६ ॥ उन पांचसौ ब्राह्मणोमेंसे आयु पूर्ण होनेपर कितने ही तो सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुए और कितने ही, अन्य स्वर्गोंमें उत्पन्न हुए सो ठीक ही है—तपश्चरणसे क्या क्या प्राप्त नहीं होता है ॥ २५७ ॥

भगवान श्रीगौतमस्वामीके निर्मल गुणोंका वर्णन इंद्रका गुरु बृहस्पति भी नहीं कर सकता फिर भला मेरे ऐसा अल्पज्ञानी पुरुष उनके गुणोंका वर्णन कैसे कर सकता है अर्थात् कभी नहीं कर सकता ॥२५८॥ जिन भगवान गौतमस्वामीके धर्मोपदेशको सुनकर अनेक भव्य जीव मुक्त होगये और आगे भी सदा मुक्त होते रहेंगे ऐसे श्रीगौतमस्वामीके लिये मैं वारवार नमस्कार करता हूं ॥२५९॥ भगवान गौतमस्वामीकी स्तुति समस्त कर्मोंको नाश करनेवाली है और अनंत सुख देनेवाली है। वह स्तुति मेरे लिये केवल मोक्ष प्राप्त करानेवाली हो—अर्थात् उस स्तुतिके प्रभावसे मुझे मोक्ष प्राप्त हो ॥ २६० ॥ श्रीगौतमस्वामीका जीव पहले विशालाक्षी नामकी

क्षयं नीत्वा केवलज्ञानमाप्य च। संबोध्य भव्यसंदोहं प्रापतुस्तौ शिवश्रियम् ॥ २५६ ॥ आयुक्षयेऽथ ते मृत्वा केचित्सर्वार्थसिद्धिकम्। केचित्स्वर्गपदं प्राप्तास्तपसा किं न जायते ॥ २५७ ॥ यस्य शुभ्रान् गुणान् वक्तुं सुराचार्योऽपि न क्षमः। तस्य ज्ञानलवासक्तो मादृशः क्षमते कथम् ॥२५८॥ यस्य सद्वचसा मुक्तिं गता भव्यजनाः घनाः। गमिष्यंति पुनर्नित्यं तस्मै नतिं करोम्यहम् ॥२५९॥ यत्स्तुतिर्मुक्ति-

रानीके पर्यायमें उत्पन्न हुआ था, फिर नरकमें गया, वहांसे निकलकर विलाव हुआ, फिर शूकर हुआ, फिर कुत्ता हुआ, फिर मुर्गा हुआ और फिर शूद्रकी कन्यामें जन्म लिया। वहांसे व्रत पालन करनेके प्रभावसे ब्रह्म स्वर्गमें देव हुआ और फिर वहांसे चयकर ब्राह्मणका पुत्र गौतम हुआ तथा उसके पांचसौ शिष्य हुए। सो ठीक ही है—धर्मके प्रभावसे क्या क्या नहीं होता है अर्थात् सब कुछ होता है ॥ २६१ ॥ भगवान् महावीरस्वामीके समवसरणमें मानस्तंभको देखकर गौतम ब्राह्मणका सब अभिमान चूरचूर होगया, वहींपर भगवान महावीरस्वामीके समीप ही उन्होंने जिनदीक्षा धारण कर ली, समस्त परिग्रहोंका त्याग कर दिया और चारों ज्ञानोंको धारण कर वे श्री महावीरस्वामीके प्रसिद्ध और सर्वोत्तम गणधर हुए। तदनन्तर उन्होंने भव्यजीवोंको सुख देनेवाली और पापरूप संतापको नष्टकर देनेवाली धर्मवृष्टि की (धर्मोपदेश दिया) इसीलिये उन्हें सब इन्द्र नमस्कार करते हैं और सब राजा महाराजा नमस्कार करते हैं ऐसे भगवान् श्री गौतम-

---

लाभाय मम भवतु केवलम्। निःशेषकर्मणां हंत्री भूरिसुखप्रदायिका ॥२६०॥ विस्तीर्णाक्षी नृपस्त्री प्रथमसुजननेऽभूत्ततो नारकी च, मार्जारः शूकरो वा शुनक इति ततः कुर्कुटः शूद्रकन्या। ब्रह्मे स्वर्गे सुदेवो व्रतजनिसुकृताद्गौतमो विप्रसूनुः,संजातास्त्वस्य शिष्याः बहुलशतमिता धर्मतः किं हि न स्यात् ॥ २६१ ॥ मानस्तंभं प्रदृष्ट्वा गतनिखिलमदोऽभूच्च यो योगिराजो, वीरस्यांते प्रसिद्धः प्रवरगणधरस्त्यक्तसर्वप्रसंगः। श्रेयो वृष्टिं ततानः शुभजनसुखदां पापतापप्रणाशां,

स्वामीको मैं भी नमस्कार करता हूं ॥ २६२ ॥ जिन्होंने व्रतरूपी योद्धाओंके समुदायसे कर्मरूपी शत्रुओंको जीत लिया है, केवलज्ञान पाकर आगमका निरूपण किया है, अपने वचनोंके द्वारा अनेक राजाओं और मनुष्योंको धर्मोपदेश दिया है तथा अन्तमें जो समस्त कर्ममल-कलङ्कसे रहित होकर और शुद्ध चैतन्य अवस्थाको धारण कर मुक्तिरूपी स्त्रीके स्वामी हुए हैं ऐसे श्रीगौतमस्वामी, तुम संसारी जीवोंके लिये इच्छाके अनुकूल और सदा शास्वत रहनेवाला मोक्ष-रूप कल्याण करें ॥ २६३ ॥ श्रीजिनेन्द्रदेवका कहा हुआ यह जैनधर्म इन्द्र, चक्रवर्ती आदिके उत्तम उत्तम पद देनेवाला है, प्रीति उत्पन्न करनेवाला है, इच्छाएँ पूरी करनेवाला है, काम-देवके समान रूप प्रदान करनेवाला है, तेज बुद्धि आदि गुणोंको देनेवाला है, कीर्ति फैलानेवाला है, सौभाग्य देने-वाला है, तीर्थंकर आदिकी उत्तम उत्तम विभूतियोंको देनेवाला है, भोगोपभोगकी सामग्री देनेवाला है और स्वर्ग मोक्षको प्रदान

वंदेऽहं गौतमं तं सकलनृपनुतं शक्रवृंदप्रवंद्यम् ॥ २६२ ॥ कर्मारातिं विजित्य व्रतसुभटचयैः केवलज्ञानमाप्य, श्रीसिद्धांतं निरूप्य नर-नृपतिगणं सम्प्रबोध्य स्ववाक्यैः । योऽभून्मुक्तिप्रियोशोऽखिलमलरहितः शुद्धचिद्रूपधारी, श्रेयो वो नः स नित्यं ध्रुवमपि कुरुतां वांच्छितं देह-भाजाम्, ॥२६३॥देवेंद्रानंतचक्रिप्रमुखपदकरं प्रीतिदं कामदं वै, पुष्पेषो रूपतेजो बहुसुमतिकरं कीर्तिसौभाग्यकारं । श्रीमत्तीर्थंकरादेः प्रवर-विभवदं भोगदं भव्यमर्त्याः, जैनं धर्मं कुरुध्वं जिनवरकथितं स्वर्ग-मुक्तिप्रदात् ॥ २६४ ॥ गच्छेशो नेमिचंद्रोऽखिलकलुषहरोऽभूद्यशः

करनेवाला है इसलिये भव्यजीवोंको यह जैनधर्म अवश्य धारण करना चाहिये ॥ २६४ ॥

इस मेरे गच्छके स्वामी श्रीनेमिचन्द्र हुए थे जो कि समस्त पापोंको नाश करनेवाले थे, उनके पट्टपर श्रीयशः-कीर्ति विराजमान हुए थे, ये श्रीयशःकीर्ति भी पुण्यकी मूर्ति थे, अनेक मुनि, अनेक राजा और समस्त जनसमुदाय उनके चरणकमलकी सेवा करता था। उनके पट्टपर श्री भानुकीर्ति विराजमान हुए। ये भी सिद्धांतशास्त्रोंके अच्छे जानकार थे, कामदेवरूपी योद्धाको जीतनेवाले थे, गर्मीके सूर्यके समान उनका प्रताप था, तथापि वे अत्यन्त शांत थे, और मान, लोभ आदि कषायोंको जीतनेवाले थे ॥२६५॥ उनके पट्टपर श्रीभूषण मुनिराज विराजमान हुए थे। वे मुनि-राज न्यायशास्त्र, अध्यात्मशास्त्र, पुराण, कोश, छन्द, अलंकार आदि अनेक शास्त्रोंके जाननेवाले थे, मिथ्यात्व अविरत आदि संसारके कारणरूपी अन्धकारको नाश करनेके लिये सूर्यके समान थे, वादी रूपी हाथियोंको चूर करनेके लिये सिंहके समान थे, सिद्धपरमेष्ठीका ध्यान करना, उनको नमस्कार करना, प्रणाम करना आदि कार्योंमें सदा लीन रहते थे, क्रोधादि कषायरूपी पर्वतोंको चूर चूर करनेके लिये

कीर्तिनामा, तत्पट्टे पुण्यमूर्तिर्मुनिनृपतिगणैः सेव्यमानांह्रियुग्मः। श्रीसिद्धांतप्रवेत्ता मदनभटजयी ग्रीष्मसूर्यप्रतापः, श्रीमच्छ्रीभानु-कीर्तिः प्रशमभरधरो मानलोभादिजेता ॥२६५॥ न्यायाध्यात्मपुराण-कोशनिचयालंकारछंदोविदो, मिथ्यात्वादितमोविनाशनरविर्वादीभनाशे

वज्रके समान थे और आचार्योंके समुदायमें मुख्य थे। ऐसे वे श्रीभूषण मुनिराज सदा विजयशील हों ॥ २६६ ॥ उनके पट्टपर मुनिराज धर्मचन्द्र विराजमान हुए। ये श्रीधर्मचन्द्र वलात्कार गणमें प्रधान थे, मूलसंघमें विराजमान थे और भारती गच्छके देदीप्यमान सूर्य थे ॥२६७॥ श्रीरघुनाथ नामके महाराजके राज्यशासनमें एक महाराष्ट्र नामका छोटा नगर है। उसमें एक श्रीऋषभदेवका जिनालय शोभायमान है, यह जिनालय बहुत ही शुभ है, बहुत ही सुख देनेवाला है, पूजा पाठ आदि महोत्सवोंसे सदा सुशोभित रहता है, अनेक प्रकारकी शोभाओंसे विभूषित है, सदा आनन्द बढ़ानेवाला है और धर्मात्मा मनुष्य व योगिराज सदा इसकी सेवा करते रहते हैं ॥२६८॥ उसी जिनालयमें बैठकर विक्रम सम्वत् १७२६ की ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीयाके दिन शुक्रके शुभ स्थानमें रहते हुए अनेक आचार्योंके अधिपति श्रीधर्मचन्द्र मुनिराजने श्रीगौतमस्वामीकी भक्तिके वश होकर यह श्रीगौतमस्वामीका

हरिः। सिद्धध्याननुतिप्रणामनिरतः क्रोधादिशैलाशनिः, श्रीमच्छूरिगणाधिपो विजयतां श्रीभूषणाख्यो मुनिः ॥२६६॥ पट्टे तदीये मुनि धर्मचन्द्रोऽभूच्छ्रीबलात्कारगणे प्रधानः, श्रीमूलसंघे प्रविराजमानः, श्रीभारतीगच्छसुदीप्तिभानुः ॥ २६७ ॥ राजच्छ्री रघुनाथनाम नृपतौ ग्रामे महाराष्ट्रके, नाभेयस्य निकेतनं शुभतरं भाति प्रसौख्याकरम्। श्रीपूजादिमहोत्सवव्रजयुतं भूरिप्रशोभास्पदं, सद्धर्मान्वितयोगिमानुषगणैः सेव्यं प्रमोदाकरम् ॥२६८॥ तस्मिन् विक्रमपार्थिवाद्रसयुगाद्रींदुप्रमेवर्षके, ज्येष्ठे मासि सितद्वितीयदिवसे कांतेऽहि

शुभ चरित्र निर्माण किया है। यह चरित्र प्राणियोंके लिये सदा कल्याणकारी हो ॥ २६९ ॥

इसप्रकार मंडलाचार्य श्रीधर्मचंद्रविरचित श्रीगौतमस्वामी चरित्रमें

श्रीगौतमस्वामीकी मोक्षप्राप्तिका वर्णन करनेवाला यह

पांचवां अधिकार समाप्त हुआ।

शुक्रान्विते । श्रीमच्छ्रीरिकदंवकाधिपतिना श्रीधर्मचंद्रेण च, तद्भक्त्या चरितं शुभं कृतमिदं श्रेयस्करं प्राणिनाम् ॥ २६९ ॥

इति श्रीगौतमस्वामिचरित्रे श्रीगौतमस्वामिमोक्षगमन-

वर्णनं नाम पंचमोऽधिकारः ।